ममता कालिया की कहानियों में मूल्य परिवर्तन

MAMTA KALIA KI KAHANIYOM MEIN MOOLYA PARIVARTHAN

शोध प्रबन्ध

(Thesis)

कालिकट विश्वविद्यालय की 'डॉक्टर ऑफ फिलासफ़ी' की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध

Thesis submitted to the University of Calicut for the Degree of 'Doctor of Philosophy' in Hindi under FIP Programme

निर्देशक :

डॉ. सुधा बालकृष्णन
प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

शोधार्थी :

लिसम्मा जॉन
शोध छात्रा
हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

UNIVERSITY OF CALICUT

DEPARTMENT OF HINDI

2012

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"Mamta Kalia ki Kahaniyom mein Moolya Parivarthan"** is a bonafide record of research work carried out by **Mrs. Lisamma John,** under my guidance and supervision and that no part of this thesis has hitherto been submitted for a Research Degree in any University.

Dr. SUDHA BALAKRISHNAN

DECLARATION

I, **Lisamma John**, do hereby declare that this thesis entitled **"Mamta Kalia ki Kahaniyom mein Moolya Parivarthan"** is a record of bonafide research work carried out by me and this has not previously formed the basis for the award of any Degree, Diploma, Associateship, Fellowship or other similar Title or Recognition.

This research work was supervised by **Dr. Sudha Balakrishnan**, Professor, Department of Hindi, University of Calicut.

C.U. Campus **LISAMMA JOHN**

Date : .11.2012

अनुक्रम

प्राक्कथन

पहला अध्याय 2 - 55

स्त्री लेखन एक अवलोकन

१.१ स्त्री सृजन

१.२ स्त्री सृजन कहानी के परिदृश्य में

१.३ प्रेमचन्द युग और परवर्ती युग

१.४ स्त्री लेखन का विकास स्वतंत्रता के बाद

१.५ स्त्री लेखन का पहला चरण

१.६ स्त्री लेखन का दूसरा चरण

१.७ स्त्री लेखन का तीसरा चरण

१.८ ममता कालिया

१.९ सर्जनात्मकता की विकास यात्रा

१.१० ममता कालिया की महत्वपूर्ण साहित्यिक रचनायें

१.१०.१ उपन्यास साहित्य

१.१०.२ कहानी साहित्य

१.१०.३ एकांकी नाटक

१.१०.४ काव्य संग्रह

१.१०.५ अन्य स्फुट लेखन

१.११ अन्य उपलब्धियाँ पुरस्कार व सम्मान

निष्कर्ष

दूसरा अध्याय 57 - 84

मूल्य और उसके परिवर्तित परिदृश्य

२.१ मूल्य - सामान्य परिचय

२.२ मूल्य अर्थ और उसकी व्यापकता

२.३ जीवन मूल्य

२.४ सामाजिक मूल्य

२.५ आर्थिक मूल्य

२.६ पारिवारिक मूल्य

२.७ नैतिक मूल्य

२.८ धार्मिक मूल्य

२.९ शैक्षणिक मूल्य

२.१० राजनैतिक मूल्य

२.११ मूल्य : भारतीय और पाश्चात्य विचारों में

२.१२ आधुनिक समाज में मूल्य परिवर्तन की प्रमुख दिशाएँ

निष्कर्ष

तीसरा अध्याय 86 - 208

ममता कालिया की कहानियों में परिवर्तित मूल्य

३.१ सामाजिक कहानियों में परिवर्तित मूल्य चित्रण

३.१.१ प्रेम का नया स्वरुप

३.१.२ युवापीढ़ी की मानसिक दशा की नई अभिव्यक्ति

३.१.३ स्वाभिमान एवं आत्मविश्वास का नया आयाम

३.१.४ रिसते हुए पारिवारिक संबन्धों का परिवर्तित रुप

३.१.५ पीढ़ियों का परिवर्तित स्वरुप - प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में

३.२ पारिवारिक संबन्धों की कहानियों में मूल्य चित्रण

३.२.१ संयुक्त परिवार में सास-ससुर-बहू के संबन्धों में मूल्य चित्रण

३.२.२ पारिवारिक माहौल में पीढ़ियों में आये परिवर्तित मूल्य

३.२.३ नयी पीढ़ी की लड़कियों के नये मिसाल
३.२.४ सम्बन्धों में बनते-बिगडते रिश्तों के नये मूल्य
३.२.५ माता-पिता और संतान के बीच बनते-बिगडते परिवर्तित मूल्य
३.२.६ पारिवारिक माहौल में स्त्री का संवेदनात्मक मूल्य
३.३ दांपत्य संबन्धी कहानियों में मूल्य परिवर्तन की दिशाऐं
३.३.१ पाश्चात्य सभ्यता के बीच पत्नी का व्यतिरेकी दृष्टिकोण
३.३.२ पति की समझौतापरक अन्तर्दृष्टि
३.३.३ पति-पत्नी के विचारों में आये परिवर्तित दृष्टिकोण
३.४ अविवाहित नौकरीपेशा स्त्रियों का नया मूल्य बोध
३.४.१ पुरुषों के प्रति भिन्न दृष्टिकोण
३.४.२ वैवाहिक जीवन के प्रति अलग सोच
३.५ आर्थिक मूल्यों में हुए परिवर्तन
३.५.१ आत्मनिर्भरता का भिन्न रूप
३.५.२ धन के प्रति अलग दृष्टि
३.६ नैतिक मूल्य का परिवर्तित स्वरूप
३.६.१ परिवर्तित नैतिक बोध
३.६.२ स्त्री के नैतिक विचार
३.७ सांस्कृतिक एवं धार्मिक क्षेत्र में हुए मूल्य परिवर्तन
३.७.१ ग्रामीण स्त्रियों का सांस्कृतिक अवबोध
३.७.२ ईश्वर पर आस्था
३.७.३ अनुष्ठानों का महत्व
३.७.४ अनुष्ठानों के प्रति दृढ़चित्त भाव
३.८ शिक्षा और साहित्य में परिवर्तित मूल्यों का चित्रण
३.८.१ मेहनत के बिना शिक्षा अधूरी है
३.८.२ पुस्तकों का महत्व
३.८.३ अक्षर ज्ञान का महत्व
३.८.४ साहित्य के प्रति नया सोच
३.९ राजनैतिक मूल्यों का चित्रण
३.१० श्रमिकों का मूल्य अवबोध
निष्कर्ष

चौथा अध्याय 210 -266

ममता कालिया की कहानियों में मूल्यच्युति से उत्पन्न समस्यायें

४.१ सामाजिक समस्यायें

४.१.१ नैतिक मूल्यों पर आयी दरारें

४.१.२ वैवाहिक समस्यायें

४.१.२.१ प्यार के अभाव में वैवाहिक जीवन में अतृप्ति

४.१.२.२ वैवाहिक जीवन में विरक्ति से उत्पन्न समस्यायें

४.१.२.३ वैवाहिक जीवन में सन्देह से उत्पन्न समस्यायें

४.१.३ शैक्षणिक समस्यायें

४.१.४ साहित्य क्षेत्र की समस्यायें

४.१.५ भ्रष्टाचार एवं अत्याचार से उत्पन्न समस्यायें

४.२ पारिवारिक समस्यायें

४.२.१ स्त्रियों की समस्यायें

४.२.२ दहेज से उत्पन्न समस्यायें

४.२.३ स्वतंत्र चेता स्त्री का नया आत्मबोध और उससे उत्पन्न समस्यायें

४.२.४ बच्चों की संक्रान्त मानसिकता से उत्पन्न समस्यायें

४.२.५ आधुनिक युग में वृद्ध जनों की उपेक्षा और उससे उत्पन्न समस्यायें

४.३ आर्थिक समस्याओं से उत्पन्न विघटन

४.४ धार्मिक एवं राजनैतिक समस्यायें

निष्कर्ष

उपसंहार 268 - 279

संदर्भ ग्रंथ सूची 281 - 294

परिशिष्ट - ममता कालिया के आशिषवचन एवं पत्र

पहला अध्याय

स्त्री लेखन : एक अवलोकन

स्त्री लेखन और उनका रचनाधर्म बीसवीं सदी के सबसे महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट विषय हैं । आज हिन्दी कहानी साहित्य अपनी यात्रा में जहाँ पहुँचा है उसमें स्त्री लेखन का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है । यह बिल्कुल सही है कि शुरुआत में स्त्री लेखन कुछ कमज़ोर था । स्त्री प्रतिभा संपन्न, संवेदना से युक्त होने पर भी अपनी सृजनात्मक प्रतिभा को लेकर पूर्ण रुप से आगे नहीं बढ़ पाई थी । क्योंकि उस समय शिक्षा की कमी, पारिवारिक उत्तरदायित्व, समाज एवं परिवार से आवश्यक प्रोत्साहन एवं प्रेरणा का अभाव, सामाजिक रुढ़ियाँ, पठन-पाठन की अपर्याप्तता आदि स्त्रियों के सर्जनात्मक विकास के मार्ग पर बाधक बनें । लेकिन धीरे-धीरे स्थिति में परिवर्तन आया । स्त्री अपनी रचनात्मकता को समाज के सामने निड़र होकर प्रकट करने में सक्षम हुई ।

स्वातंत्र्योत्तर लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में घर-परिवार की समस्याओं को समाज के समक्ष प्रस्तुत कर उसकी विभिन्न स्थितियों, त्रासदियों को उजागर किया । उनके चित्रण में भयंकर विस्फोट नहीं था क्योंकि सदियों की चुप्पि को तोड़कर आनेवाला इन्सान वाचाल नहीं हो सकता । वह धीरे-धीरे ही बरसों की बेडियों को और मानसिक यन्त्रणाओं को तोड़कर आगे बढ़ सकता है । लेखिकाओं के संदर्भ में यही स्थिति देखी जा सकती है । स्वातंत्र्योत्तर लेखिकाओं ने समाज के विभिन्न वर्गों की स्त्रियों की समस्त अवस्थाओं को पूरी गहराई से उकेरा है । इस कारण उनका लेखन समय और समाज के

साथ परिवर्तित हो रहे उसके सम्बन्धों का दस्तावेज़ बन पड़ा है । यह हकीकत है कि स्त्री का आत्मसंघर्ष सृजनात्मक क्षेत्र में भी दृष्टिगत होता है । वह जानती है कि उसका रास्ता बाधाओं से भरा हुआ है जिसमें द्वन्द्व और दुविधाएँ है । इन सभी को पारकर उसे आगे बढ़ना है ।

"कितने कटघेरे हैं
है कितनी अदालतें
फिर भी अन्याय से
घिरी हैं हम
कितने हैं ईश्वर-अल्लाह
हैं मूसा और गुरु
फिर भी कितना है
अधर्म !
देश में है पूरी आज़ादी
फिर भी
कितने खूंटों से
बंधी हैं हम !"[१]

शिक्षित होने के साथ ही स्त्री जानती है कि वह स्त्री है और अपना समस्त व्यक्तित्व और स्त्रीत्व को समेटकर उसे पुरुष के साथ खड़े होने का अधिकार है । मतलब उसमें कूवत है, सक्षमता है । फलस्वरुप स्त्री-लेखन अपने अनूठी अभिव्यंजना के ज़रिए खुद ही एक स्व-अस्मिता का हकदार हो गया है । इससे साहित्य का वैचारिक क्षेत्र बहुत विस्तृत हुआ है । कुछ साल पहले तक हिन्दी साहित्य की हर विधा में पुरुष वर्चस्ववादी दृष्टि हावी रही थी । परन्तु जब स्त्रियाँ साहित्य सृजन करने लगीं तब तमाम सृजनात्मक

परिवेश ही नयी परिस्थितियों में तब्दील होने लगी ।

यद्यपि साहित्य सृजन में पुरुष लेखकों द्वारा स्त्री मन की गहनतम आंतरिक प्रेरणाओं को प्रकट करने की कोशिश हुई है तो भी उनकी दृष्टि अधूरी है । पुरुष के अन्दाज़ से नारी मन की गहराई को पकड़ पाना नामुमकिन है । इस विशेष नज़रिये से देखें तो स्त्री-लेखन अपनी संपूर्ण भलाईयों और बुराईयों के बावजूद इस अधूरी, अव्यक्त, अनजान दुनिया को अपनी रचनाओं में बड़ी खूबसूरती के साथ प्रस्तुत करता है और कर भी रहा है । लेखिकाओं ने मात्र स्त्री जीवन पर ही नहीं लिखा है बल्कि जीवन की संपूर्ण अनुभूतियों को अभिव्यक्त करके कई मायनों में पुरुषों से भी अधिक कामयाबी हासिल की है । यह तर्क रहित सत्य है कि स्त्री ही स्त्री के मानसिक भाव को सही ढंग से समझकर निड़र होकर प्रस्तुत कर सकती है । स्त्री की कलम से स्त्री के विषय में जो कुछ लिखा गया है वह अत्यन्त सार्थक और सशक्त है । पुरुष भी स्त्री के बारे में लिख सकता है लेकिन उसकी रचनात्मक अभिव्यक्ति में इतनी सशक्त अनुभूति नहीं होती । उदाहरणार्थ स्त्री की माहवारी और प्रसूति समय की समस्याओं को स्त्री ही व्यक्त कर सकती है । क्योंकि पुरुष केवल ऐसी समस्याओं को जानते हैं, समझते हैं पर अनुभव नहीं करते । बकौल प्रकाश मनु – "अगर स्त्री लेखन में बार-बार स्त्रियों के भावनात्मक संकट दांपत्य और घरेलू ज़िन्दगी के महाभारत उभरते है, तो इससे भी बिदकने और नाक भौ सिकोड़ने की ज़रुरत क्यों होनी चाहिए ?"[२] वे तो पूरी ईमानदारी और प्रामाणिकता के साथ घरेलू जीवन के बारे में लिखती हैं ।

यह हकीकत है कि स्त्री लेखन समय की ज़रुरत है जो स्त्रियों के ज़रिये उनको दृष्टि में रखकर समाज में उनके लिए निर्धारित मूल्यों को जाँचता है और गलत

मूल्यों को छोड़कर सही मूल्यों की ओर उन्मुख होता है । नारी चेतना से प्रेरित होकर लेखिकाएँ अपनी अनुभूतियों और जीवनानुभवों को चित्रित करना अपना दायित्व समझकर उनकी ओर अपना ठोस कदम उठाती है । आज स्त्री जीवन की भिन्न-भिन्न समस्याओं को स्त्री लेखिकाओं ने अपने कथा साहित्य में अपेक्षाकृत अधिक संजीदगी के साथ प्रस्तुत किया है । वरिष्ठ लेखिका मृदुला गर्ग के अनुसार "जो दृष्टि नारी की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक छवि के तिलिस्म को तोड़े वह नारी चेतना ही है ।"[३] इसलिए उसका साहित्य "उसकी ज़िन्दगी, उसके समाज और दोनों के बदलावों और जड़ताओं का दस्तावेज़ हुआ करता है ।"[४]

मनुष्य परिस्थितियों का गुलाम है । परिस्थिति के बदलाव के अनुसार मानव सभ्यता में भी परिवर्तन आता है । परिवर्तन सृष्टि का शाश्वत नियम है । संपूर्ण संसार यानि प्रकृति, जगत्, जीवन सभी परिवर्तनशील है । इसलिए समाज भी समय की सीमा में बदलता रहता है । हर एक युग की विभिन्न परिस्थितियाँ जैसे राजनैतिक, धार्मिक, नैतिक, सामाजिक और आर्थिक बदलाव के साथ युग के परंपरागत रुप में निर्धारित जो मूल्य है उनमें भी परिवर्तन आता है । इन परिवर्तित मूल्यों को स्वीकार करने में कभी मानव संकोच करता है । तब क्या है ? नये और पुराने मूल्यों के बीच टकराहट होता है । परंपरागत रुप में मिले मूल्यों से अलग होकर अपने वैचारिक दृष्टिकोण के आधार पर नये मूल्यों की स्थापना करने की ओर मानव आगे बढ़ता है । सामाजिक गतिविधि में भी इसका प्रभाव प्रकट होता है । मूल्य परिवर्तन के सामाजिक परिप्रेक्ष्य की ओर रामस्वरुप चतुर्वेदी उल्लेख करते हैं - "साहित्य का अनिवार्य संदर्भ और उपजीव्य मनुष्य जीवन है । जीवन के बड़े परिवर्तनों के उपस्थित होने पर साहित्य को भी अपनी

भूमिका पर पुनर्विचार करते रहना होता है । इस दृष्टि से बीसवीं शती विशेषत: अपने उत्तरार्द्ध में तीव्र परिवर्तनों की शती रही है। जबकि तकनीकी ने उसकी गति अभूतपूर्व रुप में बढ़ा दी है ।"[५] जीवनमूल्यों में होनेवाले परिवर्तन और पुराने विश्वासों को आत्मसात् करनेवाली लेखिकाओं का मत है कि "समकालीन लेखिकाओं ने अपने परिवेश और समस्याओं से आँख मिलाकर उनके भीतर तक झाँका है । अपने सामाजिक दायित्वबोध को विस्तृत आयामों का स्पर्श कर समसामयिकता के प्रति सजग रही है । उनका साहित्य अंतरंग परिवेश का उद्घाटन अश्रुविगलित दीन पुकार में नहीं वरन् एक वस्तु प्रयोजनवाली लोककल्याणकारी चेतना में अलग-अलग भंगिमाओं में अभिव्यक्ति पा गई है जिसे सामाजिक सरोकारों के विभिन्न स्तरों पर केन्द्रित किया है ।"[६]

१.१ स्त्री सृजन

स्त्री लेखन वर्तमान की उपज है, इसका एक सुनहरा अतीत भी था । "भारतीय संदर्भ में स्त्री लेखन के इतिहास पर पहली रचना के रुप में 'थेरी गाथा' आती है, जिसमें गौतम बुद्ध की समकालीन भिक्षुणियों ने अपने जीवनानुभव का चित्रण अंकित किए हैं । दूसरी रचना अज्ञात लेखिका का है 'सीमन्तनी उपदेश' । तीसरी रचना ताराबाई शिन्दे द्वारा लिखित 'स्त्री पुरुष तुलना' और चौथी रचना छायावाद के श्रेष्ठ हस्ताक्षर महादेवी वर्मा की 'श्रृंखला की कडियाँ' ।"[७] इस प्रकार देखें तो लेखिकाओं ने कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक जैसे साहित्य की प्रमुख विधाओं में अपनी पहचान पहले ही बना लिया है । उनका रचनाकर्म महिला लेखन के सन्दर्भ का विस्फोट रहा । इन लेखिकाओं की कई रचनाएँ ऐसी कालजयी हैं । यह मानीखेज बात है कि समकालीन स्त्री कथाकारों ने अपनी रचनाओं में स्त्रियों की दुनिया की जिन बाहरी और भीतरी तकलीफों

और छटपटाहटों को अभिव्यक्ति दी है, इससे पहले कभी नहीं हुआ। इन्होंने स्त्री जीवन के भीतरी अन्धेरों में जाकर सशक्त भाषा में उनकी यन्त्रणाओं को पूरी मार्मिकता और सहजता के साथ अपनी रचनाओं में शब्दबद्ध किया है ।

स्त्री लेखन अनुवाद और आलोचना के क्षेत्र में भी अपना अस्तित्व बनाये रखने का प्रयत्न कर रहे हैं । सीमोन द बोउवार का 'द सेकेंड सेक्स' का हिन्दी अनुवाद प्रभा खेतान ने किया । पुरुष वर्चस्व के भारतीय परंपरा में स्त्री के सुधार के बारे में सीमोन द बोउवार ने कहा था – "यदि किसी जाति को लगातार हीन अवस्था में रखा जाए तो सही बात है कि वह हीन ही रहेगी किन्तु मानवीय स्वतंत्रता इस सीमा को तोड़ सकती है । आप अधिकार तो दीजिए, उपयोग करना स्त्री स्वयं सीख जाएगी । सच्चाई तो यह है कि दमनकर्ता कभी भी आगे बढ़कर अकारण उदारता नहीं दिखाएगा किन्तु कभी तो दमित के विद्रोह और कभी स्वयं सुविधा प्राप्त वर्ग के प्रति अपने विकास से नई परिस्थितियाँ जन्म लेती है । इन नई परिस्थितियों की अपनी माँगें होती हैं, जिनको पूरा करने के लिए पुरुष स्वयं स्त्री को आंशिक मुक्ति देने के लिए बाध्य होता है । यह औरत का कर्तव्य है कि वह विकास की दिशा में आगे बढ़ती रहे और मिलनेवाली सफलताओं से उत्साहित होती रही । इसमें कोई सन्देह नहीं कि एक न एक दिन वह पुरुष के बराबर सामाजिक और आर्थिक समानता पाएगी जिसके कारण उसकी आन्तरिकता में नया रुपान्तरण घटित होगा ।"[८] लेखन एक बड़ा अनुशासन है, इसलिए स्त्री लेखन को छोटे आलय में कैद नहीं किया जा सकता ।

स्त्री लेखन की भूमिका पर दृष्टिपात करके देखे तो स्पष्ट होगा कि स्त्री अनेक चुनौतियों को झेलकर स्वतंत्रतापूर्व से लेकर आज के उत्तराधुनिक, भूमण्डलीकृत,

सूचना प्रौद्योगिकी एवं नव औपनिवेशिक युग में प्रगति की ओर अग्रसर हो रही है । और लेखिकायें पूरी तल्खी के साथ नई उभरती हुई स्त्रियों को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त कर रही हैं ।

हिन्दी साहित्य जगत् में खासकर कथा साहित्य में आरंभिक काल से लेकर आज तक देखें तो लेखिकाओं की एक लंबी कतार सामने आती हैं । कथा साहित्य के आरंभिक लेखिका 'बंग महिला' से लेकर उषादेवी मित्रा, विमला चौधरानी, मीरा बाई, सुभद्राकुमारी चौहान, महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी सिन्हा, शिवरानी देवी, शांति मेहरोत्रा, रजनी पणिक्कर, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, शिवानी, मेहरुन्नीसा परवेज़, कीर्ति चौधरी, मृदुला गर्ग, राजी सेठ, मंजुल भगत, ममता कालिया, नमिता सिंह, नासिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, गगन गिल, रमणिका गुप्ता, जया जादवानी, कमल कुमार, सूर्यबाला, क्षमा शर्मा, दीपक शर्मा, अलगा सरावगी, ॠचा शुक्ल, प्रभा खेतान, महुआ माजी, मनीषा कुलश्रेष्ठ, कुसुम अंसल, गीतांजली श्री, दुर्वा महारा, लवलीन, संजना कौल जैसे अनेक हस्ताक्षर अपना स्थान कायम कर रहे हैं । इन लेखिकाओं ने साहित्य की चेतनाभूमि को परिमार्जित और परिवर्द्धित करने में महत्वपूर्ण योगदान निभाई है । उनकी विशेष खूबी पर ध्यान रखते हुए डॉ. रामदरश मिश्र ने लिखा है – "उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर आज की नारी की सामाजिक नियति और मानसिकता को बड़ी गहराई से उभारा है । न तो ये लेखिकायें पुरुष लेखकों की तरह नारी को प्रतिभान्वित करती हैं और न उन्हें नकली रुप में पीड़ित ।"[९] समकालीन साहित्य समाज की गतिविधियों से अछूता नहीं रहा है ।

स्त्री लेखन का तात्पर्य तो स्त्रियों की समस्याओं को पृष्ठभूमि बनाकर

स्त्रियों द्वारा रचित साहित्य है । आत्माभिव्यक्ति की आकांक्षा के साथ ही साथ आत्मसजगता और परिवेश चेतना का परमोत्कर्ष का भाव भी लेखिकाओं के रचनात्मक सरोकार का मुख्य केन्द्रबिंदु रहा है । स्त्री लेखन के संबन्ध में सीजियस लिखती है – "स्त्री के लेखन में दमन के खिलाफ सब कुछ कितना अनंत, विस्तृत, नई संभावनाओं से भरपूर शाश्वत, शक्तिशाली होकर उभरता है ।"[१०] आगे कथा साहित्य में स्त्री लेखन के स्वतंत्रतापूर्व से लेकर स्वातंन्त्र्योत्तर तीनों चरणों का परामर्श करते हुए उसमें ममता कालिया की हैसियत पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है ।

१.२ स्त्री-सृजन कहानी के परिदृश्य में

कहानी के क्षेत्र में बंग महिला या राजेन्द्र बाला घोष के आगमन से कहानी विधा में नारी शाक्तीकरण का आरंभ हुआ । जिन्होंने सन् १९०७ में 'दुलाईवाली' की रचना की थी । नारी, दरअसल एक शक्ति है, साहित्य में या किसी भी क्षेत्र में । नारी शक्ति का स्रोत है, वह जीवनी शक्ति है । डॉ. उषा यादव के अनुसार, "बंग महिला की 'दुलाईवाली' से शुरु हुआ स्त्री कथा-लेखन का सफर आज जिस मुकाम पर पहुँचा है वहाँ सूरज का उजास, चाँदनी का ह्रास और वासंती समीर का रस-भीना विलास मौजूद है । इस सुदीर्घ विकास यात्रा में न जाने कितने लेखिकाओं ने अपनी सहभागिता निभाई है ।"[११] इस लंबे विकास पथ के बीच स्त्री शिक्षा और नारी जागरण के विस्तृत प्रचार प्रसार भी बढ़ा । इस विकास यात्रा में 'मील का पत्थर' बनने का गौरव बंग महिला को ही प्राप्त हुआ । बकौल अर्चना वर्मा "बंगमहिला विस्मय और कौतूहल के कलात्मक लेप से साधारण को असाधारण में बदल गया है । हल्के-फुल्के संकेतों में मध्यवर्गीय चरित्र को उजागर किया गया है ।"[१२]

१.३ प्रेमचन्द युग और परवर्ती युग

प्रेमचन्द और प्रेमचन्दोत्तर काल से कई लेखिकाओं ने कथा साहित्य को अपने रचना कर्म से समृध्द किया है । बंग महिला के बाद अगले दौर के आरंभ में कहानी क्षेत्र में मुन्नीदेवी भार्गव, विमला चौधरानी, चन्द्रप्रभादेवी मेहरोत्रा, जनकदुलारी देवी, राजरानी देवी, श्रीमती मनोरमा देवी आदि लेखिकाओं का उदय हुआ । 'चाँद' और 'माधुरी' जैसे पत्रिकाओं के माध्यम से उनकी कहानियाँ जन मन में बस गयी । उन्होंने अपने रोज़मर्या ज़िन्दगी के अनुभवों के आधार पर बड़ी ही आत्मीयता के साथ स्त्री समस्याओं को चित्रित किया है । उनकी कहानियों में समाज की निर्दयता और क्रूरता का चित्रण भली-भाँति मिलता है । इन्होंने प्रमुखतः सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक समस्याओं और उस समय के रुढ़ प्रथाओं जैसे पर्दा प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह आदि समस्याओं से संबन्धित कहानियाँ लिखीं । इनके बाद आनेवाली लेखिकाओं ने मनोवैज्ञानिक धरातल को ग्रहण कर लिया । इन लेखिकाओं में कमला चौधरी, शिवरानी देवी, तेजरानी पाठक, सुभद्राकुमारी चौहान, उषादेवी मित्रा आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । नारी प्रकृति का सुन्दरतम उपहार है । नारी समाज, संस्कृति, परिवार और साहित्य के अविभाज्य अंग है । वे तो त्याग, सेवाभाव, विनय आदि के उत्तम रुप है । इन लेखिकाओं के द्वारा नारी का आदर्श और यथार्थ का रुप प्रस्तुत हुआ है।

इस समय के श्रेष्ठ हस्ताक्षरों में शिवरानी देवी का नाम प्रथम आता है । इनकी कहानी का केन्द्रबिंदु नारी ही है । पारिवारिक और सामाजिक जीवन में पुरुषों द्वारा जो यातनायें स्त्री को भोगना पड़ा, इसका सचित्र वर्णन इनकी कहानियों में मिलता है । मनुष्य जीवन के अर्न्तमन में उठनेवाले बारीक से बारीक भाव को सार्थक बनाकर कहानियाँ लिखने में उषादेवी मित्रा का नाम सिध्दहस्त है । कमला चौधरी की कहानियों

की खासियत उसमें निहित प्रेरणा, नया लक्ष्यबोध एवं नया सन्देश है । उनकी कहानियों में दांपत्य जीवन में उत्पन्न विभिन्न अवस्थाओं, आदर्श पत्नी, स्नेहमयी माता, कर्मनिष्ठ एवं स्वामी भक्त नारी साथ ही विद्रोहिणी एवं साहसी नारी का यथार्थ चित्रण उपलब्ध है । निम्न मध्यवर्ग की असहाय, दु:खी एवं आश्रयहीन नारी का चित्रण हेमवती देवी की कहानियों की विशेषता है । संयुक्त परिवार की समस्या, अवैध प्रेम समस्या, अंर्तजातीय विवाह आदि का परिचय सुभद्राकुमारी सिन्हा की कहानियों का कथ्य बना है ।

संक्षेप में स्वतंत्रतापूर्व कहानी लेखन में लेखिकाओं का योगदान प्रशंसनीय है । स्वातंत्र्योत्तर महिला लेखन के लिए इन लेखिकाओं ने नयी ज़मीन की नींव डालीं ।

१.४ स्त्री लेखन का विकास स्वतंत्रता के बाद

हिन्दी कहानी को आधुनिक बनाने की महत्वपूर्ण कोशिश सबसे पहले प्रेमचन्द की तरफ से ही हुई थी । "उन्होंने सन् १९३०-३५ के बीच कहानी को यथार्थ की प्रस्तुति का एक नया धरातल प्रदान किया था । उन्होंने मनुष्य और समाज, व्यक्ति और उसके जीवन परिवेश को कथा के केन्द्र में ला खड़ा किया था ।"[१३] स्वतंत्रता के पश्चात् ही वास्तव में हिन्दी कहानी परिवेशगत निर्मम सच्चाईयों और चुनौतियों के बीच अपना स्वरूप ग्रहण करती है । मधुरेश के शब्दों में "राजनीतिक, सामाजिक परिवर्तन की इच्छा जितनी ही बलवती होगी, उसके पीछे क्रियारत वैचारिक आधार जितना ही मज़बूत होगा, उन परिस्थितियों से उद्भूत आन्दोलन भी उतना ही प्रभावशाली जीवन्त और स्थायी होगा ।"[१४] स्त्री-लेखन की श्रृंखलाबद्ध शुरुआत भी स्वतंत्रता के ही बाद हुई । "स्वातंत्र्योत्तर लेखिकाओं ने कथा साहित्य को पुरानी भावभूमि की कृत्रिम रोमनी दुनिया से मुक्त करके उसमें जिन्दगी की धड़कन को भरकर यथार्थ की दुनिया में प्रतिष्ठित

किया।"[१५]

स्वतंत्रता के बाद देश की परिस्थितियों में आमूल तौर पर बदलाव आया । लेकिन गाँधीजी और नेहरू ने जो स्वप्न भारत के भविष्य के प्रति देखा था वह हमें नहीं मिला । फिर भी स्वतंत्रता ने मानव को नयी भावना से संपन्न बनाया । देश के प्रति विचारों को हटाकर नानोन्मुख विकास के लिए नई-नई योजनाएँ बनी । इसमें नारी को शिक्षित कर आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाना, अपने व्यक्तित्व, अस्तित्व, अस्मिता और अधिकारों के प्रति सजग रखना, घर के चार दीवारों के अंदर से बाहर आकर नवीन कार्यजगत में प्रविष्ट कराना, आत्मविश्वास और आत्मसम्मान का दीपक जलाकर सारे विश्व को अमर ज्योति से प्रकाशित करना आदि प्रमुख मुद्दे थे । इन सभी योजनाओं से प्रभावित होकर स्वातन्त्रेतर लेखिकाओं के एक सशक्त दल सामने आये ।

लेखिकाओं की रचनाओं का सरोकार तत्कालीन या पूर्ववर्ती कथाकारों से बिल्कुल भिन्न है । आज स्त्री विमर्श और दलित विमर्श के साथ नये उपभोक्तावादी, बाज़ारवादी, नव उपनिवेशवादी संस्कृति की चर्चा भी कथा साहित्य के केन्द्र में है । आज लेखिकाओं का मुख्य सरोकार स्त्री की दैहिक-मानसिक स्वतंत्रता, स्त्री के बहुआयामी रूपों के आंतरिक व्यथा और परंपरागत प्रस्थापित शोषण तन्त्रों और स्त्री अस्मिता की नयी-नयी पहचान के बीच के तनावों और संघर्षों से है । लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में स्त्री संदर्भों के, घर परिवार समाज आदि के बीच रखकर उसकी विभिन्न हालतों और तकलीफों को प्रस्तुत किया है । यह उल्लेखनीय बात है कि उनके नज़रिये में अंतर आता गया। जैसे पूर्ववर्ती कहानियों से भिन्न होकर नई कहानी अधिक यथार्थवादी और समकालीन कहानी उससे भी अधिक बेलाग और निर्भय यथार्थवादी होती गयी वैसे

लेखिकाओं के प्रस्तुतीकरण में कई परिवर्तन के पड़ाव दीखते हैं । पहले, वे पुरुष प्रधान समाज के मूल्यों को आत्मसात करके ही स्त्री के अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा करती रही हैं । द्वितीय चरण में स्त्री खुद अपने लिये विकल्पों या विरुद्ध भावनाओं का सृजन करती है और खुद चयनकर्ता बनती है । तीसरे चरण में स्वतंत्र होकर खुले तौर पर विरोध प्रकट करके लिखने लगीं ।

१.५ स्त्री लेखन का पहला चरण

स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय समाज में नारी में अपने स्वतंत्र अस्तित्व की सुषुप्त चेतना उत्तरोत्तर जागृत होती गयी । हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्थापित करने का प्रयत्न अधिकाधिक किया जा रहा था । स्त्री लेखन इस दिशा में अधिक सजीव और सक्रिय है । आज के आधुनिक परिवेश में स्त्री और पुरुष दोनों ही अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास करना चाहते हैं । स्त्री भी पुरुषों की भाँति समाज में अपना स्वायत्तता स्थापित करना चाहती है । हिन्दी कथाक्षेत्र में स्वतंत्रता के बाद मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, शिवानी, शांति मेहरोत्रा, इन्दुबाली, रजनी पणिक्कर, निरुपमा सेवती, सोमा वीरा आदि प्रमुखतः उभरकर आयी हैं । लेकिन स्वातंत्र्योत्तर नई कहानी के पहले चरण के श्रेष्ठ हस्ताक्षर के पद पर विराजित त्रयी मूर्तियाँ मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा और कृष्णा सोबती ही है । इनका लेखन क्षेत्र विशिष्ट और व्यापक भी है ।

शिवानी आजकल लोकप्रिय और लोकरंजक कथाकारों की श्रेणी में पीछे पड़ गयी है लेकिन एक सीमा तक कुछ पाठक वर्ग को तैयार करने में उनकी रचनाएँ

महत्वपूर्ण भूमिका रही है । इन्होंने पारिवारिक संबन्धों से अधिक प्रेम कथाओं पर अपनी लेखनी चलायी है । उनके नारी पात्रों और उनकी कहानियों के क्षेत्र में विविधता है । लेकिन जीवन के खुरदुरे यथार्थ को चित्रित करने में वे असफल सिद्ध हुई हैं । इसलिए वे आलोचकों की दृष्टि में उपेक्षित रहीं ।

स्वातंत्र्योत्तर काल के प्रथम चरण की स्त्री कथाकारों में त्रयी मूर्तियों की रचनाएँ सालों तक कथा साहित्य को संपन्न करती रहीं । इन त्रयी लेखिकाओं की रचनाओं में और चूँकि उन्हीं की वजह से आज भी साहित्य जगत में उनकी ख्याति बनी हुई है इसलिए "उन्हें उनका मुख्य स्वर माना जा सकता है, पुरुष मेधा समाज के मूल्यों का जैसे आत्मसातीकरण हुआ है और समस्याओं का अंकन करते हुए, पात्रों का चित्रण करते हुए वे नारी के प्रति उदार तो हैं और उसकी पैरवी भी करती सी लगती है लेकिन अन्तस्तल में कहीं कोई पुरुष ही उनके निर्णयों को संचालित करता है ।"[१६] मन्नू भण्डारी का 'आपका बंटी', उषा प्रियंवदा की 'वापसी' और 'रुकोगी नहीं राधिका' में परिवर्तित समाज के नये मूल्य बिम्बित है । कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी' उपन्यास के माध्यम से वह 'बोल्ड' लेखिका के रूप में मशहूर हो गयी । मित्रो की रचना कर लेखिका ने स्त्री की अतृप्त दैहिक आवश्यकताओं को बड़े साहस के साथ चित्रित किया है । विषय की नवीनता, दृष्टिकोण के प्रति साहसिक भाव, विसंगतियों की जाँच पड़ताल इन लेखिकाओं की रचनाओं में दृष्टिगत होती हैं । उन्होंने अपने पात्रों को स्वअस्तित्व और अस्मिता देने का प्रयत्न भी किया है ।

प्रथम चरण की लेखिकाओं में मन्नू भण्डारी का नाम सिद्धहस्त है । नारी के आधुनिक द्वन्द्वात्मक रुप, नारी मन की पीड़ा, अकेलापन, दांपत्य जीवन में आये हुए

बदलाव, विवाहित प्रेमिका, वात्सल्यमयी माता और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का सूक्ष्म चित्र उनकी कहानियों में दर्शनीय है । उनमें भारतीय समाज के मध्यवर्गीय परिवार और परिवेश को पकड़ने की गहरी समझ है । मन्नू भण्डारी अपनी कहानियों के द्वारा नारी को नया रुप, चेतना आदि प्रदान करती हैं । साथ ही उसे जीवन की बुरी हालत को साहस के साथ झेलने की क्षमता भी प्रदान करती है । "इन्होंने कृत्रिम बौद्धिकता की झूठी दुनिया से दूर सरल और बोधगम्य ढंग से परिवर्तित समाज और पारिवारिक संदर्भों में आज की नारी प्रेम और परिवार की समस्या को लेकर लिखा है ।"[१७] नये पुराने जीवन मूल्यों के संघर्ष से उत्पन्न मानसिकता ही उनकी रचनात्मक पृष्ठभूमि बन गई है । 'मैं हार गई', 'एक प्लेट सैलाब', 'यही सच है', 'तीन निगाहों की तस्वीर', 'त्रिशंकु', 'मेरी प्रिय कहानियाँ' आदि उनकी प्रमुख कहानी संग्रह हैं । प्रसिद्ध उपन्यास रचनाएँ हैं – 'आपका बंटी', 'स्वामी', 'महाभोज' और 'कलवा' । 'बिना दीवारों के घर', 'महाभोज' दो नाटक रचनाएँ हैं ।

स्त्री लेखन के स्वातंत्र्योत्तर प्रथम चरण में उषा प्रियंवदा का नाम महत्वपूर्ण है । उनकी कहानियों और उपन्यासों में देशी और विदेशी वातावरण में जीवन की अनुभूतियों का स्वर अच्छी तरह झलकते हैं । उनके पात्र आधुनिक और विद्रोही हैं । उन्होंने नये-नये विषयों को लेकर नारी मन की गहराई तक जाकर उनके समस्त रहस्यों को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है । आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार की हालत, उदासीनता, बिखराव, नारी में स्वातंत्र्योत्तर काल में आये बदलाव आदि का चित्रण उनकी रचनाओं में मिलता है । उनकी कहानियों में पात्र अकेलापन में भटकते रहते और सदा विकट स्थितियों से जूझते रहते हैं । 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूले', 'कितना बड़ा झूठ', 'एक कोई दूसरा',

'फिर वसंत आया' आदि उनकी प्रमुख कहानी संग्रह है । उनके प्रसिद्ध उपन्यास रचनाएँ हैं 'पचपन खंभे लाल दीवारें', 'रुकोगी नहीं राधिका', 'शेष यात्रा' आदि ।

मन्नू भण्डारी और उषा प्रियंवदा के समान प्रथम चरण में विख्यात है कृष्णा सोबती । उन्होंने अपनी रचनाओं में जीवन को वैयक्तिक यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया है । प्रताड़ित, पीड़ित, व्यथित नारी के परिवर्तित उन्मुक्त विचारों से युक्त स्वतंत्र नारी का चित्रण बख़ूबी से किया है । आधुनिक मानव की पीड़ित मानसिकता और असंयमित विचारों को लेखिका आधुनिकता की परिणति के रूप में अभिव्यक्त करती है । उन्होंने पारिवारिक जीवन के यथार्थ परिवेश की अछूती गुत्थियों को सुन्दर ढंग से सुलझाया है । उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह 'बादलों के घेरे', 'डार से बिछुडी', 'यारों के यार', 'मित्रो मरजानी' तथा 'तीन पहाड़' हैं । उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं – 'ज़िन्दगीनामा', 'सूरजमुखी अन्धेरे के', 'समय सरगम' । 'हम हशमत' - भाग एक, दो, उनका संस्मरण है । हाल ही में उनकी लंबी कहानी 'ए लड़की' का स्वीडन में मंचन हुआ ।

भारतीय नारी की समस्याओं के साथ ही साथ समूचे नारी समाज की समस्याओं और नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं को उकेरने में निरुपमा सेवती अग्रगण्य है । आधुनिक समाज के आधुनिक मानव का तनाव, निराशा, प्रेम, अकेलापन, अलगाव, सेक्स के प्रति लालसा आदि का खुला एवं स्पष्ट चित्रण उनकी कहानियों में हुआ है । डॉ. रेणु गुप्ता के मतानुसार "इनकी कहानियों में कहीं संबन्ध हीनता को उभारा है जो पूँजीवादी व्यवस्था के कारण है, कहीं यह संबन्ध हीनता पुरुष और स्त्री के मध्य है, कहीं भाई-बहन के मध्य, कहीं इसी पूँजी के बढ़ते प्रभाव से उत्पन्न प्रेम की जटिलताओं को उजागर किया है ।"[१८] 'खामोशी को पीते हुए', 'आतंक के बीच', 'काले खरगोश',

'कच्चा मकान' आदि उनके कहानी संग्रह हैं ।

प्रथम चरण की अन्य लेखिकायें भी अपनी सृजनात्मक अभिव्यक्ति द्वारा भारतीय समाज का जीता जागता चित्रण प्रस्तुत करती हैं । इन्दुबाली की 'मैं दूर से देखा करती हूँ' कहानी में दांपत्य संबन्धों की समस्यायें चित्रित है । नारी की विवशता का चित्रण कंचनलता सब्बरवाल की कहानी का विषय है । शांति मेहरोत्रा की कहानियों में नारी की दयनीय स्थिति का अंकन हुआ है। सोमा वीरा के पात्र शक्ति एवं साहस से युक्त है । रजनी पणिक्कर की कहानियों में नारी मनोविज्ञान का पुट देखने को मिलता है । अछूत समस्या, अन्तर्जातीय विवाह समस्या, दांपत्य जीवन में उत्पन्न तनाव आदि का मर्मस्पर्शी अंकन भी इनकी कहानियों द्वारा प्रकट होता है ।

स्पष्ट होता है कि स्वातंत्र्योत्तर स्त्री-लेखन के प्रथम चरण पर अन्य समसामयिक समस्याओं के साथ परिवार से जुड़ी विभिन्न सूक्ष्मातिसूक्ष्म किन्तु महत्वपूर्ण समस्याओं को पुरुषों की अपेक्षा अत्यंत गहराई से लेखिकाओं ने प्रकट किया है । डॉ. बच्चन सिंह द्वारा रचित 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' में लेखिकाओं की दुनिया के बारे में लिखा है – "लेखिकाओं की दुनिया को अलग से विश्लेषित करने की आवश्यकता इसलिए है कि यह पुरुषों की दुनिया से थोड़ी भिन्न होती है । यही कारण है कि आजकल आलोचना में स्त्रीवादी आलोचना का चलन हो गया है । मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती छठे दशक से लिखती चली आ रही हैं और अब भी लिख रही हैं । मन्नू भण्डारी की कहानियाँ अपनी सादगी में प्रामाणिक अनुभूति की कहानियाँ हैं । मन्नू की जोड़ का दूसरा नाम है उषा प्रियंवदा । उषा में शिल्प की सजगता और विषयवस्तु की व्यापकता है । कृष्णा सोबती सेक्स को 'बोल्डनेस' के साथ उभारने में

सिद्धहस्त है ।"[१९] इस अर्थ में स्वातंन्त्र्योत्तर पहले चरण को समृद्ध करने में इन लेखिकाओं का योगदान सराहनीय हैं ।

१.६ स्त्री लेखन का दूसरा चरण

पूर्ववर्ती लेखिकाओं से कुछ अन्तराल रखते हुए दूसरे चरण में स्त्री कथाकारों की एक जैसी नयी पीढ़ी साहित्य जगत् में उभर आयी जिसने अत्यंत साहस के साथ अनेक परंपरागत मान्यताओं को चुनौती दी, अनेक नये क्षितिज खोले । राजेन्द्र यादव के अनुसार, "सन् साठ के बाद की पीढ़ी उन्हीं साफ निगाहों से अपने युग के यथार्थ को कहानी में प्रस्तुत कर रही है जिनके लिए हम सब लगातार प्रयत्न कर रहे हैं । यहाँ न कहानी बनाने का आग्रह है, न प्रतीकों का मोह, न अतिरिक्त रुमानी स्थितियों और भावुक उच्छवासों का विस्तार । वह अपने तथ्य को सीधे भोगने, जीने और प्रस्तुत कर देने का यथार्थ प्रयत्न है ।"[२०] इन स्त्री कथाकारों ने देश की तत्कालीन कई महत्वपूर्ण राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक समस्याओं पर कुछ नहीं लिखा । डॉ. राजम नटराज पिल्ला के अनुसार, "देश में लगातार लोकतान्त्रिक मूल्यों का हनन हो रहा था, उद्योग-धंधे बन्द हो रहे थे और 'गरीबी हटाओ' जैसे नारों के अलावा गरीब को ठोस कुछ भी उपलब्ध नहीं हुई । महिला लेखिकाओं के सरोकार स्त्री से जुड़ी घर-परिवार की समस्या, दांपत्य जीवन के तनाव और टूटन, कामकाजी महिला के दोहरे-तिहरे शोषण से रहे इसलिए महिला रचनाकारों के सामाजिक सरोकारों को पुरुषों से अलग सन्दर्भों में ही देखा जाना चाहिए ।"[२१]

स्त्री लेखन के दूसरे चरण की लेखिकाओं में मृदुलागर्ग, मेहरुन्नीसा परवेज़,

ममता कालिया, दीप्ति खण्डेलवाल, सुधा अरोड़ा, मैत्रेयी पुष्पा, कृष्णा अग्निहोत्री, नासिरा शर्मा, सिम्मी हर्षिता, राजी सेठ आदि प्रमुख हैं । इनकी नारी समाज में नारी और पुरुष के लिए प्रचलित दुहरे नैतिक मानदण्डों को बड़े आक्रोश के साथ नकारती हुई अपने लिए समकक्ष स्थान की मांग करती है, और उसके आधार पर बर्ताव करने का धैर्य भी दिखाती है । इन लेखिकाओं ने मातृत्व की भावपूर्ण, प्रभामण्डित, परंपरागत मान्यताओं पर प्रहार करने का साहसपूर्ण कदम भी उठाया । मातृत्व को स्त्री जीवन की एक महत्वपूर्ण सिद्धि के रुप में मानते हैं लेकिन आज की अधुनातन वैज्ञानिक युग में इन लेखिकाओं क मत है कि मातृत्व स्त्रीत्व की अनिवार्य शर्त नहीं है । पिता बनना पुरुषार्थ की चरम सीमा नहीं है तो माता बनना भी चरम सीमा नहीं है । प्रगतिवादी समाज में स्त्री पात्रों के विचारों में आये परिवर्तन का परिणाम स्वरुप है यह । मणिका मोहिनी के 'ढाई आखर प्रेम का', राजी सेठ के 'गलत होना पंचतन्त्र' आदि कहानियों में इस मुद्दे को प्रस्तुत किया गया है ।

इस दौर की लेखिकाओं में मृदुलागर्ग का स्थान महत्वपूर्ण है । स्त्री के बदलते व मुक्तिकामी सोच को मृदुला गर्ग की रचनाओं में महसूस किया जा सकता है । इनके लेखन में सामाजिक मान्यताओं के रुढ़ हिस्सों से टकराव और विसंगतियों के विरुद्ध संघर्ष चेतना निहित है । उनकी कहानियों में विद्रोहिणी नारी की स्थिति, विवाहित नारी का मानसिक चित्रण, यौन समस्या, अर्थ और स्वार्थ से युक्त दांपत्य जीवन की जटिलता, सेक्स की जटिल समस्या आदि का उल्लेख मिलता है । उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं 'डेफोडिल जल रहे हैं', 'कितनी कैदें', 'उर्फसैम', 'शहर के नाम' आदि । उपन्यासों में 'उसके हिस्से की धूप', 'अनित्य', 'चितकोबरा', 'मैं और मैं', 'कठगुलाब', 'मिलजुल मन' आदि प्रसिद्ध हैं । 'चुकते नहीं सवाल' उनके आलोचनात्मक ग्रन्थ है ।

दूसरे चरण के और एक ख्यातिप्राप्त लेखिका है राजी सेठ । उनकी अधिकांश कहानियाँ नारी मनोविज्ञान पर केन्द्रित है । बकौल रेणु गुप्ता "इनकी कहानी नारी मन के रेशे-रेशे को खोलकर सामने रख देती है । किस प्रकार नारी अपना मन मारकर जीती है, अपना जीवन शांति से बिताने के लिए । कहीं उसका प्यार कुछ ठोस जीने का साधन चाहता है जहाँ इसकी आपूर्ति में प्यार शब्द खोखला होने लगता है ।"[२२] उनकी प्रमुख रचनाएँ 'तत्सम', 'अँधे मोड़ से आगे', 'अनावृत कौन', 'तीसरी हथेली' आदि हैं।

नासिरा शर्मा इस दौर की लेखिकाओं में विशेष उल्लेखनीय है । उनके लेखन की विशिष्टता है उन्होंने भारतीय समाज में अल्पसंख्यकों की स्थिति व विषमताओं को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है । इस क्षेत्र में वे बिल्कुल अनूठी कलाकार हैं । 'शामी कागज़', 'इब्ने मरियम', 'संगसार' आदि श्रेष्ठ कहानी संग्रह हैं । उपन्यास हैं – 'शाल्मणी', 'ज़िन्दा मुहावरे' आदि । स्वयं नासिरा शर्मा रचनाकार के नाते कहती हैं – "सर्जन से जुड़े व्यक्ति में तीसरी आँख का होना ज़रूरी है । यह उनकी बनावट का अनिवार्य अंग है । चूँकि साहित्यकार का सीधा साक्षात्कार मनुष्यों से होता है । वे उसी के सुख दुःख की बात करते हैं, जो सामाजिक चेतना का ज्वार उन में कुछ अधिक पैना होता है।"[२३]

मध्यवर्गीय चेतना की लेखिका के रूप में मेहरुन्निसा परवेज़ का नाम महत्वपूर्ण है । सामाजिक विसंगतियों, विषमताओं और विद्रूपताओं की तीखी अभिव्यक्ति करने में मंजुल भगत सिद्धहस्त है । मानवीय सरोकार, सहानुभूति और करुणा, मानवीय गुणों की अभिव्यक्ति आदि भावों को भी मंजुल भगत व्यक्त करती है । 'गुलमोहर के गुच्छे', 'आत्महत्या से पहले', 'कितना छोटा सफर' प्रसिद्ध कहानी संग्रह है । 'अनारो', 'खातुल',

'तिरछी बौछार', 'बेगाने घर में' आदि प्रमुख उपन्यास हैं ।

स्वातंत्र्योत्तर दूसरे चरण की समकालीनों में ममता कालिया की उपस्थिति एक भिन्न तेवर लिए हुए मिलती है । ममता कालिया यथार्थधर्मी कहानी लेखिका है । नारी मनोविज्ञान, सामाजिक विसंगतियों का बोध और उनसे उभरने की बेचैनी इनके लेखन की पहचान है । उनकी कहानियों में स्त्री का संघर्ष ही नहीं वरन् उसकी आशा, आकांक्षाएँ भी व्यक्त होती है। आज भी नारी उत्पीड़न से मुक्त नहीं हुई है; उनके जीवन संघर्ष के संदर्भ और क्षेत्र बढ़ गये हैं किन्तु उनके कष्टों का अंत नहीं हुआ है । विख्यात आलोचक अखिलेश का मत है – "ममता कालिया के रचना लोक में दो तरह की छवियाँ प्रमुख है । एक में हमारे भारतीय समाज के मध्यवर्ग की स्त्रियाँ और उनका दुःख है, दूसरे में सामान्य जीवनानुभव है । उनके पास निजी और हैरान कर देने की हद तक विदग्ध भाषा है, भाषा से अधिक यथार्थ और यथार्थ से भी अधिक संवेदना है ।"[२४]

मैत्रेयी पुष्पा का नाम भी इस चरण में विशेष उल्लेखनीय है । उनके नारी पात्रों में सतर्क सामाजिक चेतना और गहरा आत्मविश्लेषणात्मक विवेक है जो नारी विमर्श को ऊँचाईयाँ प्रदान करता है । इनके कथा साहित्य की नारी परंपरागत चेतना से आगे बढ़कर उत्तर आधुनिक समाज की नारी की छवि को सामने रखती है ।

मृणाल पाण्डे दूसरे चरण की लेखिकाओं में प्रसिद्ध है । अपनी कहानियों में स्त्री को पराधीन करनेवाली इन्हीं समाज निर्धारित मान्यताओं, मूल्यों, प्रतिमानों के परत-दर-परत आवरण को उघेड़कर उनके वास्तविक चरित्र को उजागर किया गया है । उनकी कहानियों में पहाड़ी जीवन और उसकी संस्कृति विशेष रूप से चित्रित है । दीप्ति खण्डेलवाल नारी के प्रति अत्यन्त संवेदनशील रही है । स्त्री-पुरुष संबन्ध इनकी कहानियों

का प्रमुख विषय है जिसमें नारी मन के विश्लेषणात्मक चित्रण भी प्रस्तुत किया गया है । सुधा अरोड़ा की कहानियों में लड़कों और लड़कियों के आपसी लगाव और इससे उत्पन्न मोहभंग का चित्रण है । इनकी अधिकांश रचनाओं में शहर के युवक-युवतियों की बेचैनियों को सामान्य शैली में उजागर किया गया है ।

स्वातंत्र्योत्तर दूसरे चरण की लेखिकाओं ने दरअसल पूरे मनोयोग से कथा साहित्य को संपन्न और सशक्त बनाने का भरसक प्रयत्न किया । साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने पुरुष वर्चस्व को चुनौती देकर अपना, दुःख, पीड़ा और तकलीफ़ों को खूब अभिव्यक्त किया । नारी के संघर्ष और संकीर्णतापूर्ण जीवनगाथा के रूप में मध्यवर्गीय परिवार में दम-तोड़कर जीवन व्यतीत करनेवाली भारतीय नारी के जीवन का सजीव चित्र लेखिकाओं ने उल्लेख किया । शिक्षित, कामकाजी नारी जो आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी होने पर भी पुरुष के संस्कारजन्य कुंठाओं का शिकार होती है, उसका भी अंकन इन्होंने किया है । जीवन की परिवर्तनशीलता और नारी संबन्धी मूल्यों को अत्यन्त मार्मिकता के साथ प्रस्तुत करने की उनकी क्षमता प्रशंसनीय है ।

१.७ स्त्री-लेखन का तीसरा चरण

हिन्दी कथा साहित्य में पिछले लगभग कुछ सालों से एक ठहराव की स्थिति आई है । यहाँ ऐसा कोई महत्वपूर्ण सामाजिक राजनीतिक आंदोलन नहीं है जिसने देश की मानसिकता को झिंझोड़ा हो और मुख्य धारा को प्रभावित किया हो । आज की आधुनिकतावादी विचारकों के अनुसार अब विचारों, आन्दोलनों का विकेन्द्रीकरण हो रहा है । डॉ. राजम नटराज पिल्ला के मतानुसार "हिन्दी में हालांकि बहुत बड़ी संख्या में

कहानी और उपन्यास लिखे जा रहे हैं लेकिन ऐसा नहीं प्रतीत होता कि कोई युगान्त या युगारंभ हो रहा है । ऐसी स्थिति में आजकल दलित विमर्श और स्त्री विमर्श ज़्यादा फोकस में आ रहे हैं और उसकी वजह से महिला कथाकारों की संख्या में भी बढ़ोत्तरी हो रही है, उनके कथानकों का क्षेत्र भी विस्तृत हो रहा है और उन्हें सराहना भी बहुत मिल रही है ।"[२५] समाज में विकसित आधुनिकतावाद, उपभोक्तावाद, बाज़ारवाद, भूमण्डलीकरण, उपनिवेशवाद, उदारीकरण, सूचना प्रौद्योगिकी, इलक्ट्रोनिक मीडिया, विज्ञापनबाजी आदि का गहरा प्रभाव हर व्यक्ति में और मानवीय सम्बन्धों में प्रतिफलित होने लगा । वीरेन्द्र मोहन के अनुसार "समकालीन कहानी में मनुष्य के परिवर्तित होते जीवन को अभिव्यक्त करने का प्रयास अधिक विस्तृत फलक पर संभव हुआ है ।"[२६] इन परिवर्तनों से उत्पन्न सांस्कृतिक परिवेश और प्रतिक्रियाओं के प्रति लेखकों के साथ लेखिकायें भी सतर्क होने लगीं । विभिन्न परिस्थितियों के द्वारा उगे हुए प्रतिकूल अनुभवों ने नारी को और भी जागृत और सचेत किया । आधुनिक नारी अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को सुरक्षित रखना चाहती है। समकालीन जीवन का दृष्टिकोण भी अलग है । आज मानव जीवन की विविध स्थितियों और चरित्रों के आंतरिक हलचल से जो स्वरुप उभरकर आया उसकी पहचान आज की कहानियों में बख़ूबी से लेखिकाओं ने चित्रित किया है । समाज हमारी धारणाओं और विचारों का संगम स्थल है ।

आज के उत्तर-आधुनिक परिदृश्य में स्त्री के प्रति रुझान साहित्य जगत् में व्यापक फलक पर अभिव्यक्त हुए है । नारीवादी चिंतन पूर्णतया आधुनिक चेतना से लैस है । स्त्री का विचार है, जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण, उसकी आकांक्षाएँ, अपेक्षायें, उसका जीवन उद्देश्य तथा जीवन के विविध हालतों पर उसके विचारों का विश्लेषण आज

के युग की विशेषता रही है । तीसरे चरण में लेखिकाओं की संवेदनशील अभिव्यक्ति एवं साहसिक आत्म-स्वीकृतियाँ कई मायनों में चौंकानेवाली है । उन्होंने स्त्री की हैसियत में खड़े होकर जिस गहराई एवं सूक्ष्मता से स्त्री जीवन की व्यथा, ज़रूरतों, अधिकारों एवं माँगों पर विचार किया है वह पुरुष रचनाकारों की तुलना में कहीं अधिक सूक्ष्म एवं प्रामाणिक है । इसलिए तो स्त्री रचनाकारों ने साहित्य की विभिन्न विधाओं में स्त्री विमर्श को व्यापक धरातल प्रदान किया है । लेखिकाओं का परम ध्येय स्त्री की विभिन्न भूमिकाओं को अभिव्यक्त कर देना है, जीवन के उन अंधेरे कोनों पर प्रकाश डालना है, जिसकी पीड़ा स्त्रियों ने सालों से झेली है ।

नई पीढ़ी की समकालीन लेखिकाओं में कुछ तो एकदम नई है तो कुछ पहले से ही लिखती रही हैं । इनमें चित्रा मुद्‌गल, कमलकुमार, कुसुम अंसल, कमलेश बख्शी, शुभा वर्मा, सूर्यबाला, प्रभा खेतान, ॠचा शुक्ल, अलका सरावजी, क्षमाशर्मा, ऊर्मिला शिरीष, लवलीन, नीलाक्षी सिंह, उषा महाजन, जया जादवानी, महुआ माजी, मनीषा कुलश्रेष्ठ, संजना कौल, दुर्वासहाय, सीमा शफ़ल, रोहिणी अग्रवाल, अल्पना मिश्र आदि कई लेखिकायें समकालीन कथा साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर के रुप में बहुत प्रसिध्द है । सूचना व संचार क्रांति, पश्चिमी संस्कृति, उपनिवेशी सभ्यता, बाज़ारवाद, भूमण्डलीकण तथा औपभोगिक संस्कृति की प्रवृत्तियों और समस्याओं से समकालीन स्त्री रचनायें लबालब भरी हुई है । आज तक अपने अधिकारों के प्रति उदासीन, व्यथित, दमित स्त्री अपने विरुद्ध किए जा रहे हर किस्म के स्थूल और सूक्ष्म यन्त्रणाओं के खिलाफ लड़ने को तैयार है । स्त्री विमर्शवादी लेखिकायें अपनी कृतियों के माध्यम से साहित्य जगत्‌ में एक चुनौती बनकर रही है । उनके नारी पात्र स्वतंत्र अधिकारों के लिए संघर्षशील दिखाई देते

हैं ।

यह तो विचारणीय है कि हमारी भारतीय संस्कृति में स्त्री का स्थान अत्यंत बड़ा है । स्त्री को परम पूज्य मानने का एक समय था । यह सही है कि स्त्री आज अबला नहीं है सबला है । कानून के वजह से वह पुरुष के समान ही सभी अधिकारों की हकदार है। पारिवारिक दायित्व, शिक्षा, राजनीति, नौकरी, प्रशासन, वाणिज्य, व्यवसाय, विज्ञान जैसे समस्त क्षेत्रों में उसकी सक्रिय भागीदारी है । फिर देखे तो आज भी स्त्री की स्थिति परम दयनीय है । जो अनाचार, अत्याचार, बलात्कार एवं अन्य कई तरह के शोषण का शिकार बनती हैं । इसलिए इस चरण की लेखिकाओं ने नारी की मौजूद हालत का, पुरुष के साथ रिश्तों का, उनके अंतर्विरोधों और अड़चनों के विरुद्ध क्रांतिकारी बिगुल बजा दिया है ।

इस चरण की लेखिकाओं में सबसे धारदार और श्रेष्ठ लेखिका के रुप में चित्रा मुद्‌गल का नाम लिया जाता है । उनकी कहानियों में स्त्रैणता के सहज और असहज दोनों रुपों का टूटता हुआ चित्रण है । यह बिखराव या टूटन घर-परिवार के घेरे में स्थापित तथाकथित आत्मीय संबन्धों के तनावों का है । विनोद तिवारी की राय में “जिस पितृसत्तात्मक समाज में पति का नाम लेना भी अपराध माना जाता हो, वहाँ पति से तर्क करना और आर्थिक आधार पर उससे बराबरी का व्यवहार करना कहाँ संभव हो पाएगा ? घर की चारदीवारी को लाँघकर दफ्तर तक पहुँचनेवाली नौकरी पेशा स्त्रियों की घर और बाहर की समस्याओं का अवलोकन चित्रा मुद्‌गल अत्यंत सूक्ष्मता से करती है ।”[२७] चित्रा मुद्‌गल ने मुंबई जैसे महानगरों में रहकर वहाँ के संघर्षशील तबके को सम्मिलित किया । सर्वहारा और श्रमिक वर्गों के प्रति उनमें विशेष जागरुकता एवं संवेदना का भाव

विद्यमान है । वे लेखिका के अतिरिक्त एक समाज सेविका एवं प्रसार भारती बोर्ड भारत सरकार की सदस्या भी हैं । उनकी प्रमुख कहानियाँ हैं 'ज़हर ठहरा हुआ', 'अपनी वापसी', 'लाक्षागृह', 'इस हमाम में', 'ग्यारह लंबी कहानियाँ' । 'एक ज़मीन अपनी', 'गिलिगडु', 'आवाँ' आदि श्रेष्ठ उपन्यास हैं । अर्चना वर्मा ने लिखा है – "चित्रा मुद्गल की विशिष्टता का कारण अनुभव की स्त्रीजनोचित सीमाओं के परे जाकर सामाजिक दायित्व बोध को उसका स्त्री स्वर देना है ।"[२८]

तीसरे चरण की ख्यातिलब्ध और सशक्त लेखिका है कुसुम अंसल । उनकी रचनाओं में नारी मनोविज्ञान का प्रमुख स्थान है । उनके नारी पात्र परंपराओं से बाहर निकलने की जी-तोड़ कोशिश में लगी है, परन्तु वहाँ से निकल पाना भी उसकी विवशता है । उनके 'एक और पंचवटी', 'रेखाकृति' दोनों चर्चित रचनाएँ हैं । वे मौजूदा परिवेश में स्त्री जीवन की विडम्बनाओं को अपने अपने ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयत्न करती हैं ।

अलका सरावगी इस दौर की अन्य एक महत्वपूर्ण लेखिका है । उनकी प्रथम रचना 'आपकी हँसी' सन् १९९१ में वर्तमान साहित्य पत्रिका के महाविशेषांक में प्रकाशित हुई । उन्होंने कथाक्षेत्र में नित नये-नये प्रयोगों से अपनी प्रभावपूर्ण उपस्थिति बनायी है । तीसरे चरण की लेखिकाओं में सूर्यबाला का नाम भी विख्यात है । उन्होंने नारी की अंतर्हित भावनाओं को प्रस्तुत किया है । प्रेम की सूक्ष्म रूमानी छवियाँ सूर्यबाला ने अंकित की है । इसके अलावा ज़िन्दगी के मुश्किल हिस्सों का चित्रण भी उन्होंने प्रस्तुत किया है । 'खुशहाल', 'विजेता' जैसी कहानियों में पूँजी से आक्रांत समय की सच्चाईयों के अनेक रूप प्रस्तुत किया गया है ।

एक 'बोल्ड' कथा लेखिका के रूप में गीतांजली श्री स्वातंत्र्योत्तर तीसरे

चरण की लेखिकाओं में मशहूर है । उनकी कहानियों में 'स्त्री' को लेकर जो नैतिकताएँ वर्जनाएँ स्थापित की गई हैं, उन पर स्त्री के नज़रिए से, बिना कोई क्रांतिकारी मुद्रा अपनाए सार्थक बहस दिखती है । उनकी स्त्रियाँ इतनी वाचाल और सबल न होने पर भी अपनी स्वतंत्र अस्मिता बनाये रखने में नितान्त प्रयत्न करती रहती हैं । 'नाम', 'चौक', 'दहलीज' जैसी कहानियों के स्त्री पात्र इस चरित्र को बखूबी निबाहती है । जया जादवानी की कहानियों में अस्तित्व बोध और अस्मिता की तलाश की जो पुरानी अभिव्यक्ति है वह बिलकुल भिन्न तरीके से प्रस्तुत है । उनका समकालीन लेखन संदर्भवान और विश्लेषणात्मक हुआ है । 'कुछ न कुछ जाता है' कहानी स्त्री लेखन का गंभीर विश्लेषण प्रस्तुत करती है।

भूमंडलीकरण आज काफी चर्चित विषय है । समकालीन लेखिकाओं की रचनाओं में इसका प्रतिफलन अच्छी तरह झलकता है । नव लेखिका महुआ माजी की 'रोलमॉडल' कहानी में एक दकियानूसी मुहल्ले के आम लोगों में बाज़ारवाद के प्रभाव को सूचित करती है । वृद्धों के जीवन की त्रासदियों का दर्दनाक चित्रण मनीषा कुलश्रेष्ठ की 'प्रेत कामना' कहानी में चित्रित है । लवलीन की कहानी में निड़रता का भाव देख सकते हैं । एक पत्रकार होने के ज़रिये लवलीन के यहाँ अनुभवों का वैविद्यपूर्ण चित्र झलकता है । विनोद तिवारी के अनुसार "उनके कथा-लेखन में स्त्री-स्वर आधुनिकता लिए हुए है । उनकी स्त्रियाँ किसी पीड़ा या दमघोंटू माहौल में नहीं जीती हैं और न ही उनके पारंपरिक शोषण का शिकार ही दिखाया गया है । यह निश्चित रूप से एक नई दिशा की ओर छलाँग है ।"[२९] 'बहुस्यामि' उनकी एक ऐसी कहानी है जिसकी नायिका शिखा अनेक लडाई और जिजीविषा के बाद बहुआयामी जीवन में पहुँच पाती है । मीडिया और मल्टीनेशनल की जुगलबन्दी ने नारी के व्यक्तित्व और अस्तित्व को हरण करने

में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । क्षमा शर्मा का 'न्यूड का बच्चा' इस दृष्टि से श्रेष्ठ है । इसमें टैक्नोलॉजी को पूँजीवादी मानसिकता ने हाईजैक कर लिया है और अब वह पूँजीवादी स्वार्थ भावनाओं के अनुरुप नारी का इस्तेमाल कर रही है ।

दुर्वासहाय, रोहिणी अग्रवाल, सीमा शफल, नीलाक्षी सिंह, संजना कौल आदि लेखिकायें नई हैं, किन्तु प्रौढ़ और सशक्त हैं । इन्होंने अपने तेवर से तमाम समाज की बुनावट और बनावट को शीघ्रता से परिवर्तित किया है । इनकी रचनाएँ अपने कलात्मक सौन्दर्य के कारण नहीं बल्कि अपने व्यापक विस्तृत सामाजिक संदर्भ के कारण इस अधुनातन साहित्य में इतना महत्वपूर्ण, सार्थक व अर्थवान बन पड़ी है ।

उपर्युक्त लेखिकाओं के अतिरिक्त अन्य अनेक लेखिकायें इस क्षेत्र में सृजनरत हैं । नारी लेखन आज सामाजिक चेतना का वाहक बन गया है । वह घर से बाहर आकर खुला संसार खुली आँखों से देख चुका है । हिन्दी कथा साहित्य की विकास यात्रा में लेखिकाओं का योगदान प्रशंसात्मक है । इन्होंने पारिवारिक, सामाजिक, वैयक्तिक, जैविक, आर्थिक, धार्मिक, नैतिक, राजनैतिक जैसे सभी पहलुओं को समझकर अध्ययन कर समाज के सामने प्रस्तुत किया है । कभी-कभी लेखक नारी संबन्धी कुछ बातों को नगण्य मानते हैं वहाँ लेखिकायें उन बातों को भली भांति जानकर उसकी वास्तविकता को प्रस्तुत करती हैं । खासकर कामकाजी महिलाओं की ज़िन्दगी पर इन्होंने इशारा किया है क्योंकि इनका क्षेत्र विस्तृत और व्यापक हैं । अतः इस उत्तराधुनिक युग के विशेष संदर्भ में स्त्री लेखन और लेखिकाओं का अध्ययन महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है । इन लेखिकाओं में दूसरे चरण की एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर है ममता कालिया ।

स्त्री लेखन की मानसिकता और संवेदना पर ममता कालिया का विचार

ध्यान देने योग्य है – "महिलाएँ इस समय जो लिख रही हैं वह पुरुष कथाकारों के लिए चुनौती बनती जा रही है । मैं नहीं कहूँगी अधिकांश महिला लेखन बहुत अच्छा है । कहानी को लेकर ये जनाना - मर्दानावाली बात मुझे पसन्द नहीं है । इन्हें खाली मूत्रालय और प्रतीक्षालय तक रखना चाहिए । इतना तो हम अवश्य मानेंगे कि जीवन को जितनी गहराई और संवेदना तथा जिस तीव्रता से औरत जीती है शायद उस तीव्रता तक पुरुष पहुँच ही नहीं सकता क्योंकि वह पुरुष है ।"[३०] हिन्दी साहित्य जगत के ऐसे जाज्वल्यमान नक्षत्र ममता कालिया के समूचे व्यक्तित्व और रचनात्मक वैभव को जानना समीचीन और अभिलषणीय लगता है ।

१.८ ममता कालिया

हिन्दी कहानी के परिदृश्य पर ममता कालिया की उपस्थिति सातवें दशक से निरन्तर बनी हुई है । एक लेखिका की हैसियत से हिन्दी कथा साहित्य को प्रगति की ओर बढ़ाने में उनका अपना विशेष योगदान रहा है । कहानी के क्षेत्र में ही नहीं उपन्यास, एकांकी, कविता, बाल साहित्य और अनुवाद में भी उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है । उनकी पहचान अन्य लेखिकाओं की अपेक्षा अलग है, बिल्कुल निजी है । जैसे रामकली सराफ ने उल्लेख किया है, "ममता कालिया की साधारण बात भी असाधारण का आवरण लिए हुए होती है । सामान्यता और सहजता उनकी खास पहचान है ।"[३१] साठोत्तरी काल के यथार्थवादी चेतन परंपरा के साहित्यकारों में ममता कालिया का स्थान विशेष उल्लेखनीय है । उन्होंने मुख्यतः आधुनिक नारी की विभिन्न मनःस्थिति, पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी के संबन्ध, आधुनिक समाज में उभरती विभिन्न समस्यायें, मानवीय संबन्धों में उत्पन्न मूल्य परिवर्तन, पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के बीच का टकराव आदि को लेकर साहित्य

सृजन किया है ।

सन् १९६० में दैनिक जागरण के रविवार संस्करण में ममता कालिया की पहली रचना प्रकाशित हुई । यथार्थवादी विचारधारा उनकी रचनाओं में देख सकते हैं । श्री प्रह्लाद अग्रवाल के अनुसार "ममता कालिया की स्पष्ट और निर्भीक दृष्टि उनकी बहुत बड़ी शक्ति है । उनकी कहानियों में छिपाव नहीं है । उनमें नारी का पुरुष के समान्तर स्थान बनाने का आस्थापूर्ण प्रयत्न है । आधुनिक स्थितियों की रोशनी में सूक्ष्मता से पहचाना है । अतिशय भावुकता उनकी कहानियों में नहीं है, किन्तु उनका बहिष्कार भी नहीं है । भावुकता जीवन का अनिवार्य अंग बनकर सामने आती है । इसलिए वह गतिरोध नहीं बनती, प्रवाह पैदा करती है । जीवन के छोटे-मोटे संवेदनात्मक क्षणों को उन्होंने बड़ी खूबसूरती से पकड़ा है ।"[३२] वे रचना और रचनात्मकता में पूर्ण भरोसा रखनेवाली कहानीकार हैं ।

एक लम्बे रचनाकाल में अधिकांश रचनाकार थक और चुक जाना स्वाभाविक है लेकिन ममता कालिया का लेखन इस बात का उत्तम गवाह है कि उनमें अब भी ऊर्जा और क्षमता है अर्थात् वे अब भी सृजनरत हैं । उनके रचना वैशिष्ट्य पर रवीन्द्र कालिया का कथन प्रभावान्वित है – "ममता का एक निश्चित पाठक वर्ग है । उसकी कोई रचना प्रकाशित होती है तो हमारे घर की डाक में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि हो जाती है । अधिसख्य पत्र प्रशंसकों के होते हैं, कुछ पत्र दिल फेंक दीवानों के भी होते हैं । हिन्दुस्तान में औरत होना काफी जोखिम का काम है, महिला कहानीकार होना तो उससे भी अधिक बहादुरी का काम ।"[३३] समकालीन सामाजिक यथार्थ को सहज और विश्वसनीय शिल्प में प्रस्तुत करने की कला में ममता कालिया को चर्चित लेखिकाओं की पंक्ति में अग्रसर

स्थान में समासीन किया है ।

ममता कालिया के पिताजी साहित्य प्रेमी होने के नाते कलाकार उनके लिए सबसे आदर का पात्र भी थे । इसलिए कि बीच बीच में घर पर साहित्यिक कार्यक्रमों का आयोजन होता था । जैनेन्द्र कुमार, रंगेय राघव, प्रभाकर माचवे, विष्णु प्रभाकर जैसे वरिष्ठ साहित्यकार से छोटी उम्र में ही परिचित होने का सुअवसर भी उन्हें मिला था । एक बार की गोष्ठी में जैनेन्द्र उनकी कहानी का पाठ कर रहा था, ममता जी कुछ समझे बिना भी सुन रही थी । गोष्ठी समाप्त होते ही पिताजी ने जैनेन्द्र की बेहद प्रशंसा की, इसलिए कि उस गोष्ठी में उनके आग्रह की पूर्ति हो गयी। इस पर ममता कालिया लिखती है – "पापा से हम डरते भी थी और उनकी श्रद्धा भी करते थे । जैनेन्द्र जी श्रद्धेय के श्रद्धापात्र थे, यानी हमारे लिए ध्रुवतारा । उस दिन मुझे लगा, बडी होकर मैं भी कहानियाँ लिखा करूँगी, तब मानेंगे मुझे ।"[३४]

ममता कालिया का बचपन विविध जगहों में गुजरा था । उनकी शिक्षा मुंबई, पूना, नागपूर, इन्दौर और दिल्ली में हुई थी । जब वे पूना के दस्तूर पब्लिक स्कूल में पढ़ती थी तब एक बार उन्होंने अपनी हिन्दी अध्यापिका की आलोचना की । जब अध्यापिका के कानों तक यह खबर पहुँची, अगले दिन ममता कालिया को खूब डाँट मिली और स्कूल से उन्हें निकाल भी दिया गया । पर पिताजी ने उनकी डाँट फटकार करने के बदले, ठीक तरह से समझाने का प्रयत्न किया । ममताजी की समस्त भलाई और कच्चाई में उनके पिताजी के बहुआयामी व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण योगदान है ।

ममता कालिया के घर में दोपहर का समय बडे-बडे ग्रंथ निश्चित समय के

अंदर पढ़ने का आदेश पिताजी देते रहते थे । "नेहरूजी की आत्मकथा का एक चैप्टर पढ़कर रखना, मैं शाम को आकर पूछूँगा ।"[३५] इस प्रकार छोटी उम्र में ही इतनी बड़ी पुस्तकें पढ़ने से यद्यपि मन में कुछ नहीं आती फिर भी पढ़ने की आदत आ गयी थी । कम आयु में ही बड़ी बड़ी किताबें पढ़ने से निरन्तर पढ़ने का अभ्यास हो गया । साथ ही साहित्य और साहित्यकार के प्रति पिता का आदर भाव ममता कालिया के लिए अपने साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण में प्रेरणा रहें ।

जब ममता कालिया इन्दौर के क्रिश्चियन कॉलेज में पढ़ती थी तब भली-भाँति वाद-विवाद और अनेक प्रतियोगिताओं में भाग लेती थी । असफल लड़के ममता कालिया को 'मिस एटमबम' नाम से पुकारते थे । उनकी खास विशिष्टता यह है कि उनमें आम औरतों की आदतें जैसे भय, लज्जा, चंचलता, चुप्पी आदि नज़र नहीं आतीं । उन्होंने इन सभी अधीर भावों को शिक्षा प्राप्त करने के साथ-साथ ही छोड दिया था । इन्दौर क्रिश्चियन कॉलेज से उन्होंने बी.ए पास की थी । जब से इन्दौर क्रिश्चियन कॉलेज में थी तब वहाँ गोष्ठियाँ होती थी और कहानी गोष्ठी का कार्यक्रम भी आयोजित होता था । उस समय युवा कवि चन्द्रकांत देवताले, सरोज कुमार, चन्द्रसेन विराट, श्रीकान्त जोशी, देवव्रत जोशी, कहानीकार रमेश बक्षी आदि से मिलने और उनकी बातों से परिचित होने का अवसर भी मिला था ।

सन् १९६१ में ममता कालिया दिल्ली विश्वविद्यालय में एम.ए अंग्रेज़ी के लिए दाखिल हो गयी थी । उनको लगता था कि वहाँ के सारे छात्र उससे भी ज़्यादा योग्य और प्रतिभावान है । लेकिन कुछ दिनों से मालूम हुआ कि केवल बोलचाल और व्यवहार में ही उन्हें इतनी अच्छी अंग्रेज़ियत आती । ये सभी बाहरी दिखावा मात्र है । ममता कालिया

ने खुद लिखा है – "यह पीढ़ी 'एनकाउन्टर' और 'क्वेस्ट' में छपी पुस्तक समीक्षाएँ, आइफैक्स में मंचित नाटक और गालगोटिया के काउन्टर पर रखी पुस्तकों के शीर्षक याद रखकर समकालीनता का दम भरती थी, जबकि मैं तब तक अन्सर्ट फिशर की 'नेसेसिटी ऑफ आर्ट' और शिवकुमार मिश्र का 'मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र' हृदयंगम कर चुकी थी ।"[३६]

ममता को छुटपन से ही सतत पढ़ने की अच्छी आदत मिल गयी थी, यह उनके साहित्य रचना की ओर उन्मुख होने का प्रेरणादायक घटक भी साबित हो गया । उनके घर के निकट जो दूकान थी, जहाँ कम खर्च से पुस्तकें मिलती थीं । साहित्य प्रेमी उनके पिता के पास भी श्रेष्ठ हिन्दी और अंग्रेज़ी पुस्तकें थीं, जिसको ममता ने बी.ए करने के पहले ही हज़म कर लिया था । जब जब जहाँ जहाँ सोवियत पुस्तकों की प्रदर्शिनी होती थी वहाँ से वह सस्ते दाम में पुस्तकें खरीदती । इसके अलावा एम.ए की पढ़ाई करते समय हर महीने जेब खर्च के लिए जो दस रुपये मिलते थे और कभी 'ज्ञानोदय' या 'सुप्रभात' में प्रकाशित उनकी कविता और कहानी को पारिश्रमिक के रूप में जो रुपये मिलते थे इनसे उन्होंने एम.ए. एब्राहम का 'द मिरर एंड द लैम्प', सीमोन द बोऊवार की 'द मैन्डरिन्स', 'द सेकेंड सेक्स' आदि किताबें खरीदी थीं ।

एम.ए की पढ़ाई के दौरान जगदीश चतुर्वेदी के आग्रह पर ममता की कुछ कविताएँ अकविता संकलन 'प्रारंभ' में सम्मिलित की गई थीं । उन दिनों कविता की ओर उनका रुझान अधिक था । उनकी कविताओं का अंग्रेज़ी अनुवाद हो गया था और बहुत सी कवितायें चर्चित भी हो गयी थी । 'प्रारंभ' की एक कविता है –

"प्यार शब्द घिसते-घिसते चपटा हो गया है
अब
हमारी समझ में सहवास आता है"[३७]

लेकिन उन्होंने बाद में कविता लिखना एक हद तक छोड़ ही दिया क्योंकि उन दिनों अकविता पर विशेषकर स्त्री के प्रति एक प्रकार की भोगवादी एवं वस्तुवादी दृष्टिकोण का प्रयोग दिखाई पड़ता था । उन दिनों दिल्ली में कहानी को अधिक प्रयोगधर्मी मानती जा रही थी । इन सबकी वजह से उनको लगता था कि किसी भी रचनाकार के लिए सबसे श्रेष्ठ बात मौलिकता है । मौलिकता को बनाये रखने के लिए एक अनिवार्य रचनात्मक माध्यम की ज़रूरत है । इसलिए ममता कालिया ने कहानी को समग्रता के साथ आत्मसात् किया ।

जब से रवीन्द्र कालिया से परिचय हुआ उन्होंने ममता को अपने निजी दृष्टिकोण से समाज और जीवन को देखने परखने की प्रेरणा दी । ममता के शब्दों में, "रवि के दुस्साहस और दबंगई ने मुझे एक नयी रचनात्मक ऊर्जा से भर दिया । जब भी जहाँ भी मुझे बोलना होता रवि कहते जाओ बेधड़क बोलकर आना, बबर शेर की तरह जीना सीखो ।"[३८]

ममता कालिया ने दिल्ली विश्व विद्यालय से सन् १९६३ में अंग्रेज़ी साहित्य में पाँचवाँ स्थान प्राप्त कर एम.ए पास की । तत्पश्चात् दौलतराम कॉलेज दिल्ली और एस.एन.टी.टी कॉलेज मुम्बई में प्राध्यापन करने के बाद सन् १९७३ से २००१ तक उनके प्रिय शहर इलाहाबाद के महिला सेवासदन डिग्री कॉलेज में प्राचार्या का पद अलंकृत करने का सौभाग्य मिला । उन्होंने यहाँ रहकर दो दर्जन से अधिक रचनायें लिखीं ।

१.९ सर्जनात्मकता की विकास यात्रा

सन् १९६५ में वरिष्ठ साहित्यकार रवीन्द्र कालिया से ममता कालिया की प्रथम मुलाकात हुई थी । यह परिचय धीरे-धीरे विवाह के पवित्र रिश्तों में तब्दील हो गये । इलाहबाद उन दोनों के जीवन की सबसे महनीय और मनोरम मंजिल रही । क्योंकि उन्होंने खुद बताया है कि "इस शहर ने हमें जीविका प्रदान की, इसने हमें सामान्यता का सौन्दर्यशास्त्र, स्वाभिमान का वर्चस्व और एकाग्रता का उन्मेष दिखाया।"[३९] वास्तव में इस शहर में कुछ की भी कमी नहीं, यहाँ सब कुछ है । शोध, बोध और अर्थ का संगम स्थल है यह । यहाँ रचना धर्मिता की सार्थकता, सफलता और निजता का सम्मान मिलते हैं । इस शहर के छोटे-मोटे रचना प्रेमी में जो विशेषतायें नज़र आती है वे सब ममता जी के सर्जनात्मक व्यक्तित्व में भी है । श्री रवीन्द्र कालिया ने ममता के बारे में लिखा है – "ममता में परिश्रम करने की अद्‌भुत क्षमता है । वह एक साथ कई मोर्चा पर तैनात रह सकती है । एक तरफ कॉलेज की जिम्मेदारियाँ, दूसरी तरफ सभा गोष्ठियों के आमन्त्रण, लेखन का दबाव । कई बार आश्चर्य होता है कि इतनी व्यस्तताओं के बीच वह लिखने का समय कब चुराती है । ट्रैन में वही लिख सकती है, मैं तो पढ़ भी नहीं सकता । उसने लिखा हुआ कभी 'रिवाइज़' नहीं किया, जो लिख दिया, वह अंतिम है । ममता के लिए लेखन सबसे प्यारा पलायन भी है । वह किसी बात से परेशान होगी तो लिखने बैठ जायेगी । उसके बाद एकदम संतुलित हो जायेगी ।"[४०]

इलाहाबाद में बसने का सुझाव सबसे पहले उन्हें उपेन्द्रनाथ अश्कजी और उनके परिवार ने दिया था । दरअसल, अश्क जैसे साहित्यकार ही अपने अनुयायियों को रचना के द्वारा आगामी जीवन को सुदृढ़ बनाने के लिए प्रेरणा की बुनियाद बनी थी ।

जिन साहित्यकारों को केवल पुस्तकों के द्वारा जानती थी जैसे सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, अमरकान्त, शेखर जोशी, शैलेश मटियानी, ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, शांति मेहरोत्रा आदि से मिलने और पथ के साथी बनकर साथ चलने का उत्तम मौका भी ममता कालिया को मिल गया ।

इस दौरान साहित्यिक जीवन में नयी-नयी रचनाओं के सृजन के साथ ममता कालिया को दो बच्चों को जन्म देने का सौभाग्य भी मिल गया । परिवार के साथ उनका जीवन संतुष्ट है । उनके दांपत्य जीवन में एक दोस्ताना का भाव प्रतिफलित होता है । ममता को अपना पति, बच्चे सबसे अधिक प्यारे है । जीवन की यात्रा में वे हमेशा उनके साथी रहे । रवीन्द्र कालिया का मत है – "ममता एक कथा लेखिका ही नहीं, अच्छी नर्स भी है । मैंने अनेक अवसरों पर उसे अपनी माँ अथवा मेरी माँ की सेवा करते देखा है । जिन स्थितियों में औसत आदमी खौफ खाकर रोगी के पास से भाग जाय, वह अत्यंत लगन से सेवा में लगी । मैं तो किसी को तड़पने या कराहने देख ही नहीं सकता । ममता इस दृष्टि से 'पत्थर दिल' है । वह बगैर घबराये या 'नर्वस' हुए धैर्यपूर्वक रात-रात भर जग सकती है, रोगी को नींद लग जाये तो कहानी लिख सकती है । कई बार लगता है हम दोनों एक दूसरे के विलोम हैं । जो मुझे पसंद है ममता को सख्त नापसंद । मुझे शशि पसन्द है तो उसे रवि ।"[४१] वैवाहिक जीवन में ऐसी कुछ असमानता देखने पर भी उनके दांपत्य जीवन अत्यंत सन्तुष्ट एवं शांत है ।

१.१० ममता कालिया की महत्वपूर्ण साहित्यिक रचनाएँ

साहित्यरूपी विशाल जगत में ममता कालिया का वास्तविक आरंभ सन् १९६५ के बाद होता है । यद्यपि इससे पहले कुछ कहानियाँ और कवितायें विविध

पत्रिकाओं में प्रकाशित थीं । 'कहानी' मासिक द्वारा आयोजित कहानी प्रतियोगिता में उनकी 'उपलब्धि' कहानी को प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ । इसमें दांपत्य जीवन में पति-पत्नी के तनाव का चित्रण हुआ है । इसके बाद साहित्य के विभिन्न विधाओं पर उन्होंने अपनी कलम चलायी है । अंग्रेज़ी, जापानी, जर्मन के अलावा प्राय: सभी भारतीय भाषाओं की कहानियों के अनुवाद उन्होंने किया है । लगभग पैंतालीस साल के अंदर कुलमिलाकर उनकी पच्चीस पुस्तकें प्रकाशित हुई है । अब भी वे सक्रिय रुप में सृजनरत हैं । अब तक प्रकाशित रचनाओं का एक संक्षिप्त परिचय दिया गया है ।

१.१०.१ उपन्यास साहित्य

'बेघर' ममता कालिया का १९७१ में प्रकाशित बहुचर्चित एवं विख्यात उपन्यास रचना है । इसके प्रमुख पात्र परमजीत और संजीवनी हैं । इसमें उपन्यासकार भारतीय समाज में व्याप्त पुराने जटिल विचारों व भावों के परिणाम को चित्रित करती है । शारीरिक संबन्धों पर आपसी सन्देह के कारण पति-पत्नी के जीवन में दरार आती है और वैवाहिक संबन्ध टूट जाता है । शादी के तुरन्त बाद परमजीत के मन में अपनी पत्नी संजीवनी के कुंवारेपन पर सन्देह हो जाता है । परमजीत मध्यवर्ग परिवार का है । शहर में नौकरी मिलने पर भी अपनी पुरानी, रूढ़िगत संस्कार से उन्हें पूर्णतः मुक्ति नहीं मिली थी। यौन संबन्ध के प्रति उसके मन में गलत धारणाऐं मौजूद है । मुम्बई जैसे विशाल शहर में जीने के बावजूद यौन संबन्धों से जुड़े यथार्थ से वह वाकिफ नहीं है । वास्तव में संजीवनी उसकी प्रेमिका रही थी । इसलिए उसके साथ सहज यौन सम्बन्ध स्वाभाविक भी है । लेकिन प्रथम शारीरिक संबन्ध के पश्चात् परमजीत को ऐसा लगता है कि संजीवनी के लिए परमजीत प्रथम पुरुष नहीं है । इसलिए वह उसे छोड़ देता है ।

फिर रमा जैसे फूहड़ और कंजूस लड़की से उसकी शादी होती है । वह स्वभाव से ही संकीर्ण, स्वार्थी और दकियानूसी है । ऐसी लड़की से शादी करके परमजीत अकेलापन और लगाव की गिरफ्त में आ जाता है ।

'बेघर' के सम्बन्ध में डॉ. शशिप्रभा वर्मा ने उल्लेख किया है – "वे नारी की मानसिकता के घुटते हुए, कुछ प्रश्नों को उठाती है एवं तथ्यों का 'पोस्टमार्टम' सा करती हुई उनकी यथार्थता को बीन कर रखती जाती है । आज के समाज के मानस में कुँवारेपन की धारणा अथवा पति-पत्नी के विभिन्न दिशाओं में चलने के कारण गृहस्थ जीवन की अवधारणा ऐसे ही जीवन तथ्य है जो ममता कालिया की कथाओं को गति देते हैं ।"[४२]

इस उपन्यास में लेखिका ने शिक्षित समाज में भी बरकरार गलत धारणाओं को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है ताकि समाज उनसे मुक्त हो जाय । हमारे पुरुष मेधा समाज के पुरुषों के मन में स्त्री की देह और मन के सम्बन्ध में ऐसी मिथ्या धारणाएँ हैं जिनकी वजह से दांपत्य जीवन अत्यंत दूभर हो जाता है । ऐसे गलतफहमियों से मुक्त होने की सलाह भी इस उपन्यास में अपने आप सन्निहित है ।

'नरक-दर-नरक' १९७५ में प्रकाशित ममता कालिया का दूसरा प्रसिद्ध उपन्यास है । इसके प्रमुख पात्र जगन उर्फ जोगेन्द्र साहनी और उषा है । दोनों पति-पत्नी है । इसमें लेखिका मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन की अनेक परतों को उघाड़ने का प्रयास करती है । इसकी प्रमुख समस्या मध्यवर्गीय समाज की बेकारी और उससे जुड़ी परिस्थितियाँ हैं जो जीवन को भयानक बनाती है । हालांकि जगन को अंग्रेज़ी एम.ए की उपाधि प्राप्त है लेकिन उसे कोई नौकरी हासिल नहीं होती । वह नौकरी की तलाश में इधर-उधर घूमते फिरता है । बहुत समय के बाद उसे बेकारी से मुक्ति मिलती है । मुंबई के एक कॉलेज

में वह प्राध्यापक बनता है । वहाँ के 'समर इनस्टिट्यूट' में उनकी मुलाकात उषा से होती है । दोनों की शादी होती है । उसके बाद छोटी-छोटी बातें पर दोनों झगड़ा करते हैं और उसकी वजह उनके जीवन में दरारें आ जाती हैं । कॉलेज के राजनैतिक वातावरण से जगन परेशान है । इतना ही नहीं वहाँ के अनीति और अत्याचार से भी उसका मन उचट जाता है । इसलिए वह इस्तीफा देता है । फिर वह एक प्रेस खरीदता है । उनके बेटे के असावधानी की वजह प्रेस भी उसके हाथ से निकल जाता है और यों फिर वह बेकार हो जाता है ।

इस उपन्यास में सीता गुप्ता और विनय गुप्ता जैसे दम्पति का चित्रण भी मिलता है । सीता अध्यापिका के कामों के साथ ही साथ तीन बच्चों को और अपने परिवार को भी अच्छी तरह संभालती है । पति विनय हमेशा परिवार के प्रति लापरवाह है । वह संदेहशील है और कभी भी पत्नी का हाथ बँटता भी नहीं है । कभी कभी वह पत्नी तथा माँ की अपेक्षा स्वयं को विनय के घर की नौकरानी भी समझने लगती है । जैविक ज़रुरतों के प्रति भी एक प्रकार का वितृष्णा का भाव उसमें आ जाता है । यों उनका पारिवारिक जीवन नरकीय बन जाता है ।

पारिवारिक जीवन का अधिष्ठान सचमुच आपसी समझौता, सहयोग और आदान-प्रदान की भावना है । जो परिवार इन सभी से लैंस है वह स्वर्ग बन जाता है और जो इनसे रहित है वह परिवार नरक बन जाता है । यही बात इस उपन्यास में स्पष्टत: जाहिर होती है ।

'प्रेम कहानी' १९८० में प्रकाशित एक विख्यात उपन्यास है । इसमें ममता कालिया ने मध्यवर्गीय परिवार, पति डॉक्टर होने के कारण उसी की व्यस्तता और पति-

पत्नी के बढ़ते तनावग्रस्त जीवन का चित्रण किया है । प्रेम विवाह की समस्यायें, दांपत्य जीवन की विशेषताएं, समझौतावादी वृत्ति आदि बातों का चित्रण इसमें किया गया है । श्री जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव के शब्दों में, "समकालीन कथा-पीढ़ी में ममता कालिया पहली उपन्यास लेखिका है जिन्होंने अपने 'प्रेम कहानी' नामक उपन्यास के छोटे फलक पर बड़ी संजीदगी से हिन्दुस्तानी चिकित्सालयों में फैले भ्रष्टाचार, अन्याय, अनियमिता और क्रूरता की ओर ऊँगली उठाई हैं । दरअसल हर रचनाकार को आज यह विचार करने की ज़रुरत है कि उनके सामने जो चुनौतियाँ हैं वे अकेले उनको नहीं बल्कि मामूली आदमी के सामने भी ।"[४३]

'लड़कियाँ' उपन्यास १९८४ में ममता कालिया ने लिखा । इस उपन्यास में महानगर में रहकर काम करनेवाली अविवाहित लड़कियों की प्रामाणिक छवि प्रस्तुत किया है । इस उपन्यास के बारे में रवीन्द्र कालिया का कथन है – "आधुनिक नगरबोध के साथ-साथ जीवन की स्पर्द्धा व्यक्त करनेवाला लघु उपन्यास 'लड़कियाँ' व्यक्तिमन के मर्मस्थल की ई.सी.जी रिपोर्ट भी प्रस्तुत करता है । ममता ने मुंबई नगर के विज्ञापन जगत को करीब से देखकर जो प्रभाव ग्रहण किये, 'लड़कियाँ' उसी का सृजनात्मक रुप है ।"[४४]

'ऐसा था बजरंगी' बाल उपन्यास है । साहित्य के कई विधाओं के साथ ममता कालिया ने बच्चे को ध्यान में रखकर लिखा बालोपयोगी उपन्यास है । लेकिन अफसोस की बात है कि यह आजकल अप्राप्य है । इसलिए अधिक कुछ लिखना असंभव है ।

'एक पत्नी के नोट्स' ममता कालिया का और एक महत्वपूर्ण उपन्यास है । यह उनकी कहानी 'एक जीनियस की प्रेमकथा' का विकसित रुप है । इसके मुख्य

पात्र संदीप और कविता हैं । सन्दीप एक जीनियस है साथ ही अपनी बुद्धि पर उसे गर्व है । यद्यपि इस उपन्यास में पत्नी के प्रति पति का निरंकुश व्यवहार दृष्टिगत होता है, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है । अर्चना गौतम ने उल्लेख किया है – "इस उपन्यास पहली दृष्टि में ऐसा भी लग सकता है कि इसमें पति द्वारा सतायी गई नारी की दुःखपूर्ण कहानी है । वस्तुतः यह एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है, जिसमें लेखिका ने सन्दीप की मानसिकता को स्पष्ट करने का प्रयास किया है । साथ ही साथ उपन्यास में पति-पत्नी के मधुर और कटु संबन्धों का चित्रण भी हुआ है । घृणा और प्रेम के एक साथ चित्रण में उपन्यास कहीं अप्रत्ययकारी भी हो गया है, पर यही इसकी पहचान भी है ।"[४५]

कभी-कभी कविता के प्रति सन्दीप के बुरे व्यवहार, अप्रसन्नता, क्रोध आदि देखकर ऐसा लगता है कि वह कविता से केवल घृणा ही करता है, असल में ऐसा नहीं । वह अपनी पत्नी को बेहद प्यार करता है, बेहद चाहता भी है । कभी-कभी वह बच्चे से भी घृणा करता है । लेकिन दरअसल दिल की तह में उसे पत्नी और बच्चों के प्रति प्यार है । बल्कि वह बाहर ज़ाहिर करता नहीं । पुरुष मेधा समाज के पुरुष की विशेष आदत की ओर ही ममता कालिया ने संकेत किया है ।

'दौड़' ममता कालिया का लघु उपन्यास है । लेखिका ने अन्य उपन्यासों से बिलकुल भिन्न तरीके से आधुनिक समाज की वणिक् मनोवृत्ति को केन्द्रित करके इस उपन्यास की रचना की है । भारतीय नागरिक को आज अनेक क्षेत्रों में उन्नति हासिल करने की सुविधाएँ उपलब्ध हैं । बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने रोज़गार के नये-नये अवसर प्रदान किये हैं । इस उपन्यास के पात्र भी इस बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से जुड़े भारतीय हैं । लेकिन इन अवसरों के पीछे जो आफत के गड्ढ़े है उनसे लोग बेखबर हैं । रेखा, राकेश, पवन, सघन

और स्टैला के इर्द-गिर्द बुनी यह साधारण सी कहानी आज हर तीसरे परिवार में दोहराई जा रही है ।

माँ-बाप बच्चों के बेहतर भविष्य के लिए सब प्रकार की सुख-सुविधाओं को समेटते हैं, उन्हें सब कुछ देकर, उच्च शिक्षा के लिए अन्यत्र भेजते हैं । वहाँ परिवेश बदलने के साथ अपने में भी परिवर्तन आते है । तब उन्हें माँ-बाप के प्रति याद करने का वक्त ही नहीं मिलता । बाज़ार और प्रौद्योगिकी कैसे मनुष्य के अन्तर्जगत और मानवीय सम्बन्धों को बदल रही है 'दौड़' इसकी व्यापक और विश्वसनीय पहचान कराता है । प्रमुख समीक्षक कृष्णमोहन ने लिखा है, "बीसवीं सदी के अंत में भारतीय समाज के सबसे गहरे सांस्कृतिक संकट का आख्यान है 'दौड़' । हमारा समाज आज ऐसे दोराहे पर खड़ा है जहाँ से एक रास्ता बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की चरम उपभोक्तावादी संस्कृति के अंधे कुएँ को जाता है तो दूसरा संस्कार, सुरक्षा और सामन्ती सामुदायिकता की पुरानी और गहरी खाई की ओर । दोनों एक दूसरे की कमज़ोरियों से ताकत पाते हैं । तीसरा रास्ता मिलता नहीं । पत्रकार पिता का बेटा तरक्की के लिए एक के बाद दूसरी कम्पनी बदलता हुआ 'प्रोफशनल एथिक्स' की बात करता है, जबकि पिता को यह कृतघ्नता जान पड़ती है । किसी ज़माने में अपनी सास की मर्जी के खिलाफ प्रेम विवाह करनेवाली माँ पवन की पसन्द स्टैला पर खाना पकाने जैसा 'स्त्रियोचित' काम सिखाने के लिए दबाव डालती है। लेकिन जब वह माँ की तमाम रचनाएँ कंप्यूटर की फ्लॉपी में उतरकर उसे देती है तो वह दंग रह जाती है । पुरानी पीढ़ी की अपेक्षाएँ नयी पीढ़ी की उमंगों से टकराकर कदम कदम पर टूटती है, लेकिन वह प्रक्रिया भी एक रैखिक नहीं है । एक ऐतिहासिक मुकाम को दर्ज करनेवाली तरल आवेगों और गहरे मानवीय संस्पर्श से बुनी गयी कथा है 'दौड़' ।"[४६]

इस लघु उपन्यास में समस्याओं की श्रृंखला अधिक है । बेरोज़गारी की समस्या, माँ-बाप और वृद्धजनों की समस्या, प्रदूषण की समस्या और उससे लाभान्वित होनेवाली कम्पनियाँ, नारी समस्या, विज्ञापन कला की समस्या आदि इसके अंदर आते हैं । ममता कालिया ने भूमण्डलीकरण, औद्योगीकरण, आजीविकावाद, विज्ञापनबाजी समस्याओं व उपभोक्तावाद आदि सामाजिक बातों पर केन्द्रित इस उपन्यास की संरचना की है जिसकी वजह से 'दौड' बिलकुल समकालिक एवं उपादेय बन गया है ।

'अन्धेरे का ताला' ममता कालिया का और एक ख्यातिलब्ध उपन्यास है । इसका नाम ही एक प्रतीकात्मक लगता है । प्रभाकर चौबे के अनुसार "इस उपन्यास में लेखिका ने कॉलेज में पढ़ा रहे गुरुओं (शिक्षक-शिक्षिका), कर्मचारियों और पढ़ रहे छात्र-छात्राओं की सोच, कार्य प्रणाली, उनकी दिशा, उद्देश्य कुछ पाने के लिए किये गये तमाम तरह के उपक्रमों को अपने व्यंग्यात्मक शैली में उकेरा है । 'अंधेरे का ताला' उपन्यास देश की शिक्षा व्यवस्था पर नहीं, शिक्षा देनेवालों की असलियत पर है ।"[४७] यह उपन्यास आज़ाद भारत के सातवें दशक के पश्चात् शिक्षा में ज़बरदस्त विस्तार, उलट-पुलट और शिक्षा-क्षेत्र को नौकरी का सहज मार्ग समझाने के समय का जीवन्त प्रमाण है । इसमें शिक्षा को किस तरह सुधारा जाए, शिक्षा किस तरह बरबाद हो रही है, इन विषयों पर न तो उपदेश है, न लम्बे-चौड़े व्याख्यान, न कोई सुझाव।

'दुक्खम सुक्खम' ममता कालिया का नवीनतम उपन्यास है । 'दुक्खम सुक्खम' जीवन के जटिल यथार्थ में गुँथा एक बहुअर्थी शब्द है । "एक तरह से यह उपन्यास श्रृंखला की बाहरी भीतरी कड़ियों से जकड़ी स्त्रियों के नवजागरण का गतिशील चित्र और उनकी मुक्ति का मान चित्र है । उपन्यास में बीसवीं शताब्दी की बदलती हुई

मथुरा है । लेखिका ने स्वतंत्रता के संघर्ष, गाँधी के प्रभाव, चर्खा-खादी-स्वदेशी से उभरे आत्मबल, देश विभाजन की त्रासदी और आज़ादी के बाद का परिदृश्य इन सबको कथा की आंतरिकता में शामिल किया है । जीवन की विपुल आपाधापी में अस्तित्व के बहुतेरे प्रश्नों की गूँज और उनके उत्तरों की आहट 'दुक्खम सुक्खम' में सुनाई पड़ती है ।"[४८] इसको पश्चिमी स्त्री विमर्श के साँचे में नहीं ढाला है बल्कि इसे दो शहरी निम्न मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन की कहानी से भर दिया है ।

१.१०.२ कहानी साहित्य

ममता कालिया की अब तक की लिखी कहानियाँ दो भागों में संग्रहीत हैं । ममता कालिया की कहानियाँ खण्ड-१ में पाँच कहानी संग्रह संकलित है । 'छुटकारा', 'सीट नम्बर छह', 'एक अदद औरत', 'प्रतिदिन' और 'उसका यौवन' । ममता कालिया की कहानियाँ खण्ड-२ में चार कहानी संग्रह शामिल किया गया है । 'जाँच अभी ज़ारी है', 'बोलनेवाली औरत', 'मुखौटा' और 'निर्मोही' ।

छुटकारा (१९७०)

ममता कालिया के सबसे पहले प्रकाशित कहानी संग्रह है 'छुटकारा' । इसमें कुल चौदह कहानियाँ हैं । 'बीमारी', 'अपत्नी', 'छुटकारा', 'वे', 'साथ', 'ज़िन्दगी सात घंटे बाद की', 'दो ज़रुरी चेहरे' आदि इस संग्रह की श्रेष्ठ कहानियाँ हैं । इनमें ममता कालिया दांपत्य सम्बन्धों में उत्पन्न होनेवाले तनाव, संयुक्त परिवार के विघटन, अविवाहित नौकरी पेशा लड़कियों की परेशानी, भाई-बहन के अटूट संबन्ध, पारिवारिक संबन्धों का परिवर्तित रुप, मूल्य विघटन की समस्यायें आदि का यथार्थ चित्रण किया गया है ।

सीट नम्बर छह (१९७५)

यह ममता कालिया का सन् १९७५ में प्रकाशित कहानी संग्रह है । इसमें बारह कहानियों का चित्रण हैं । कहानीकार ने नारी की मानसिकता को बारीकी से प्रस्तुत करने की कोशिश नहीं की है । इनमें से कई कहानियों में स्त्री की समस्याएँ तो चित्रित हैं परन्तु साथ-ही-साथ अन्य प्रकार की कहानियाँ इसमें है । संकलित कहानियों में 'पीली लड़की', 'लगभग प्रेमिका', 'सीट नम्बर छह' आदि श्रेष्ठ हैं । इन कहानियों के द्वारा भारतीय नारी की मानसिकता के विभिन्न परतों को खोलने का प्रयास किया गया है ।

एक अदद औरत (१९७६)

यह एक छोटा संग्रह है । इसमें छः कहानियाँ हैं । इसमें नारी जीवन के विविध आयामों का चित्रण हुआ है । पति की इच्छा की खातिर या पतिव्रत आदर्श पत्नी का दायित्व निभाने के वास्ते जो कठिनाइयाँ औरत झेलती है, इसका दिलकश चित्रण मिलता है । भारतीय नारी की यह कमज़ोरी है कि अपनी इज़्ज़त को बनाये रखने के लिए कभी भी पति के खिलाफ़ विद्रोह या आक्रोश प्रकट नहीं करती । वे पति की समस्त ज़्यादतियाँ खामोश सहती रहती है । यहाँ नये मूल्य की महत्ता या नवीन मूल्य भावना को प्रकट करनेवाली नारी का चित्रण भी मिलता है । नारी जीवन की दीन व दर्दीले मुकामों पर भी इशारा किया गया है । 'लड़के' कहानी में स्वतंत्र भारत में जो भ्रष्टाचार आज विद्यमान है उसका अनजाने ही साक्षी बननेवाले कतिपय लड़के का चित्रण है जो वास्तव में आधुनिक दिग्भ्रमित पीढ़ी के प्रतीक है ।

प्रतिदिन (१९८३)

इस संग्रह का प्रकाशन १९८३ में हुआ । इस संग्रह के बारे में डॉ. वेदप्रकाश

अमिताभ का अभिप्राय है, "आम तौर पर ये कहानियाँ इस कटु सत्य को संप्रेषित करती है कि तमाम नारी स्वतंत्रता की दुहाई और प्रमाणों के बावजूद नारी अभी यातना और मानसिक उत्पीड़न से मुक्त नहीं हुई हैं । यातना और उत्पीड़न के संदर्भ और तौर तरीके बदल गये हैं पर समस्या ज्यों की त्यों है । नारी संबन्धी मूल्य किस तरह आज भी बदलने का कोई प्रमाण नहीं देते इसकी एक झलक 'तोहमत' कहानी में है ।"[४९] इस संकलन की सभी कहानियों में ममता कालिया ने हर एक पात्र की मानसिकता को भली भाँति व्यक्त किया है । पति-पत्नी के सम्बन्ध में नये मूल्य का चित्रण 'मन्दिरा' कहानी में अभिव्यक्त किया है ।

उसका यौवन (१९८५)

यह ममता कालिया का और एक महत्वपूर्ण कहानी संग्रह है । इसमें कुल मिलाकर तेरह कहानियाँ संकलित हैं । ये कहानियाँ दरअसल भारतीय परिवारों में प्रतिदिन कठोर होती जा रही संघर्षपूर्ण स्थितियों का बहीखाता है । बेरोज़गार नौजवानों की व्यथा कथा का मार्मिक अंकन भी संग्रह की कहानियों में हुआ है । विघटित पारिवारिक सम्बन्धों की वजह बनती बच्चों की संक्रान्त मानसिकता, बेमेल दांपत्य सम्बन्धों से उत्पन्न तनावपूर्ण मानसिकता आदि का चित्रण कारगर ढंग से हुआ है । 'अट्ठावनवाँ साल' कहानी में व्यर्थताबोध से पीड़ित पति को प्रेमपूर्ण व्यवहार से निराशा से उबारने का प्रयत्न करनेवाली पत्नी का चित्रण मिलता है । यहाँ मूल्य का नया स्वरुप की ओर ममता कालिया ने इशारा किया है ।

जाँच अभी ज़ारी है (१९८९)

इस संग्रह में कुल सोलह कहानियाँ संकलित हैं । सभी कहानियाँ

हृदयस्पर्शी हैं । इसमें अधिकतर कहानियाँ नारी समस्या के साथ अन्य कई समस्याओं को दिखानेवाली है । खासकर साहित्याकारों की समस्या, बेरोज़गारी की समस्या, पुलिस का भ्रष्टाचार, छोटे बच्चों की समस्या आदि । ममता कालिया की वैचारिक दृष्टिकोण इस संकलन की कहानियों में झलकती है । मामूली बातों के ज़रिए पाठकों को सामाजिक समस्याओं के केन्द्र में लाने का प्रयास भी किया गया है ।

बोलनेवाली औरत (१९९८)

इस संकलन में तेरह कहानियाँ हैं । प्रमुख आलोचक कृष्णमोहन ने लिखा है – "इन कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन की विड़म्बनाओं को झेलती और जूझती घरेलू महिलाओं की दस्तान है जिनके पैरों में बेड़ी पड़ी है और हाथ आज़ाद है, घर का काम-काज करने के लिए ।"[५०] 'बोलनेवाली औरत', 'एक अकेला दुःख', 'रोश्नी की मार', 'सेवा', 'बच्चा', 'खिड़की' आदि इसकी सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ हैं । सचमुच भारतीय मध्यवर्गीय समाज की महिलाओं की ज़िन्दगी ही उन कहानियों में उभर आयी है । आर्थिक मुसीबतों के बीच अपने पारिवारिक दायित्व को निभाने के लिए प्रयत्न करती महिलाओं का जीता जागता चित्र इन कहानियों में दृश्यमान हैं ।

मुखौटा (२००३)

अठारह कहानियों का महत्वपूर्ण संकलन हैं 'मुखौटा' । इसमें आधुनिक समाज के विभिन्न परिदृश्य का चित्रण ममता कालिया ने प्रस्तुत किया है । 'सफर में', 'मुखौटा', 'एक दिन अचानक' आदि प्रसिद्ध कहानियाँ हैं । इस संकलन की कहानियों से गुज़रते हुए मन-मस्तिष्क कई जगहों पर रुके बिना रह ही नहीं पाते । जीवन और

समाज के छोटे-छोटे सन्दर्भ जिन्हें हम आम तौर पर नज़र अन्दाज़ कर देते हैं, उसे नये परिप्रेक्ष्य में परिवर्तित किया गया है ।

निर्मोही (२००४)

इस संकलन में कुल मिलाकर सत्रह कहानियाँ उपलब्ध हैं । 'उड़ान', 'खानपान', 'वह मिली थी बस में', 'सवारी और सवारी', 'निर्मोही' जैसी कहानियाँ हमारे साथ न सिर्फ एक संसार रखती है बल्कि एक नये संसार की परिकल्पना भी प्रस्तुत करती है । इस संकलन की कहानियों में मानवीय रिश्तों में आनेवाले बदलाव, स्वार्थ भावना, पीढ़ियों का संघर्ष, विदेशी सभ्यता का प्रभाव, भूमण्डलीकरण का प्रभाव, मूल्यों का विघटन आदि का चित्रण बखूबी से किया गया है ।

इन कहानी संकलनों के साथ ममता कालिया ने अपने समय और समाज को पुर्नपरिभाषित करने का सृजनात्मक जोखिम उठाया है । उनकी कहानियाँ जीवन से गहरा सरोकार रखती है क्योंकि ये कहानियाँ केवल घर-परिवार के घेरे में सीमित नहीं रहती है बल्कि समाज और मानव जीवन के भिन्न-भिन्न आयामों का संस्पर्श भी करती है । विख्यात आलोचक मधुरेश ने लिखा है – "ममता कालिया की कहानियाँ नई कहानी के विस्तार से अधिक उसका प्रतिवाद है । सातवें दशक की कहानी में संबन्धों से बाहर आने की चेतना स्पष्ट है । राजेन्द्र यादव नई कहानी को 'सम्बन्ध' को आधार बनाकर ही समझने और परिभाषित करने की कोशिश करते हैं । ममता कालिया अपनी नयी पीढ़ी के अन्य कहानीकारों की तरह ही उसे समझने में अधिक समय नहीं लेतीं कि अपने निजी जीवन के सुख-दु:ख और प्रेम की चुहलों से कहानी को बाँधे रखकर उसे वयस्क नहीं

बनाया जा सकता । उनकी कहानियाँ स्त्री पुरुष सम्बन्धों को पर्याप्त महत्व देने पर भी उसी को सब कुछ मानने से इनकार करती हैं । वे समूचे मध्यवर्ग की स्त्री को केन्द्र में रखकर जटिल सामाजिक संरचना में स्त्री की स्थिति और नियति को परिभाषित करती है । उनकी स्त्री इसे अच्छी तरह समझती है कि अपनी आज़ादी की लड़ाई को मुल्क की आज़ादी की लड़ाई की तरह ही लड़ना होता है और जिस कीमत पर यह आज़ादी मिलती है, उसी हिसाब से उसकी कद्र की जाती है ।"[५१] ममता कालिया गहरी आत्मीयता, आवेग और उन्मेष के साथ जीवन के धड़कते क्षण पाठक तक पहुँचाने का प्रयत्न करती है । इनके लेखन में अनुभूति की ऊष्मा अनुभव की ऊर्जा के साथ रची-बसी है ।

१.१०.३ एकांकी नाटक

आप न बदलेंगे (१९८९)

ममता कालिया का नाट्य संग्रह 'आप न बदलेंगे' सन् १९८९ में प्रकाशित हुआ । इसमें पाँच एकांकियों को संग्रहीत किया गया है । यह हैं – 'आप न बदलेंगे', 'आपकी छोटी लड़की', 'आत्मा अठन्नी का नाम है', 'यहाँ रोना मना है', 'जान से प्यारे'। जीवन के विविध अनुभवों को आधार बनाकर इनकी रचना हुई । इस संग्रह के बारे में प्रख्यात नाट्य आलोचक नेमीचन्द्र जैन ने लिखा है – "मैंने तुम्हारा नाटक पढ़ लिया था । सबसे पहली बात तो यह है कि इसमें एक बहुत ही सामयिक और महत्वपूर्ण थीम को उठाया गया है । दहेज के सवाल पर हर स्तर पर कुछ न कुछ लिखा जाना चाहिए और मुझे खुशी है कि तुमने इस समस्या पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए नाटक का सहारा लिया । दूसरे तुम्हारी भाषा में बहुत कसावट है और नाटकीयता भी है । प्रारंभिक दृश्य बडे सघन लगते है और कार्य व्यापार में भी एक तरह की नाटकीय क्रूरता का अहसास

होता है जो ज़रूरी है ।"[५२]

१.१०.४ काव्य संग्रह

ममता कालिया ने अपने साहित्य सृजन का आरंभ कविताओं से किया था । उनके महत्वपूर्ण दो अंग्रेज़ी काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं । पहला काव्य संग्रह है - 'ए ट्रिब्यूट टु पापा एण्ड अदर पोयम्स', दूसरा 'पोयम्स ७८' । 'खाँटी घरेलू औरत' अन्य एक कविता है ।

A Tribute to papa and other poems

इस कविता संग्रह में ममता कालिया ने आम जीवन में आनेवाली छोटी-छोटी घटनाओं को अत्यंत मामूली शब्दों में चित्रित किया है । सबसे पहली कविता में ममता कालिया ने अपने पूज्य पिताजी को श्रद्धांजली अर्पित की है । इसमें अपने पिताजी की मृत्यु के बाद उनके मन में जो कुछ स्मृतियाँ हैं उसे प्रस्तुत किया है । अन्य कवितायें हैं – Compulsion (बन्धन), View Point (दृष्टिकोण), An Active Life (सक्रिय जीवन), Tit for Tat (जैसे को तैसा), New Deal (नया करार), Made for Each Other (एक दूसरे के लिए), Dedicated Teacher (समर्पित अध्यापक) । उनकी अधिकतर कविताओं में स्त्रियों की समस्याओं को उठाया है ।

ममता कालिया के कविता संग्रह के बारे में डॉ. फैमिदा बिजापुरे का मत है, "ममता कालिया ने कई तरह की जीवन के कई आयामों को स्पर्श करती हुई कविताओं का अत्यंत सीधी, सरल, लयात्मक भाषा में सृजित किया है । उनकी कविताओं में विषयों की विविधता दिखाई देती है ।"[५३]

१.१०.५ अन्य स्फुट लेखन

नई सदी की पहचान, श्रेष्ठ महिला कथाकार (२००२) :- समकालीन साहित्य जगत् में अपने मौलिक, सशक्त और प्रखर लेखन से हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठ पंक्ति में विराजित स्त्री कहानीकारों की रचनाओं का संकलन है यह ।

कितने शहरों में कितनी बार (२०१०) :- आत्मकथात्मक शैली में लिखी हुई एक रचना है 'कितने शहरों में कितनी बार'। सूरज प्रसाद मिश्र ने ऐसा लिखा है – "यह पूरी लेखमाला आपकी आत्मकथा बन जाएगी । इन लेखों की रोचकता इनकी सच्चाई में है । इनमें आपका संघर्ष भी भरा हुआ है ।"[५४]

१.११ अन्य उपलब्धियाँ, पुरस्कार व सम्मान

'उसका यौवन' कहानी संग्रह उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा सन् १९८५ के यशपाल पुरस्कार से सम्मानित है । समग्र साहित्य पर 'रचना प्रतिष्ठान' कलकत्ता द्वारा सन् १९८८ में पुरस्कृत है । समग्र साहित्य पर हिन्दी साहित्य परिषद् पंजाब द्वारा १९८८ में पुरस्कृत प्राप्त है । नाटक 'आप न बदलेंगे' दिल्ली दूरदर्शन द्वारा प्रसारित हो चुका है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 'अमृत सम्मान', सन् १९९० में रोटरी क्लब इलाहाबाद की ओर से समग्र साहित्य पर 'व्होकेशनल' पुरस्कार भी मिला है । कई रचनाओं पर नाटक और टेलीफिल्म भी बने हैं । यूरोप और नॉर्थ अमरीका की साहित्यिक यात्राएँ भी संपन्न की है । नारी-विमर्श और पत्रकारिता के विभिन्न पक्षों पर प्रामाणिक लेखन । पूर्व निदेशक भारतीय भाषा परिषद् कोलकत्ता । फिलहाल महात्मागाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय की अंग्रेज़ी पत्रिका 'हिन्दी' का संपादन और स्वतंत्र लेखन । ऐसे अनेक

उपलब्धियों और सम्मान से संपन्न एक ख्यातिलब्ध लेखिका है ममता कालिया ।

निष्कर्ष

ममता कालिया स्वातंत्र्योत्तर स्त्री लेखन के दूसरे चरण की सशक्त हस्ताक्षर है । उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं में साहित्य सृजन किया है । उनके साहित्य का परमोन्नत उद्देश्य नारी की समस्याओं का चित्रण करना और नारी के अन्तर्जगत को खोलकर प्रकट करना है । हिन्दी कहानी जगत् से उनका सरोकार प्रशंसनीय है । उन्होंने अपनी कहानियों में जीवन के विविध अनुभवों को चित्रित किया है । पारिवारिक और सामाजिक जीवन में उभरनेवाले नये मूल्य और विघटित मूल्य, बेरोज़गारी से पीड़ित युवा लोग, पुरुषवर्चस्व वाले समाज में पीड़ित नारी, संबन्धों में दरार, अछूत समस्या, वृद्ध लोगों की समस्या, भ्रष्टाचार से पीड़ित समाज जैसे आज के उत्तराधुनिक युग की अन्य अनेक बातों का उल्लेख ममता कालिया की रचनाओं में बखूबी से मिलते हैं ।

स्त्री-लेखन का अवलोकन कर, उसमें ममता कालिया की हैसियत पर प्रकाश डाले तो उन्होंने अपनी दृष्टि की व्यापकता का परिचय ही अपनी रचनाओं के ज़रिये प्रस्तुत किया है । उनकी रचनाओं में विशेषकर कहानियों में परिवेशगत सच्चाई को ईमानदारी से उभारने का सफल प्रयास हमेशा दीखता है । दरअसल उन्होंने अपने पास-पड़ोस के मानव जीवन का जीता-जागता चित्रण प्रस्तुत किया है, इसलिए उनकी कहानियाँ मन को स्पर्श करती हैं । संक्षेप में कह सकते हैं कि स्त्री-लेखन में उनका स्थान महत्वपूर्ण है । उनका व्यक्तित्व सफल अध्यापक, जिज्ञासु साहित्यकार, उन्मुक्त स्वयंसेविका, आदर्श

पत्नी, स्नेहमयी माता, मनोवैज्ञानिक, तार्किक, संपादक आदि अनेक भूमिकाओं का समुच्चय हैं, जिसकी खुल्लम खुल्ला अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं में स्पष्टता हुई भी है । अतः निस्सन्देह कह सकते हैं कि स्त्री-लेखन में ममता कालिया की भूमिका चिरस्मरणीय है ।

संदर्भ संकेत

१. मधुमति – फरवरी २००७ – पृ. १८
२. दस्तावेज-८९ – अक्तूबर-दिसंबर २००० – पृ. ४३
३. मृदुला गर्ग – चुकते नहीं सवाल – पृ. ४९
४. वीरेन्द्र मोहन (सं) – कथा साहित्य के सौ बरस – पृ. १८०
५. रामस्वरुप चतुर्वेदी – साहित्य के नये दायित्व – पृ. १३
६. मधुमति – फरवरी २००७ – पृ. १९
७. आलोचना – अक्तूबर-दिसंबर २००४ – पृ. १७५
८. प्रभा खेतान – (उद्धृत) स्त्री उपेक्षिता – पृ. ३४५
९. डॉ. रामदरश मिश्र – आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि – पृ. १२३
१०. प्रभा खेतान – (उद्धृत) उपनिवेश में स्त्री – पृ. ४०
११. उषा यादव – हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना – प्राक्कथन VII
१२. वीरेन्द्र मोहन (सं) – कथा साहित्य के सौ बरस – पृ. १८३
१३. डॉ. पुष्पपाल सिंह – समकालीन कहानी सोच और समझ – पृ. २०
१४. मधुरेश – हिन्दी कहानी अस्मिता की तलाश – पृ. १०६
१५. आजकल – मई २००८ – पृ. ३४
१६. डॉ. टी.जी. प्रभाशंकर प्रेमी (सं) – समकालीन हिन्दी कथा साहित्य – पृ. ३०
१७. डॉ. रेणु गुप्ता – हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी – पृ. ३४
१८. वही – पृ. ४०

१९. बच्चन सिंह – हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास – पृ. ५२९

२०. राजेन्द्र यादव – कहानी स्वरूप और संवेदना – पृ. १००

२१. डॉ. टी.जी. प्रभाशंकर प्रेमी (सं) – समकालीन हिन्दी कथा साहित्य – पृ. ३२

२२. डॉ. रेणु गुप्ता – हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी – पृ. ४२

२३. साहित्य अमृत – फरवरी २००२ – पृ. ३२

२४. वागर्थ – जनवरी १९९७ – पृ. १९

२५. डॉ. टी.जी. प्रभाशंकर प्रेमी (सं) – समकालीन हिन्दी कथा साहित्य – पृ. ३४

२६. वीरेन्द्र मोहन (सं) – कथा साहित्य के सौ बरस – पृ. १७२

२७. विनोद तिवारी – परंपरा सर्जन और उपन्यास – पृ. ९१

२८. वीरेन्द्र मोहन (सं) – कथा साहित्य में सौ बरस – पृ. १९२

२९. विनोद तिवारी – परंपरा सर्जन और उपन्यास – पृ. ९९

३०. साहित्य मण्डल पत्रिका – जुलाई १९९२ – पृ. १३, १४

३१. रामकली सराफ – समकालीन हिन्दी कथा लेखिकायें – पृ. ८

३२. प्रह्लाद अग्रवाल – हिन्दी कहानी सातवाँ दशक – पृ. ४८

३३. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खण्ड २ – फ्लैप

३४. कथादेश – जनवरी २००१ – पृ. ९

३५. वही

३६. वही

३७. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खण्ड १ –आमुख पृ. VI

३८. कथादेश – जनवरी २००१ – पृ. ११

३९. वही

४०. ममता कालिया – एक पत्नी के नोट्स – भूमिका

४१. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खण्ड १ – पृ. XXI

४२. डॉ. शीलप्रभा वर्मा – महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ – पृ. ३०

४३. ममता कालिया – तीन लघु उपन्यास – मुख पृष्ठ

४४. वही

४५. समीक्षा – जनवरी-मार्च २००० – पृ. ४२

४६. ममता कालिया – दौड़ – भूमिका पृ. ७
४७. अक्षर पर्व – जनवरी २०१० – पृ. ५६
४८. ममता कालिया – दुक्खम सुक्खम – प्लेप
४९. समीक्षा – अक्तूबर-दिसंबर १९८४ – पृ. २२
५०. साक्षात्कार – मार्च २००० – पृ. १०५
५१. दोआबा – दिसंबर २००७ – पृ. ६८
५२. ममता कालिया – आप न बदलेंगे – भूमिका
५३. डॉ. फैमिदा बिजापुरे – ममता कालिया व्यक्तित्व और कृतित्व – पृ. १५१
५४. ममता कालिया – कितने शहरों में कितनी बार – प्लेप

दूसरा अध्याय

मूल्य और उसके परिवर्तित परिदृश्य

इक्कीसवीं सदी का समाज चतुर्दिक विकास का समाज है । आज के विकासोन्मुख समाज में सबसे चर्चित शब्द है 'मूल्य' । क्योंकि मूल्य मानव समाज की रीढ़ है । मूल्य ऐसे तत्व होते हैं जो मनुष्य में सकारात्मक ऊर्जा प्रदान करते हैं । इन मूल्यों के सहारे समाज अस्तित्ववान होता है । मानव समाज में एकता स्थापित करने में मूल्य का कार्य महत्वपूर्ण है । मानव का व्यक्तित्व का विकास मूल्य ही करता है । मूल्य ही मानव को सच्चे अर्थों में मानव बनाता है । मूल्य संस्कृति के अंग है और स्वयं संस्कृति भी चरम मूल्य है । व्यक्ति और समाज से निरपेक्ष होकर मूल्यों का कोई अस्तित्व नहीं, क्योंकि तीनों अन्योन्याश्रित हैं । दैनिक जीवन में व्यावहारिकता, साहित्यिक प्रयोग और अर्थ विस्तार के कारण मूल्य शब्द आज अधिक व्याख्यायित हो रहा है । मानव जीवन के सारे सम्बन्ध मूल्य पर टिके हुए है । मूल्य ही हमारे व्यक्तित्व को माँजता है, निखारता है, ठीक पड़ाव तक पहुँचाता है । अपनत्व, आत्मीयता, पारस्परिकता की सुगन्ध मूल्य रूपी कोख से फूटती है । आज के आधुनिक युग में मूल्य विघटन, नैतिक मूल्य, मूल्य शोषण आदि का विस्तार से ज़ोरदार चर्चाएँ हो रही है । क्यों, मूल्य पर इतनी सख्त रूप में चर्चा हो रही है ? यह सोचने की बात है ।

२.१ मूल्य - सामान्य परिचय

मूल्यों के प्रकारों तथा विभिन्न दृष्टिगत अन्तरों और भौगोलिक भिन्नताओं के बावजूद उनमें सदा होनेवाले उत्कृष्ट आदर्शात्मक नैतिकाधार पर बल देते हुए सुप्रसिद्ध

विचारक रमेश कुन्तल मेघ कहते हैं – "मूल्यों के निर्धारण हम लक्ष्यों, रुचियों, इच्छाओं, तृप्ति, भावना के आधार पर करें लेकिन व्यक्तिगत संकीर्णताओं से परे उठकर जीवन के वास्तविक प्रतिमानों से संसर्ग स्थापित करके काल, कला और विवेक के परिष्कार से ही वे भावनायें श्रेष्ठ, चरम और अनुकरणीय हो जाती हैं ।"[१] सामाजिक वातावरण, सामाजिक संस्थायें, प्रकृति आदि मूल्य के विभिन्न दृष्टिकोणों के निर्माण में उत्तरदायी होती हैं ।

आज के उत्तराधुनिक युग में अल्पसंख्यकों, स्त्रियों, पिछडों, दलितों व वैज्ञानिक विकास, तकनीकी उपलब्धि, सूचनाक्रान्ति, उपभोक्तृ संस्कृति, बाज़ार नीति, भूमण्डलीकरण जैसे नये मुद्दों को उछाला जा रहा है । साहित्य समाज की इन गतिविधियों से संपृक्त हैं । साहित्य सामाजिक मूल्यों को स्वीकार कर नये जीवन मूल्यों की सृष्टि के ज़रिये समाज को आगे चलाने का प्रयत्न करता है । मानव इस समाज का अंग है । मूल्य मानव जीवन से जुड़े अनेक भावों और विचारों का एक समन्वयात्मक रुप है । डॉ. देवराज के अनुसार, "मूल्य व्यक्ति की आंतरिक भावनाओं तथा वह जिस समाज का अंग है उसकी मर्यादाओं, आदर्शों और नैतिक मानदण्डों से निर्मित हुआ करते हैं ।"[२]

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति मौलिक संस्कृति मानी गई है । भारतीय संस्कृति की विशेषता यह है कि वह परायापन नहीं देखती । इसलिए आक्रमण करनेवाले हिंस्र मनुष्य या पशु को भी आत्मीय भाव से देखती है । भारतीय संस्कृति की मूल शक्ति उसकी सर्वमयता है । मूल्य भी इससे जुड़े हैं । मूल्य को मनुष्य के कार्य और व्यवहार का नियमन करनेवाले प्रतिमानों के रुप में स्वीकारा है । वह सामाजिक सम्बन्धों, मानवीय रिश्तों को संतुलित एवं संयमित करके सामाजिक व्यवहारों में एकरुपता स्थापित

करते है । मानव जीवन को नियन्त्रित और सुचारु रुप में परिचालित करने के उद्देश्य से समय समय पर जीवन के कुछ मानदण्डों का निर्धारण किया जाता रहा है और उन्हीं के आधार पर मूल्य की अवधारणा अस्तित्व में आयी । इस संदर्भ में श्रेष्ठ आलोचक रोहित मेहता का कथन बेहद प्रशंसनीय है । इन्होंने मूल्य की बहुत ही सरल परिभाषा दी है - "मूल्य न तो किसी मशीन द्वारा उत्पादित वस्तु है और न ही यह किसी सरकार द्वारा निर्मित कानून है । मूल्य तो जीवन के प्रति एक गुण है, एक अन्तर्दृष्टि है, एक अवधारणा है, एक दृष्टिकोण है ।"[३]

मानव जीवन को मूल्यवान बनाने की क्षमता रखनेवाले गुणों को दरअसल मूल्य कहा जाता है । मूल्य शब्द इतना प्रचलित है इसलिए अनेक विषयों और क्षेत्रों में भिन्न भिन्न अर्थों में व्यवहृत हुआ है अतः मूल्य को किसी सीमित दायरे में समेटना मुहाल सा है । आज मूल्य शब्द का प्रयोग सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक आदि सभी क्षेत्रों में स्वीकृत व्यवहार के लिए होने लगा है । मूल्य शाश्वत व्यवहार है । इनका सृजन मानव के साथ साथ हुआ । यदि इसका अंत होगा तो फिर सभ्यता के साथ मानवता भी समाप्त हो जायेगी । वास्तव में मूल्य, परंपरा का जीवन्त प्रतीक है । ये जीवन के आदर्श हैं, जीवन के सम्मादरणीय सिद्धान्त है । मूल्यों को आत्मसात् कर जाति, धर्म और समाज को, मानव जीवन को, सुन्दर बनाने का प्रयास किया जाता है ।

मूल्य सामाजिक व्यवहारों के साथ परिवर्तित भी रहते हैं, लेकिन उनमें समाहित भलाई की भावना कभी तिरोहित नहीं होती । जीवन में कुछ मूल्य परिवर्तन की माँग करते हैं, मगर कुछ शाश्वत हैं । नये वातावरण में जब पुरानी मान्यताएँ कालातीत हो

जाती हैं तो समाज नयी मान्यताओं को ग्रहण कर लेता है । प्रतत विचारधाराओं के स्थान पर जदीद विचारधाराओं का उदय होता है, जिनके फलस्वरुप मानव में पुरातनता के प्रति एक प्रकार की उपेक्षा, अवज्ञा और नकारात्मक दृष्टिकोण और नवीनता को अपनाने का मोह और सकारात्मक दृष्टिकोण दिखाई देने लगता है । नयापन कभी लाभदायक होगा कभी हानिकारक ।

विद्यानिवास मिश्र के अनुसार "भारतीय संस्कृति अकेले मानव समुदाय से ही सरोकार नहीं होता बल्कि भूगोल, इतिहास सबसे संबन्ध होता है और मनुष्य के मन में सदियों साथ रहने और एक दूसरे का सुख-दुःख बँटाने के कारण कुछ संस्कार पड़ते हैं, कुछ स्मृतियाँ तह की तह बढ़ती जाती हैं, कुछ अभिप्रेरक मूल्य घर करते जाते हैं । संस्कृति इन सबका निथरा हुआ प्रवाहशील रस है । भारतीय संस्कृति जिन मूल्यों से परिचालित होती रही है, उनमें समस्त प्राणियों का कल्याण, सत्य की खोज, सबकी मुक्ति की चाह ये प्रमुख हैं ।"[४] लेकिन युग परिवर्तन के साथ साथ मूल्य भी परिवर्तित होते गये अर्थात् मूल्यों में नवीनता का समावेश होने लगा । आज के उत्तराधुनिक युग में विश्व की सभी संस्कृतियों में संक्रमण चल रहा है । भारतीय संस्कृति भी इससे अछूती नहीं है यानि हम भी इसका शिकार बन गये हैं । मतलब तो परिवर्तन प्रत्येक संस्कृति की अनिवार्य आवश्यकता है, किन्तु इन परिवर्तनों के ज़रिए हमारे नैतिक मूल्य भी नष्ट होने लगे ।

यह कहना अनुचित न होगा कि वर्तमान परिवेश में आधुनिकता के बहाने हमारी संस्कृति, सभ्यता और परंपरा में पाश्चात्य प्रभाव को स्वीकार किया जा रहा है । ऐसे उभरते नये परिवेश में संस्कृति को छोड़ना पड़ा है । परिवेश के इन आग्रहों में पीढ़ियों का संघर्ष सामान्य सा हो गया है । दरअसल पुरानी पीढ़ी की अपेक्षाएँ नयी पीढ़ी की

विवशताएँ बन गयी हैं । यद्यपि पीढ़ियों का संघर्ष, विद्रोह आदि प्रत्येक देश और काल में रहा है । खासकर भारतीय जैसे परंपरावादी समाज में कुछ अधिक ही रहा है । लेकिन आज के उत्तराधुनिक, सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में यह संघर्ष कुछ अधिक तीव्रता से उभरा है । बड़े-बड़े बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने जहाँ रोज़गार के नये-नये अवसर प्रदान किये हैं, वहाँ आर्थिक क्षेत्र में भी सुधार आये है । अर्थ के प्रति एक आसक्ति हर वर्ग के लोगों में देखी जाती है । आज हम देखते हैं कि जिसके पास धन है, उसका ही महत्व है । धन के प्रति अनन्य मोह और पागलपन के कारण सम्बन्धों व संवेदनाओं में शिथिलता आ गई है । वृद्ध माँ-बाप के पास अपेक्षित समय की कमी, परिवारवालों और आत्मीय जनों के सुख-दुःख के प्रति घटती भावनाएँ, रीति रिवाज़ों, परंपराओं, मान्यताओं, आस्था और विश्वासों के प्रति उदासीनता, व्यक्तिगत इच्छाओं का महत्व, स्वकेन्द्रित व्यक्तित्व, स्वार्थ भावना आदि आज के आधुनिक परिवेश की उपज है । दरअसल परिवेश के अनुसार मूल्यों में भी परिवर्तन आता है ।

२.२ मूल्य का अर्थ और उसकी व्यापकता

'मूल्य' हिन्दी का शब्द है । हिन्दी भाषा में 'मूल्य' का सबसे अधिक प्रचलित अर्थ किसी वस्तु की 'कीमत' से है । नालन्दा विशाल शब्द सागर में मूल्य का अर्थ "किसी वस्तु को खरीदने पर उसके बदले में दिये जानेवाला धन, दाम, कीमत या प्राइस। अथवा वह गुण या तत्व जिसके कारण किसी वस्तु का महत्व या मान होता है ।" मूल्य शब्द को बाज़ार भाव, वेतन, मज़बूरी, क्रय-विक्रय, मानदण्ड, उपयोग, उपयोगिता आदि अर्थों में भी प्रयोग किया जा रहा है ।

मानव जीवन कैसा होना चाहिए या उसे किस प्रकार व्यावहारिक बनाना

चाहिए इस प्रश्न का उत्तर देनेवाला शब्द है 'मूल्य' । डॉ. हुकुमचन्द राजपाल के अनुसार "जीवन को व्यवस्थित एवं संयमित ढंग से चलाने के लिए भारतीय विचारकों ने पुरुषार्थ की कल्पना की है जिसे हम 'मूल्य' का प्रारंभिक रुप मान सकते हैं ।"[५] इस हेतु समाज कल्याण में जिन मान्यताओं को प्रमुखता मिलती है तथा जो एक अदृश्य सीमा रेखा के रुप में काम करते हैं वही 'मूल्य' है । 'मूल्य' शब्द को भारतीय दर्शन के धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का समन्वय रुप माना गया है । दरअसल पुरुषार्थ जीवन मूल्यों का पर्याय है । पुरुषार्थ का मतलब तो प्रयत्न अथवा प्रयत्नों से, वे प्रयत्न जिनसे जीवन के उद्देश्य की पूर्ति होती है । लेकिन आज की युगीन संदर्भ में मूल्यों की वरीयता तो बदलती रही है । आज मानव अर्थ को सबसे श्रेष्ठ मानते हैं । जीवन के परमोन्नत लक्ष्य मोक्ष को उपेक्षा भरी दृष्टि से देखते हैं ।

'मूल्य' सामान्यत: अर्थशास्त्र का पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ है 'विनिमय क्षमता' । 'मूल्य' शब्द का प्रयोग साहित्य तथा अन्य दूसरे क्षेत्रों में बाद में हुआ । समाजशास्त्र के अंतर्राष्ट्रीय विश्वकोश के अनुसार "मूल्य वांछनीयता की ऐसी धारणाऐं हैं जो श्रेष्ठ व्यवहार को प्रभावित करती है ।"[६] इससे मालूम हुआ कि मूल्य की स्थिति मानसिक है वह वस्तुगत नहीं बल्कि वैयक्तिक है । धर्म और नीतिशास्त्र विश्वकोश के अनुसार मूल्य सत्य के प्रति अभिकर्ता की मन:स्थिति है जो सत्य का मूल्यांकन करती है ।

मूल्य शब्द का उद्‌भव और विकास मानव जीवन के आरंभ से ही माना जाता है । आदिकाल में मानव जीवन और मानव समाज के साथ ही मूल्यों का भी उदय हुआ और मानव जीवन के प्रगति के साथ-साथ निरंतर गतिशील है । आजकल मूल्य शब्द

का प्रयोग पहले की तरह केवल अर्थशास्त्र के आर्थिक मूल्यों तक ही सीमित नहीं है अपितु ज्ञान, विज्ञान, समाजशास्त्र, भाषा, मनोविज्ञान, नीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र, धर्म, राजनीति, परिवार आदि का सशक्त विषय बन गया है । इसलिए 'मूल्य' शब्द का प्रयोग मानव जीवन में उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता है । मूल्यों की स्थापना के लिए व्यक्ति और समाज की अनिवार्यता है । साथ ही मूल्यों की व्यावहारिकता में संस्कृति भी सहायक होती हैं । बकौल डॉ. अरुणा गुप्ता - "संस्कृतियों द्वारा मूल्यों का आदान-प्रदान न केवल पारस्परिक नैकट्य का ही परिचायक है अपितु नये मूल्यों का योजक भी । संस्कृतियों में वैभिन्य होते हुए भी सभी का चरम लक्ष्य है 'परमशुभ' की प्राप्ति ।"[७] वस्तुतः मानव जीवन का श्रेष्ठ मूल्य भी मोक्ष प्राप्ति ही होता है जिसमें हमारी संस्कृतियाँ सहायक होती हैं ।

मूल्य दरअसल मानव जीवन के ऐसे लक्ष्य हैं, दृष्टिकोण हैं जो समाज द्वारा स्थापित किए जाते हैं, जो हरएक व्यक्ति के लिए पूजनीय है, जो अदृश्य, अव्यक्त रुप में मानव के सभी व्यवहारों और चिन्ताओं को संचालित और नियंत्रित करते हैं । मूल्यों का अवलोकन करते हुए डॉ. वासुदेव शर्मा का निर्णय हैं कि "मूल्य मानव व समाज के आदर्श से संपृक्त होने के कारण ये मानव-जीवन के मानदण्ड हैं, जो हमारे अनुभवों, विचारों तथा चिन्तनों को संयमित करते हैं । मूल्य एक जीवन जीने का दृष्टिकोण है, तरीका है । आज मूल्यों को विविध रुपों में स्वीकार किये जाने के कारण इसकी परिभाषा अत्यंत व्यापक और जटिल हो गयी है । आज के परिवेश में इसका प्रयोग दर्शन शास्त्र, समाज शास्त्र, नीति शास्त्र, विज्ञान शास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान शास्त्र, आध्यात्मिक आदि में होने के कारण बहुमुखी हो गया है । इसे किसी एक बिन्दु तक केन्द्रित नहीं किया जा सकता है । इस प्रकार मूल्य एक ऐसी चिंतन में उपयोगिता और आंतरिक मूल्यानुभूति है, जो

व्यक्ति विशेष की आकांक्षाओं, आवश्यकताओं, अभिलाषाओं, संवेदनाओं, महत्वाकांक्षाओं आदि की पूर्ति का लक्ष्य है । यही कारण है कि मूल्य व्यक्ति के अभावों, अभिलाषाओं, मनोवृत्तियों एवं तज्जनित तनावों से उत्पन्न उद्देश्यों की पूर्ति करता है, ये वैचारिक इकाई हैं जो हमारे शुभ-अशुभ कार्यों की पहचान में सहायता करते हैं । मूल्य व्यक्ति को नियंत्रण ही नहीं करते हैं अपितु उसके व्यक्तित्व की संरचना भी करते हैं ।"[८]

अंत में मूल्य संबन्धी सारे विचारों से यह स्पष्ट होता है कि मूल्य व्यक्ति जीवन का अभिन्न अंग है, उनके व्यक्तित्व और अस्तित्व का सबसे मज़बूत केन्द्र बिन्दु है, उनके परमोन्नत लक्ष्य हैं, मानव के चिन्तन और विचार के परिणाम है, उनको आत्मविकास या आत्मानुभूति की ओर ले जानेवाला उत्तम स्त्रोत है । इससे मनुष्य जीवन में सामंजस्य एवं समन्वय का भाव उदय होता है, प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है ।

यह तो सर्वविदित बात है कि मूल्यों का सरोकार मानव के सामाजिक जीवन से है । जो तथ्य सामाजिक ज़िन्दगी को स्वस्थ, संयमित, संतुलित एवं मर्यादित बनाते हैं उन्हें मूल्य नाम से अभिहित किया गया है । समाज ही मूल्यों की स्थापना करता है और जो हर व्यक्ति के लिए मान्य भी होता है । डॉ. सच्चीदानंद हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय का मत है – "मूल्य वह है जिसका महत्व है, जिसको पाने के लिए व्यक्ति और समाज चेष्टा करते हैं, जिसके लिए वे जीवित रहते हैं और जिसके लिए वे बडे से बडे त्याग कर सकते हैं ।"[९] तात्पर्य तो हर व्यक्ति को मूल्य का पालन ठीक ढंग से करना पड़ता है, ताकि सामाजिक जीवन स्वस्थ रहे नहीं तो सामाजिक जीवन अस्त-व्यस्त हो जायेगा । वास्तविक मूल्य भावना मानव को मानवीयता प्रदान करती है । मूल्य की परिभाषा, अर्थ व्यापकता, समाज और मूल्य के बावजूद मानव के सामाजिक जीवन से संबन्धित और कुछ मूल्य भी

है, ये भी विचारणीय विषय हैं ।

२.३ जीवन मूल्य

जीवन एक निरन्तर गतिशील प्रक्रिया है । सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य इसका निर्वाह समाज की परिधि में रहकर करता है । मनुष्य के मूल्यों को जीवन मूल्य कहा जाता है । इसलिए उसे मानव मूल्य भी कह सकते है । मानव जीवन से अलग होकर किसी मूल्य की परिकल्पना नहीं कर सकते । जीवन मूल्य मनुष्य के विवेक निर्णय और विश्वास से उत्पन्न एक दृष्टिकोण है । जो केवल मनुष्य मात्र को अन्य जीवजन्तुओं से अलग करते हुए संयमित और व्यवस्थित जीवन जीने में क्षमता प्रदान करते है । जीवन मूल्य मानवीय जीवन को सार्थकता प्रदान करते है । मानव को यह सार्थक भाव उनके जीवन के भिन्न भिन्न क्षेत्रों से मिलते हैं । जीवन मूल्य जीवन से सम्बन्धित है जो जीवन को ठीक रास्ते में जाने की दिशा निर्देश देनेवाली प्रेरक शक्ति है । जीवन मूल्य मानव जीवन के अर्जित संस्कारों, जीवन की निरन्तरता तथा सामाजिक उत्तरदायित्वों से दृढ़ सम्बन्ध रखते हैं । जीवन मूल्यों में मानव का उत्तरोत्तर विकास संभव है । डॉ. अरुणा गुप्ता के शब्दों में, "जो भी तत्व मानव मात्र के हितैषी हैं, आनंददायक हैं, वह सब जीवन मूल्य की श्रेणी में आ जाते हैं ।"[१०] डॉ. बैजनाथ सिंहल – "जीवन को आगे बढ़ाने और सुरक्षा प्रदान करनेवाली प्रत्येक धारणा को मूल्य कहते हैं ।"[११] मानव समाज से जुड़े रहने के हेतु समाज की रीति-नीतियों और व्यवस्थाओं का पालन करके संस्कारवान बनाने लायक तत्व है जीवन मूल्य । मतलब है जीवन मूल्य स्वस्थ मानवीय जीवन की अनिवार्य शर्त होती है। इसकी उपेक्षा या अवहेलना करना उचित नहीं है । अर्थात् जीवन मूल्यों का अस्तित्व समाज के अस्तित्व में ही सन्निहित है । वरिष्ठ आलोचक हेमन्त कुमार पानेरी के अनुसार, "समाज के आरंभ के साथ ही मूल्य-प्रक्रिया का सूत्रपात हुआ है । यह प्रक्रिया समाज

के साथ निरंतर चलती रहती है । इस प्रक्रिया का ह्रास-विकास समाज के साथ ही होता है ।"[१२]

जीवन मूल्य मनुष्य जीवन को अर्थवत्ता प्रदान करते हैं । यह अर्थवत्ता या सार्थकता मानव के जीवन व्यवहार के विभिन्न पहलुओं में मिलती है । इसलिए जीवन मूल्य सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक और अन्य अनेक क्षेत्रों से जुड़े रहते हैं । इस प्रकार हम जीवन मूल्यों के बारे में विचार करें तो यह स्पष्ट है कि जीवन मूल्य एक प्रभावशाली, ओजस्विनी, जीवन को पवित्र करनेवाली एक जीवनी शक्ति का उदात्त, उत्तम भाव है ।

२.४ सामाजिक मूल्य

मूल्यों की दृष्टि से देखे तो समाज को विशेष महत्व माना जाना चाहिए । सामाजिक मूल्यों का सीधा प्रभाव समाज की जनता पर है । सामाजिक प्राणी होने के कारण जन्म लेते ही मनुष्य को समाज की आवश्यकता पड़ती है । मनुष्य की सामाजिकता का विकास करनेवाले तत्व ही वास्तव में सामाजिक मूल्य है । समाज में निहित उदात्त मानव मूल्यों के आधार पर सामाजिक मूल्य की उत्कृष्टता सिद्ध होती है । हमारी आस्थाओं और मूल्यों का विकास भी सामाजिक संरचना के विकास के साथ गहरा और परस्पर मिले हुए हैं । सामाजिक संरचना, सामाजिक संस्थाओं, सामाजिक परंपरा, क्रिया, व्यवहार आदि सभी सामाजिक मूल्यों पर निर्भर करते हैं । सामाजिक संरचना या सामाजिक संस्थाओं में कोई भी परिवर्तन उसी समय होता है, जब सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन होता है ।

कुछ विचारक के अनुसार वे मूल्य की सत्ता को सामाजिक कहते हैं । डॉ.

विश्वंभर नाथ उपाध्याय ने मूल्य के सामाजिक पक्ष को उभारते हुए लिखा है "मूल्य एक प्रकार का निर्णय होता है - प्रशंसापरक निर्णय और इसमें सर्वदा कोई सामाजिक सुझाव निहित रहता है । अतः मूल्य हमेशा सामाजिक होता है, व्यक्तिगत नहीं ।"[१३] सेवा, उपकार, सहयोग, न्याय, सहिष्णुता आदि मूल्य सामाजिक कहे जाते हैं । समकालीन परिस्थितियों के अनुरुप सामाजिक मूल्यों में बदलाव आता है । स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय समाज को कई प्रकार की परिवर्तन प्रक्रिया से घूमना पड़ा । राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों के फलस्वरुप अपना परंपरागत सामाजिक मूल्य निरर्थक स्थापित होने लगे । तदनुसार उसके स्थान पर नये नये मूल्यों की खोज की जाने लगी । सामाजिक मूल्य शश्वत धारणाओं पर आधारित नहीं बल्कि वह काल-सापेक्ष या परिवर्तनशील है । आज के उत्तराधुनिक युग में मूल्य परिवर्तन के पीछे औद्योगीकरण, विज्ञान की अतिप्रसार, यांत्रिकता, राजनैतिक क्षेत्र की विसंगतियाँ, पाश्चात्य सभ्यता का तीव्र प्रभाव, आर्थिक तंगी, नगरीकरण, आधुनिक शिक्षा पद्धति, उपभोक्तृ संस्कृति आदि काम कर रहे हैं ।

२.५ आर्थिक मूल्य

आज का एक ज्वलंत विषय या तत्व है 'अर्थ' । इस युग में जीवन का केन्द्रबिन्दु अर्थ है और अर्थ ही आज मानव के जीवन को निर्धारित करता है । इसलिए जीवन मूल्यों के बदलाव में अर्थ की भूमिका महत्वपूर्ण है । आज के इस भूमण्डलीकृत उत्तराधुनिक युग में अर्थ प्रधान मूल्यों के प्रसार के कारण मानव जीवन के विभिन्न तहों में भिन्न प्रकार की भंगिमाओं का समावेश हो गया है । आज मानव धन को सबसे श्रेष्ठ मानते हैं । अतः सामाजिक वैषम्य का नींवाधार कारण यही आर्थिक मूल्य है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समाज को सर्वाधिक प्रभावित करनेवाला अर्थ रुपी तत्व ने मानव जीवन

की दिशा बदल दी । नये सम्बन्धों के परिवर्तन की प्रक्रिया को आर्थिक कारणों ने बहुत तीव्र किया है । आर्थिक परिवेश सम्बन्धों के बदलते हुए मूल्यों के लिए बहुत कुछ जिम्मेदार है ।पारिवारकि सम्बन्धों में आर्थिक आधारों पर बिखराव देखते हैं । पति-पत्नी के सम्बन्धों में तनाव, कटुता, सन्देह आदि भाव दिखाई देती हैं । आर्थिक दबाव में यौन पवित्रता के भी मूल्यों में बदलाव आया है ।आधुनिक युग में उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण व्यक्ति अपने वृध्द माता-पिता या असहाय, आश्रयहीन निकट परिवार वालों के प्रति संवेदनहीन और निर्मम हो उठा है ।

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में स्वाधीनता के बाद आर्थिक व्यवस्था कुछ गिने चुने बड़े उद्योगपतियों, व्यापारियों और शक्तिशाली मानव के चँगुल में फँस गयी । फलस्वरुप साधारण मनव की नियति अत्यंत दयनीय हो गई थीं । पूँजीवाद की प्रधानता होने के कारण औद्योगिक चेतना आई । देश में औद्योगीकरण के फलस्वरूप साधारण ग्रामीण जनता नौकरी हासिल करने की इच्छा में शहरों की ओर अग्रसर होने लगीं । हर मानव किसी न किसी प्रकार अर्थ प्राप्त करने की सख्त प्रयासों में जुड़ गया । तत्परिणाम मानवीय सम्बन्धों में बड़ा आघात पहुँचने लगा । अर्थवृत्ति का पक्ष प्रबल होने से मानव मूल्यों में विघटन के साथ परिवर्तन भी आया । आधुनिक समाज की विभिन्न प्रगति के साथ आर्थिक स्थिति में उत्पन्न दुष्परिणाम को हम देखते हैं । अर्थोपार्जन के लिए आज सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, नैतिक, पारिवारिक क्षेत्र में कितने बुरे काम, अन्याय, षड़यन्त्र चल रहे हैं । क्यों ऐसी दु:स्थिति हमारे समाज में भयानक रुप में प्रकट हुई ? क्योंकि ऐसा लगता है आज मानव अर्थ को ईश्वर समान या ईश्वर से भी ऊपर पूज्य मानते हैं । आज की महंगाई एक ओर तक आर्थिक मूल्य को बिगड़ने का कारण बन गई । अर्थ को सर्वोत्तम स्थान देने के कारण व्यक्ति की श्रेष्ठता अर्थ पर आधारित है ।

२.६ पारिवारिक मूल्य

परिवार समाज की सबसे श्रेष्ठतम इकाई है । हर एक व्यक्ति के व्यक्तित्व रूपायन की नींव परिवार ही है । मूल्य का उदय भी इससे जुड़े हुए हैं । स्वाधीनता के पहले हमारे घरेलू और दांपत्य संबन्ध अधिक दृढ़ और मज़बूत थे । अर्थात् पति-पत्नी, माँ-बाप, भाई-बहन, माता-पिता और बच्चे, दादा-दादी, चाचा, भतीजे, बुआ, पोता-पोती, देवर-देवरानी आदि मिल जुलकर रहते थे । वहाँ संयुक्त परिवार का समन्वय रूप देखा जाता था । लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय सामाजिक जीवन में बहुत बदलाव आया है । परिवार दरअसल समाज का ही एक महत्वपूर्ण अंग है । इसलिए जब कभी परिवर्तन समाज में होता है, उसका प्रभाव परिवार पर भी पड़ता है । इस प्रकार आधुनिक भारत में परिवार संबन्धी परंपरागत मान्यताएँ बदल रही हैं । क्योंकि इस आधुनिक वैज्ञानिक युग में मनुष्य की दृष्टि अर्थ केन्द्रित बन गई है । नतीजा यह निकला है कि संयुक्त परिवार विघटित होकर अणु परिवार में परिवर्तित हो रहे हैं । आज के पारिवारिक सम्बन्धों के बीच एक प्रकार की यान्त्रिकता आ गई है । इस हालत में डॉ. हेमचन्द्र कुमार पानेरी का अभिप्राय विचारणीय है – "ज्यों ज्यों व्यक्ति का सामाजिक क्षेत्र विस्तृत होता गया त्यों-त्यों उसका पारिवारिक क्षेत्र संकुचित होता गया । विश्व परिवार का स्वप्न देखनेवाला मानव लघु परिवार के सृजन में संलग्न है ।"[१४] आधुनिक समाज में समूह की अपेक्षा व्यक्ति को तथा कर्तव्य की अपेक्षा आत्माभिमान को महत्व दिया जाना लगा है ।

पुरानी पीढ़ी अपने विचारों को नयी पीढ़ी के लिए सबसे आवश्यक मानती है । लेकिन नयी पीढ़ी उसे स्वीकारने को तैयार नहीं है । इसलिए चारों ओर टकराहट

और संघर्ष है । हर एक वर्ग अपने विचारों को ही सबसे श्रेष्ठ मान रहा है । सब कहीं नये मूल्यों की खोज का आग्रह है । बदलते पारिवारिक संबन्धों के बारे में डॉ. शिवप्रसाद सिंह लिखते हैं – "आज भारतीय परिवार काफी बदल गया है । आज के परिवार के सामने न तो रामायण आदर्श है और न महाभारत ही । सच तो यह है कि भारतीय परिवार भी देश के ही समान एक अजीब कश्मकश, घुटन, अलगाव, दिशाहीनता, ईर्ष्या, कलह और तू-तू, मैं-मैं दौर से गुज़र रहा है ।"[१५] भारतीय समाज के परंपरागत जो सांस्कृतिक धरोहर आज के विकासशील समाज में है वह धूमिल हो रहे हैं ।

२.७ नैतिक मूल्य

नैतिक मूल्य हर युग के लिए सदा प्रासंगिक रहेंगे । आचरण से संबन्धित जो मूल्य हैं उसे नैतिक मूल्य कहा गया है । अर्थात् नैतिक मूल्य आदर्श व्यवहार के नियामक या प्रबन्धक होते हैं । नैतिक मूल्य शाश्वत है, सार्वदेशिक है, सार्वकालिक है । यह सार्वकालिक सत्य है कि जब नैतिक मूल्य नकारे जाते हैं तब व्यक्ति, परिवार, समाज, देश आदि पतन की ओर अग्रसर होने लगता है । भारतीय सभ्यता में नैतिक मूल्यों का विशेष महत्व रहा है । जनता में उत्पन्न होनेवाली निराशा, उत्पीड़न, उद्देश्यहीनता तथा बेकारी आदि नैतिक मूल्यों के पतन के कारण है । इसके फलस्वरूप समाज में अनुशासनहीनता, भ्रष्टाचार, अनीति, अत्याचार, षड़यन्त्र, वैर-फूट, कामचोरी, रिश्वतखोरी, काला बाज़ार जैसे मूल्यहीन व्यवहारों का उदय होता है । जो गुण मानवता के लिए अनिवार्य हैं वे हैं पवित्रता, दायित्व, धर्म, सत्य, दया, त्याग, सहानुभूति, अनुशासन, नीति, न्याय आदि जिसका क्षय आजकल हो रहा है । आज की विषम, जटिल, वैयक्तिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने मनुष्य का जीना अत्यन्त दूभर कर दिया है ।

स्वार्थ और अर्थ प्राप्ति की भावना से मनुष्य इतना ग्रसित है कि व्यक्ति में भला चरित्र नहीं, समाज में ठीक व्यवस्था नहीं, देश में सही नेतृत्व नहीं, परिवार में एकता, शान्ति नहीं सभी ओर अनैतिकता का आवरण बिछा हुआ है । क्योंकि आज मानव के लिए धन ही सबकुछ हो गया है । आज का उत्तराधुनिक युग मूल्यविहीन युग है जहाँ पैसा परमात्मा है । मानव येन-केन प्रकारेण धन इकट्ठा करना चाहता है । भौतिक सुख सुविधाओं की होड़ में सफलता प्राप्त करने के लिए व्यक्ति अनैतिक कर्मों के गर्त में गिरता जा रहा है । इसके लिए अपनी बेटी को या पत्नी को भी दाव पर देने के लिए आधुनिक मानव हिचकते नहीं है । पुरुषों ने धर्म के नाम पर महिलाओं का शोषण करना शुरू कर दिया है । यहाँ पवित्रता के जगह विलासिता और अनैतिकता का तालमेल चल रहा है ।

मानव जीवन और समाज का संपूर्ण ढाँचा नैतिक मूल्यों पर ही विकसित होता जा रहा है । "जीवन की सार्थकता नैतिक मूल्यों में ही निहित है ।"[१६] समाज और राष्ट्र की दृष्टि से नैतिक मूल्यों का विशेष महत्व है । नैतिक मूल्यों के विघटन से समाज में भी संघर्ष आरंभ हो जाता है । नैतिक मूल्यों के परिवर्तन में सारे मूल्य सिद्धान्त ही परिवर्तित हो जाते हैं । इसका प्रभाव समाज के हर व्यक्ति में प्रतिफलित होता है । नैतिक मूल्य पर विचार करे तो यह सबसे महत्वपूर्ण है । वर्तमान युग के यान्त्रिक, तकनीकी, औद्योगिक प्रगति, महानगरीय सभ्यता, संस्कृति आदि ने अपने अपने ढंग से नैतिकता को परिभाषित किया है । डॉ. पुष्पपाल सिंह के अनुसार, "आज ईमानदारी, न्याय, सत्य पालन आदि के आचार सम्बन्धी नैतिक मूल्य भी बुरी तरह ध्वस्त हो रहे हैं । इन मूल्यों का महत्व केवल घोषणाओं में, सार्वजनिक दिखावे मात्र में है । व्यक्ति अपने जीवन में इन उच्चतर नैतिक मूल्यों को मंजित करता है । इन मूल्यों की अवहेलना करनेवाले को भी समाज यदि प्रत्येक प्रकार की मान्यता, सार्वजनिक रुतबा प्रदान करता है तो इसका अर्थ

यही हो जाता है कि उस समाज ने इन मूल्यों को अस्वीकार-सा ही कर दिया है, उनके प्रति निष्ठा-प्रदर्शन केवल थोथा दिखावा मात्र है ।"[१७]

२.८ धार्मिक मूल्य

भारत में धार्मिकता या आध्यात्मिकता को महत्वपूर्ण स्थान मिला है । हम जानते हैं कि प्राचीन काल में मूल्यों का उद्‌भव और विकास धर्म और आध्यात्मिकता पर आधारित था । आध्यात्मिक मूल्यों से तात्पर्य यह है कि मानव की उन अन्तर्मन की अभिवृत्तियों से है जो मन, आत्मा और ईश्वर से संबन्धित होती है । दरअसल ऐसा लगता है कि मानव की सेवा ही ईश्वर प्राप्ति का साधन है । हर मानव को धार्मिकता पर महत्व देने की आवश्यकता है क्योंकि मानव की सभ्यता पूर्ण होने के लिए एक सीमा तक इसकी ज़रूरत है ।मानवता का विकास इसी में है । आम तौर से पाप-पुण्य, अच्छा-बुरा, गलत-सही, ऊँच-नीच, विनम्र-अहंकार का भाव धर्म और आध्यात्म की दृष्टि से तय होता है ।मानव जीवन और धार्मिकता परस्पर आश्रित है । आध्यात्मिक शक्ति में होनेवाले विश्वास को ही धर्म स्वीकार करते हैं । विश्वास के न होने पर किसी भी क्षेत्र में सफलता पाना नामुमकिन है । मानव के प्रत्येक लक्ष्य की सार्थकता उसकी विश्वास भावना पर निर्भर है । भारत के पुराने धार्मिक मूल्य आध्यात्मिकता पर टिके है । लेकिन स्वतंत्रता के बाद उभरती हुई वैज्ञानिक प्रगति के कारण आध्यात्मिक मूल्यों पर भी बदलाव की लहरें फूटने लगी । आजकल की युवापीढ़ी हर वस्तु और हालत को तर्कपूर्ण और संशय भरी दृष्टि से देखती हैं । वे पुरानी मान्यताओं और आस्थाओं की जगह नये धार्मिक मूल्य स्थापित करने में आतुर रहते हैं । श्री विद्यानिवास मिश्र के अनुसार – "वेदों में कहा गया, प्रथम धर्म है सब होकर सब के लिए सब समर्पित करना, हर काम की जाँच करना कि

हम यह काम सबकी ओर से कर रहे हैं या नहीं, हम सबके लिए कर रहे हैं या नहीं और इस छोटे से काम में सम्पूर्ण कर्म का मनोयोग लगा रहे हैं या नहीं । यह है तो धर्म है, नहीं तो धर्म के नाम पर छल है । पुराणों में धर्म का सार कहा गया कि सर्वभूतों का हित ही परम धर्म है, क्योंकि वहीं परमात्मा है ।"[१८] अर्थात् सही शक्तिमान ईश्वर के साथ रमने की साध ही जीवन की सबसे बडी साध है, वही परम अर्थ है, वही परम मूल्य है । उसीसे हर एक मानव दूसरे मूल्य को जाँचते हैं, परखते हैं, अनुभव करते हैं ।

२.९ शैक्षणिक मूल्य

शिक्षा जगत में मूल्य सबसे महत्वपूर्ण है । आजकल सभी शैक्षणिक केन्द्रों में मूल्य पर आधारित शिक्षा देने का ज़ोरदार कार्यक्रम चलता है । क्योंकि दिशाहीन एवं मूल्यहीन शिक्षा के कारण बच्चे अपने जीवन की सार्थकता खो बैठे हैं । नैतिक पतन की स्थिति में मानवता की दुबारा प्रतिष्ठा संभव नहीं । अतः शिक्षा का परम उद्देश्य है मूल्य की उद्भावना करके मानव आत्मा को संस्पर्श कर तथा ऐसे आदर्शों, प्रवृत्तियों और विभिन्न भावनाओं का संस्कार कर स्वार्थ भावना से अलग रहना । आज अनेक वादों जैसे बाज़ारवाद, उपनिवेशवाद, विज्ञापनबाजी, वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद के इस युग में शिक्षा चिरन्तन मानवीय मूल्यों का वाहक बनने की सख्त ज़रूरत है । आज शिक्षा क्षेत्र दरअसल व्यापार क्षेत्र में बदल गया है । वहाँ कुतन्त्रों, कुप्रथाओं, अनीतियों, राजनैतिक अराजकताओं से भरे वातावरण देखने को मिलते हैं । डॉ. देवराज के शब्दों में "शिक्षा का उद्देश्य है शिक्षार्थी के व्यक्तित्व का गुणात्मक विकास । दुनिया के महान लोगों की बौद्धिक तथा आवेगात्मक प्रक्रियाओं में साझेदार बनकर शिक्षार्थी अपने व्यक्तित्व का विकास करता है ।"[१९]

२.१० राजनैतिक मूल्य

समसामयिक राजनीति की काली आँधी का खुला चित्रण सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की 'खिड़की' कविता में व्यक्त किया गया है –

"लोकतन्त्र को जूते की तरह
लाठी में लटकाए
भागे जा रहे हैं सभी
सीना फुलाए"[२०]

स्वतंत्रता के बाद भी परतन्त्रता बनी रही, इसके साथ ही साथ अनेक प्रकार के बदलाव भी आये । पूरा परिवेश सत्ता के मदारीवाद में बर्बाद हो गया है । जनता ने स्वतंत्र भारत के बारे में जो सपने देखे थे वे स्वतंत्रता के बाद खाक हो गए । व्यावहारिक रुप में जो परिणाम निकले वे निराशाजनक थे । सारे स्वप्नों को नष्ट करते हुए अंग्रेज़ों के स्थान पर भारतीय भ्रष्टाचारी नेताओं ने अपना स्थान हासिल कर दिया । स्वाधीन भारत में राजनीतिक दलों का गठन अपनी स्वार्थ सिध्दि के लिए होने लगा । नतीजा यह निकला है कि त्याग और आदर्श की राह पर आगे बढ़नेवाले नेताओं में स्वाधीनता के बाद परिवर्तन आने लगा । इन नेतागणों ने देश की भलाई के बदले अपने लाभ के बारे में सोचा । किसी देश की शासन पद्धति जो कुछ व्यवस्थित नीतियों को स्वीकार कर चलता है वास्तव में वही है राजनीति । मन्नू भण्डारी ने राजनीति के सही अर्थ के बारे में बताया है कि "आवेश राजनीति का दुश्मन है, राजनीति में विवेक चाहिए, विवेक और धीरज ।"[२१]

दरअसल राजनीति एक ऐसी महान शक्ति है जो जीवन के हर पहलु को प्रभावित करती है । डॉ. मोहिनी शर्मा ने स्वातंत्र्योत्तर भारत में राज्य के महत्व को रेखांकित करते हुए लिखा है – "स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में सर्वाधिक महत्वपूर्ण

संस्था राज्य रहा है । राजनीति के निर्णयों ने ही भारतीय समाज को सबसे अधिक प्रभावित किया है । अन्यान्य समाजवादी एवं साम्यवादी देशों के समान भारतीय शासन व्यवस्था भी जीवन के इतने अधिक निकट आ गयी है कि उसको उपेक्षित कर जीवन की कोई योजना तैयार नहीं की जा सकती, चाहे वह सामाजिक क्षेत्र में हो, चाहे आर्थिक क्षेत्र में और चाहे राजनैतिक क्षेत्र में ।"[२२] स्वतंत्रता प्राप्ति ने भारतीय जनता को सुख और सुविधापूर्ण जीवन की अभिलाषा दी थी । जनतंत्र शासन व्यवस्था के ज़रिए राजनीति और व्यक्ति का संबन्ध सुदृढ़ होने लगा । जनता ने सुव्यवस्थित परिमार्जित शासन व्यवस्था द्वारा स्वच्छन्द, स्वतंत्र रुप में जीवन जीने का सपना देखा था । लेकिन शनै-शनै राजनीति का स्वरूप बदलने लगा । राजनीति के इतने अलग चेहरे उभरकर आये हैं कि राजनीति से जुड़े प्रत्येक चेहरे के अंदर अन्य अनेक चेहरे छिपकर रहने लगे । इस प्रकार राजनीतिज्ञों ने मुखौटा धारण करके समाज के सामने जो खेल खेला तदनुसार समूचे देश की मूल्याधिष्ठित भावना धुन्धली पड़ गई ।

आधुनिक परिवेश में परंपरागत राजनीतिक मूल्यों का अर्थ ही बदलने लगा । बेकारी, महंगाई, वर्ग संघर्ष जैसी अवस्थाओं ने राजनीतिक क्षेत्र को जर्जर कर दिया । जनता द्वारा जनता के लिए बनाई गई जनतान्त्रिक शासन व्यवस्था पथभ्रष्ट होने लगी । प्रत्येक स्थान पर अवसरवादिता, भ्रष्टाचार, लालच, स्वार्थ, धोखेबाजी, अत्याचार, झूठ, गुण्डागर्दी, अपराध प्रवृत्ति और आतंक का बोलबाला था । ऐसे गंभीर समस्याओं से देश की सुव्यवस्थित हालत बेहाल हो गयी । राजनीतिक परिवेश से सत्य, अहिंसा, नीति, न्याय, विश्वास, निष्पक्षता आदि मानवीय मूल्य तथा आदर्शवाद समाप्त हो चुका था । वस्तुत: राजनीति का आधार स्तंभ मानव मूल्य है लेकिन आधुनिक वैज्ञानिक युग में राजनैतिक दॉव पेंच के कारण मानव मूल्यों का विघटन ही पहले उभरकर आता है ।

आज राजनीति कुछ लोगों के हाथों की खिलौना बन गई । अर्थात् इनके

ज़रिए राजनैतिक क्षेत्र में मूल्य विघटन की स्थिति उत्पन्न होने लगीं । राजनैतिक मूल्यच्युति का प्रमुख मुद्दा पद और धन के प्रति लालसा है । नेताओं की आर्थिक लालसा का लाभ उठाकर धनी या पूँजीपति वर्ग किसानों, मज़दूरों आदि का शोषण करने का काम ज़ारी रखता है । डॉ. लालचन्द गुप्त मंगल के शब्दों में, "पहले विदेशी लोग नोच-खसोट और लूट-पाट करते थे । अब नेता उन्हें आगे बढ़ाने वाले और राजनीतिक पार्टियों को लाखों चन्दा देनेवाले पूँजीपति खसोट करने लगे है।"[२३] पूँजीपतियों के शोषण द्वारा अनेक समस्याएँ देश में उपस्थित हुई हैं ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् यह महसूस होने लगा कि आज़ादी कोई मूल्यवान उपलब्धि नहीं है । क्योंकि इसका लाभ एक सीमित वर्ग के व्यक्तियों के हिस्से में है । अतीत गौरव का गुण-गान फीका पड़ने लगा और स्वतंत्रता को जन्मसिद्ध अधिकार माननेवाले स्वरों में स्वार्थपरता की अनुगूँज सुनाई पड़ने लगी । इस प्रकार सेवा, त्याग, देश सेवा जैसे राजनीतिक मूल्य अपना पुराना रुप खोने लगे थे । स्वाधीनता पूर्व राजनीति के क्षेत्र में जो स्वच्छ, निर्मल, पवित्र और सेवायुक्त वातावरण था वह स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अस्तित्वहीन होने लगा । राजनैतिक नेता अपने उत्तरदायित्वों को केवल मतदानों की प्राप्ति तक ही सीमित मानने लगे थे । पहले देश की भलाई के लिए ज़ोर ज़ोर से नारे लगानेवाले नेतागण आज देश को दुर्गति की ओर ले जाने के लिए तत्पर हो रहे हैं । धन प्राप्ति और पद प्राप्ति की इच्छा ने नेताओं को एक ओर स्वार्थी बना दिया तो दूसरी ओर जनता के बीच संघर्ष और शत्रुता का बीज बोने में कामयाब बना दिया ।

२.११ मूल्य : भारतीय और पाश्चात्य विचारों में

भारतीय समाज मूलतः मूल्यजीवी रहा है अर्थात् मूल्यों पर आस्था रखकर जीनेवाले हैं । मूल्यों की रक्षा के लिए जीवन को दॉव पर लगाने की परंपरा भी यहाँ अत्यंत

पुरानी है । सत्य, अहिंसा, मानवता, दया, क्षमा, शांति, करुणा, परोपकार, निष्ठा, राष्ट्र प्रेम, धर्म, स्वातंत्र्य, समता, प्रेम, वात्सल्य, निकटता, समन्वय भाव, बन्धुता आदि का स्वीकार हमारे यहाँ मूल्यों के रुप में ही किया गया है । मूल्य तो समाज की वह नींव है जिस पर मानवतारुपी सभ्यता और संस्कृति का सुन्दर महल प्रतिष्ठित होता है । मूल्य समाज व्यवस्था को शांति और चैन प्रदान करके दिखाई देता है । भारतीय मूल्यों का आधार आध्यात्मिक भाव से युक्त है । भारतीय संस्कृति में मूल्य सत्यं, शिवं, सुन्दरम जैसे मानवीय चिन्तन का निचोड़ भाव है । भारतीय संस्कृति, धर्म तथा भारतीय दर्शन मूलतः इन्हीं तीनों पर आधारित है । इन तीनों का गहरा संबन्ध सत् चित् और आनंद से है । इसलिए मूल्य जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण है, वैचारिक इकाई है, मनुष्य का व्यक्ति, समाज और वस्तु के साथ एक वैचारिक सम्बन्ध है । जिन पुरुषार्थों के बारे में आम तौर पर कह सकते हैं कि भारतीय चिन्तन की आध्यात्मिक धारा इन चार पुरुषार्थों को अपना मूल्य मानती है और इसी से प्रभावित उनका जीवन आचार विचार रहा । इसलिए निस्सन्देह बता सकता है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग है । विस्तार से कहे तो भारतीय दर्शन के अनुसार तन, मन, बुद्धि और आत्मा - इन चार महत्वपूर्ण तत्वों का समन्वयात्मक रुप ही है मनुष्य । शारीरिक विकास के लिए अर्थ, मानसिक विकास के लिए काम, बौद्धिक विकास के लिए धर्म और आत्मिक विकास के लिए मोक्ष ये भारतीय जीवन के प्राचीनतम मूल्य हैं । हमारे भारतीय दृष्टिकोण में प्राचीनकाल से ही ऐसे मूल्यों का महत्व रहा है ।

भारतीय संस्कृति की महिमा अत्यंत महनीय है । भारतीय संस्कृति और जीवनमूल्यों की महत्ता के कारण ही उसे सारे संसार में स्वीकृति मिली है । इसकी गरिमा पर स्वामी विवेकानंद ने कोलम्बो के भाषण में कहा – "यदि पृथ्वी पर ऐसा कोई देश है

जिसे हम पुण्य भूमि कह सकते हैं, यदि ऐसा कोई स्थान है जहाँ पृथ्वी के सब जीवों को अपने कर्मफल भोगने के लिए आना पड़ता है, यदि ऐसा कोई स्थान है जहाँ भगवान की ओर उन्मुख होने के प्रयत्न में संलग्न रहनेवाले जीवमात्र को अंततः आना होगा, यदि ऐसा कोई देश है जहाँ मानव जाति की क्षमता, धृति, दया, शुद्धता आदि सद्वृत्तियों का सर्वाधिक विकास हुआ है और यदि ऐसा कोई देश है जहाँ आध्यात्मिकता तथा सर्वाधिक आत्मान्वेषण का विकास हुआ है तो वह भारतभूमि ही है । विदेशों के लाखों स्त्री पुरुषों के हृदय में जड़वाद की जो अग्नि धधक रही है, उसे बुझाने के लिए जिस जीवनदायनी सलिल की आवश्यकता है वह यहीं विद्यमान है ।"[२४] भारत की अपनी अलग एक उत्तम संस्कृति है । भारतीय संस्कृति एक अनुपम और अकथनीय अहसास है जो सारे संसार के सामने हमें गौरव प्रदान करती हैं । भारत के पौराणिक काल के ऋषि-मुनियों सन्तों तथा विचारकों ने जो पावन पुण्य रास्ता हमारे लिए खोल दिये है वह आज हमारे लिए सबसे श्रेष्ठ है । अपने पौराणिक तथा धार्मिक ग्रन्थ जैसे वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, भगवद्गीता, कुरान, बाइबिल आदि के ज़रिए हम ने मूल्यों को अर्जित कर लिया है ।

आज के इस अधुनातन युग में विभिन्न क्षेत्र जैसे इलक्ट्रोणिक मीड़िया, उपभोक्तावादी संस्कृति, उदारीकरण, विज्ञापनबाजी प्रक्रिया, उपनिवेशवादी प्रवृत्ति तथा यान्त्रिकता का प्रभाव भारतीय संस्कृति पर पड़ा । इन मुद्दों के आधार पर भारतीयता कैसे बनाये रखे, यह एक बड़ी समस्या है । इस समस्या का हल तो यह है कि जो संस्कृति और मूल्य की जड़ें हमारे अंदर है वह हर इन्सान के अंदर गहराई तक पड़ी हुई है । इसलिए जड़ें मज़बूत है, अतः मानव मन से उसको पूर्ण रूप से उखाड़कर फेंकना बहुत मुश्किल काम है । क्योंकि यह भारतीय मूल्यों की सनातनता है ।

मूल्य सम्बन्धी पाश्चात्य विचारधारा भारतीय विचारधारा से बिल्कुल भिन्न है । भारतीय चिन्ता में जो आध्यात्मिक भाव है उसे पाश्चात्य विचारधारा ने पूर्ण रुप से नकारा है । पाश्चात्य मूल्य वर्तमानता, यथार्थता, क्षणवाद, भोगवाद, अस्तित्ववाद आदि से प्रभावित है । भौतिक साधनों की प्राप्ति, समाज की उन्नति, सुख्र भोगों का चयन आदि पर ज़ोर देने के कारण मूल्य बोध भौतिक सीमा रेख्राओं से घिरा हुआ है । डॉ. मोहिनी शर्मा के मतानुसार "पाश्चात्य चिन्तन के इतिहास को देख्रते हुए यह स्पष्टत: स्वीकारा जा सकता है कि प्राचीन तथा आधुनिक विचारकों के जीवन दर्शन में पर्याप्त अंतर रहा है । जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में पाश्चात्य चिन्तन में मूलत: भोगवादी दर्शन अथवा वर्तमान को ही सत्य मानकर चलनेवाली विशेषता के बावजूद प्राचीन ईसाई दार्शनिकों के द्वारा अरस्तू के उच्चतम आदर्श का अर्थ ईश्वर से तादात्म्य की इच्छा से सिद्ध करने के प्रयत्न में जीवन से परे किसी अन्य सत्य की ख्रोज का आग्रह भी देख्रा जा सकता है ।"[२५] आध्यात्मिक मूल्य भावना से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता । लेकिन सुख्र भोगों के निश्चित नमूनों के रुप में ही पाश्चात्य दृष्टि मूल्य को आँकती है । इसके परे इसका कोई महत्व या श्रेष्ठता नहीं है ।

इस प्रकार भारतीय और पाश्चात्य मूल्य प्रतिमान भिन्न-भिन्न सीमा रेख्राओं से आबद्ध होकर समानान्तर दृष्टिकोण को स्वीकारते हुए समाज में प्रतिष्ठित होते हैं । यहाँ विशेष रुप से मूल्य परिवर्तन इस विचार पर होता है कि पाश्चात्य विचारधारा या दृष्टिकोण किस तरह भारतीय विचारधारा या भावों को परिवर्तित करता है । बावजूद इसके, आध्यात्मिक मूल्य संहिताओं पर भौतिक मूल्य संहिता कहाँ तक अपना प्रभाव छोड़ती है । पाश्चात्य संस्कृति का जीवन मूल्य सम्बन्धी जो विचारधारा है उसका आँख्र मूँदकर अनुकरण करने से भारतीय जीवन मूल्यों में सीमातीत रुप में परिवर्तन होने लगता

है । पाश्चात्य मूल्यों ने भारतीय जनमानस को बदलने का प्रयत्न किया साथ ही उनके रास्ते में चलने के लिए प्रेरणा भी दिया । पाश्चात्य सभ्यता को स्वीकार करना आजकल एक फैशन की तरह भारतीय जनता मानती है । इसलिए भारतीय मूल्यों की अपनी सनातन संस्कृति की शक्ति दिन ब दिन कम होती जा रही है ।

२.१२ आधुनिक समाज में मूल्य परिवर्तन की प्रमुख दिशाएँ

आजकल की वैज्ञानिक उपलब्धियाँ हैं – तकनीकी ज्ञान, सूचना प्रौद्योगिकी, औद्योगिक विकास, उपभोक्ता संस्कृति, भूमण्डलीकरण, नव उपनिवेशवाद आदि । विकास की इन अवस्थाओं ने मानव जीवन को बहुत ही गहराई से प्रभावित किया है । परिणामतः आज मूल्य परिवर्तन की गति भी अत्यंत तीव्र हो गई है । प्रासंगिकता की दृष्टि से सामाजिक हालत की आवश्यकताओं के अनुकूल मूल्यों का बदलना अवश्यंभावी है । मूल्य गतिशील होते हैं, समाजबद्ध होते हैं । मूल्य जो है वह संस्कृति के अंग है । ऐसी संस्कृति के बीच व्यक्ति और समाज समाहित है । उसे निरपेक्ष होकर मूल्यों को समझना नामुमकिन है । अतः व्यक्ति, समाज और संस्कृति इन तीनों का संबन्ध परस्पर जुड़ते रहते हैं । मूल्यों का संबन्ध मानव के सामाजिक जीवन से है । समाज ही मूल्यों की स्थापना करता है । मतलब समाज की विभिन्न परिस्थितियों के ज़रिए मूल्य जन्म लेते हैं । ऐसे परिस्थितियों में होनेवाले परिवर्तन के साथ ही साथ मूल्यों में परिवर्तन होता है । बकौल डॉ. रमेश कुन्तल मेघ – “बदले हुए सामाजिक सम्बन्धों के फलस्वरुप जब विराट जनता में नए जीवन मान और जीवनादर्शों को स्थापित करने की उद्विग्नता होती है और जब उन्हीं के प्रतिनिधि स्वरुप मानवतावादी दार्शनिक, कलाकार, धर्मगुरु या अन्वेषक समाज में उपेक्षित अथवा नए तत्वों की ओर ध्यान देते हैं और मानव समाज की आवश्यकताओं को

समझते हैं तो नए मूल्यों की सृष्टि होती हैं ।"[२६]

परिवर्तन प्रकृति का एक स्वस्थ, शाश्वत नियम है । अत: मानव जीवन की हर क्रियाओं में परिवर्तन की झलक उभरकर दिखाई पड़ती है । मानव में शक्ति है, विवेक है, चेतना है, बौद्धिकता है, इसलिए वे परिवर्तन चाहते हैं । भारतीय समाज में मूल्य परिवर्तन की दिशायें जैसे राजनीति, आर्थिक अभाव, स्वार्थ भावना, जनसंख्या की अधिकता, बेरोज़गारी, विश्वास में आनेवाले परिवर्तन, मानवीय भावों में उत्पन्न अविश्वास, भौतिक सुख सुविधा के प्रति अति लालसा, पाश्चात्य प्रभाव, नगर और कस्बों का विकास, गाँव का अध:पतन, व्यक्तिवाद, संयुक्त परिवार का टूटन, अणु परिवार का जन्म, बौद्धिकता का विकास, व्यक्ति चेतना, परंपरागत मान्यता, शिक्षा-दीक्षा, पारिवारिक संबन्ध में अनैक्य, दांपत्य जीवन का संघर्ष, आचार विचार की भिन्नता, अहं की भावना आदि अन्य अनेक छोटे-मोटे कारणों से समाज में मूल्य संक्रमण की स्थितियों को प्रभावित कर रहे हैं । इन तमाम परिवर्तनों का कारण क्या है ? परंपरागत मूल्य जैसे प्रेम, त्याग, ममता, दया, मानवीय कल्याण, परोपकार, निस्वार्थता, सेवातत्परता, हार्दिक मनोभाव जैसे कुछ शाश्वत मूल्य मानव के खून में मिले हुए हैं वे टूट रहे हैं और परिणामस्वरुप उनके स्थान पर विद्वेष, भय, अविश्वास, कुंठा, हताशा, अकेलापन आदि का उदय हो रहा है ।

आधुनिकता संबन्धी विचार मूल्य परिवर्तन का और एक महत्वपूर्ण घटक है । जीवन का एक नियम है परिवर्तन । मानव जीवन दिन ब दिन नये-नये परिवर्तन से प्रभावित होते हैं । आधुनिक युग में आधुनिकता की विचारधारा अत्यंत महनीय रही और इसने सारे विश्व को प्रभावित भी किया । ऐसी आधुनिक विचारधारा ने नई सोच और नई संवेदनशीलता से पुरानी सोच और संवेदनशीलता को पूरी तरह परिवर्तित कर

दिया है । आधुनिक विचारधारा के प्रभाव के कारण जीवन की स्थिति में परिवर्तन आया है और इसके अनुसार मानव जीवन में बदलाव आया है । "आधुनिकता को परिवर्तन में सहायक मानने का एक अर्थ यह निकलता है कि 'दृष्टि' बदलते ही मूल्यों के बदलने की शुरुआत होने लगती है । परन्तु मूल्य परिवर्तन तभी माना जाना चाहिए जब किसी न किसी 'मूल्य' की उपस्थिति हो । पुराना उखड जाए, नया उगे नहीं अर्थात् कोई मूल्य न हो तो यह मूल्य परिवर्तन की स्थिति नहीं है ।"[२७]

निष्कर्ष

निष्कर्ष रुप में यह कहा जा सकता है कि मूल्यों का क्षेत्र बिलकुल व्यापक है । यह सच है कि मूल्य समाज की वह आधारशिला है जिस मज़बूत नींव पर सभ्यता और संस्कृति का सुन्दर महल निर्मित होता है । समाज के निर्माण में मूल्यों ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है । समाज का संबन्ध मानव जगत् से है अतः मूल्यों का संबन्ध भी मानव से है । इसलिए मूल्य का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता यह तो मानव की उन्नति और अवनति के साथ बनता-बिगड़ता और विकसित होता है । विशेष रूप से कहे तो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय समाज एक संक्रमणकालीन स्थिति से आगे बढ़ रहा है । यह स्थिति सबको झेलनी पड़ रही है । देश को अनेक सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक समस्याओं से गुज़रना पड़ा है । इस कारण मूल्य सम्बन्धी परंपरागत मान्यताएँ भी बदलने लगीं । समाज में आज भूमण्डलीकरण, बाज़ारवाद, नवउपनिवेशवाद आदि का ज़ोरदार प्रभाव है । इन सभी के बीच मग्न मानव के मानसिक व्यवहार में अनेक तरह का परिवर्तन आये हैं । परिवर्तित संस्कृति की उत्तम उपज है मूल्य

विहीनता । पीढ़ियों में बदलाव आने के साथ साथ मूल्यों में भी परिवर्तन आते हैं । आज भूमण्डलीकरण, औद्योगीकरण, सूचना प्रौद्योगिकी, विभिन्न प्रकार के इलक्ट्रोणिक मीडिया, दूरदर्शन से प्रस्तुत करनेवाली बुरी संस्कृति, विज्ञापनों की अधिकता, वैज्ञानिक प्रगति, उदारीकरण, उपभोक्तावाद, राजनीति, पर्यावरण प्रदूषण जैसे अनेक बातों से समाज का चेहरा बदल गया है । सभी क्षेत्र में नयी नयी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मूल्यों को तोड़ने की प्रवृत्ति आयी। आधुनिक युग की नयी माँग के अनुसार नवीन मूल्यों की खोज की जाने लगी । आज के युग में जीवन का केन्द्रबिन्दु अर्थ है और अर्थ के आधार पर ही व्यक्ति के मूल्य को आँका जाता है । इसलिए जीवन मूल्यों के बदलाव में अर्थ की भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी । आज ईमानदारी, निष्ठा, सेवा, त्याग जैसे आदर्श सामाजिक मूल्यों में विघटन का एकमात्र हेतु अर्थ का अतिप्रसरण है । अंततः यह सही है कि मूल्य के बिना व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं होता । हर मानव का अपना एक दायित्व है कि वास्तविक मूल्य को स्वीकार करना और अवास्तविक मूल्य को जड़ से उखाड़कर फेंक देना । इस प्रकार उत्तम सामाजिक व्यवस्था को कायम रखना और समाज को मूल्य विहीनता से सुरक्षित रखना परम अभिलषणीय है ।

संदर्भ संकेत

१. रमेश कुन्तल मेध – मन खंजन किनके – पृ. १९२

२. निरुपमा भट्ट – उद्धृत - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी आंचलिक कहानी – पृ. ५८

३. डॉ. मोहिनी शर्मा – उद्धृत - हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य – पृ. २८३

४. विद्यानिवास मिश्र – नदी नारी और संस्कृति – पृ. ८९

५. डॉ. हुकुमचन्द राजपाल – आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य – पृ. १७

६. डॉ. पुष्पपाल सिंह – समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ – पृ. ३२

७. डॉ. अरुणा गुप्ता – छठे दशक की हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य – पृ. १९

८. डॉ. वासुदेव शर्मा – साठोत्तर हिन्दी कहानी : मूल्यों की तलाश – पृ. १३

९. डॉ. देवमणी उर्फ मीनमिश्र – उद्धृत - संत साहित्य में मानव मूल्य – पृ. ७

१०. डॉ. अरुणा गुप्ता – छठे दशक की हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य – पृ. २२

११. डॉ. वैजनाथ सिंहल – साहित्य : मूल्य और प्रयोग – पृ. १०

१२. हेमेन्द्रकुमार पानेरी – स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य संक्रमण – पृ. २२

१३. डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ–उद्धृत-हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में मूल्य संक्रमण–पृ.३५

१४. हेमेन्द्रकुमार पानेरी – स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य संक्रमण – पृ. १६२

१५. डॉ. शिवप्रसाद सिंह – आधुनिक परिवेश और नवलेखन – पृ. ३६

१६. डॉ. सुरेन्द्रसिंह नेगी – नैतिक मूल्यों की प्रासंगिकता – पृ. १०४

१७. डॉ. पुष्पपाल सिंह – समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ – पृ. ४३

१८. विद्यानिवास मिश्र – नदी नारी और संस्कृति – पृ. ११९

१९. डॉ. देवराज – संस्कृति का दार्शनिक विवेचन – पृ. ३६८

२०. कृष्णदत्त पालीवाल – उद्धृत - सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचना कर्म – पृ. १७५

२१. मन्नू भंडारी – आपका बंटी – पृ. ११८

२२. डॉ. मोहिनी शर्मा – हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य – पृ. १७३

२३. डॉ. लालचन्दगुप्त मंगल – अस्तित्ववाद और नयी कहानी – पृ. ११२

२४. संतराम वैश्य – सूर की सांस्कृतिक चेतना और उनका युगबोध – पृ. ३

२५. डॉ. मोहिनी शर्मा – हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य – पृ. १०

२६. रमेशकुन्तल मेघ – सौन्दर्य मूल्य और मूल्यांकन – पृ. ८८

२७. डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ – हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में मूल्य संक्रमण – पृ.३९

तीसरा अध्याय

ममता कालिया की कहानियों में परिवर्तित मूल्य

यह एक सार्वकालिक सत्य है कि मानव जीवन में मूल्यों का स्थान सर्वप्रथम है । क्योंकि मूल्य ही मानव को सच्चे अर्थों में मानव बनाता है । मानव सामाजिक-प्राणी है । इसलिए समाज से उनका संबन्ध गहरा है । समाज से ही मानव के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास होता है, क्योंकि व्यक्ति समाज में अंकुरित होता है । मूल्य सामाजिक संबन्धों को समन्वयात्मकता प्रदान करनेवाली एक शक्तिशाली कड़ी है । विशेषकर भारतीय सभ्यता और संस्कृति में मूल्य का ऊँचा स्थान है । वरिष्ठ आलोचक बच्चन सिंह के अनुसार, "उत्तर आधुनिकतावाद में कंप्यूटर, दूरसंचार माध्यम, टेक्नोलॉजी के कारण जो नई स्थितियाँ पैदा हुई हैं उन्हीं से उत्तराधुनिकतावादी चेतना का विकास हुआ है । अपने यहाँ तो अभी पूरी तरह से आधुनिकतावाद ही नहीं है, उत्तर आधुनिकतावाद तो दूर की स्थिति है । पर एतदजन्य उपभोक्तावाद ने हमारी संस्कृति और मूल्यों पर आक्रमण करना शुरु कर दिया है । इसे एक प्रकार का नकारात्मक सौन्दर्यबोध का आह्लाद कहा जा सकता है ।"[१] किन्तु औद्योगीकरण, विज्ञान जैसे बढ़ते चरण ने हमें यह सोचने पर मज़बूर कर दिया है कि हम अपनी संस्कृति और सभ्यता के मूल तत्वों से धीरे-धीरे किस प्रकार दूर होते जा रहे हैं । कारण, आज के भौतिकवादी युग और जीवन के तीव्र रफ्तार में हम अपनी बहुमूल्य निधियों और परंपराओं से अलग होते जा रहे हैं । प्रेम, प्यार, सौहार्द, सहिष्णुता, सत्य, विनय, संवेदनशीलता, आध्यात्मिकता, नैतिकता जैसे दिव्य मूल्यों को अपने अंदर बनाये रखना है तभी मनुष्य निड़र जीने का अधिकारी बन सकता है । इन मूल्यों के पतन

होने के कारण ही समाज में मानव का जीवन नीरस, स्वार्थ, अज्ञान, तनाव, अधार्मिकता, भ्रष्टाचार से ग्रस्त हो जाता है । आज के विद्रोहपूर्ण माहौल में जीनेवाले हरेक मानव को मूल्यबोध का ज्ञान होना परम अनिवार्य है ।

मानवीय जीवन का एक अभिन्न अंग है मूल्य । यह सच है कि हर एक सिक्के के दो पहलू होते हैं। अतः मूल्य शब्द में भी दो पक्ष होते हैं अर्थात् नये मूल्य और विघटित मूल्य । समाज और मूल्य का सम्बन्ध बहुत गहरा है। इसलिए कोई भी इससे परे नहीं रह सकता । आधुनिक युग मूल्य परिवर्तन का युग है । इसलिए साहित्यकार भी इस विषय में सजग रहते हैं । इस परिवर्तन के बारे में मानव मन को अगाह करने का सफल दायित्व साहित्य जगत में भी विद्यमान है । अतः आज के चर्चित विषयों में मूल्य की प्रासंगिकता को समझकर साठोत्तर महिला कहानीकार ममता कालिया ने अपनी कहानियों के ज़रिए मूल्य के विभिन्न पहलुओं को पाठक के सामने प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है । क्योंकि आज मूल्य संबन्धी अवधारणाओं में अनेक तब्दीलियाँ आ गयी हैं । बावजूद इसके आज समाज में परिवर्तन एक फैशन और अनुकरण मात्र बन गया है । ऐसे परिवर्तन कभी कभी नये मूल्यों के साथ विश्रृंखलित अवस्था की ओर बढ़ते हुए नज़र आते हैं । जीवन से संबन्धित सभी क्षेत्रों में इसका प्रभाव पड़ता है ।

आज के उत्तर आधुनिक, भूमण्डलीकृत और उपभोक्तावादी युग में व्यक्ति आत्मकेन्द्रित हो गया है । मानव-मानव के बीच के सभी संबंध रिसते जा रहे हैं । सामाजिक, पारिवारिक, दांपत्य, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षिक, नैतिक जैसे विभिन्न क्षेत्रों में मूल्य की स्थिति आज कैसी है ? हमें सोचना पड़ेगा । दरअसल मानव की श्रेष्ठता मूल्यों पर आधारित है । लेकिन वर्तमान स्थिति में मूल्यों का महत्व हमें ढूँढ़कर निकालना पड़ेगा।

डॉ. मदन केवलिया के अनुसार, “मशीनी सभ्यता के आने से परिवार बिखर गये । ईश्वरभय कम होने के कारण नैतिक मूल्यों का क्षय होने लगा । फलस्वरुप सामाजिक मूल्यों में ही टूटन आ गई । इस उथल-पुथल से साहित्य की दशा दिशा बदल दी ।”[२]
ममता कालिया की कहानियों के बारे में जितेन्द्र श्रीवास्तव का कहना है कि, “उनकी कहानियों को स्त्री विमर्श की कहानियाँ न कहकर बृहत्तर जीवन मूल्यों की कहानियाँ कहना अधिक संगत होगा । वे उन स्त्री कथाकारों से भिन्न हैं जो पुरुष मात्र को खलनायक की तरह प्रस्तुत कर मुँह के बल लिटा देती हैं और उसकी आत्मा तक को लहू लुहान करके ही दम लेती है । ममता कालिया की कहानियों में स्त्री पुरुष सम्बन्ध और पारिवारिक मूल्य केन्द्रीय तत्व की तरह उपस्थित है।”[३]

मूल्य विघटन या नये परिवर्तित मूल्यों की स्वीकृति का उपक्रम परिवेशजन्य प्रतिक्रियाओं का परिणाम है । जैसे मूल्य और समाज की जो निकटता है वैसे परिवार का भी समाज में महत्वपूर्ण स्थान है । भारतीय संस्कृति में परिवार का स्थान गरिमामय है । हर एक व्यक्ति के सामाजिक जीवन का प्रथम पाठशाला परिवार ही है । मूल्य का उदय भी यहीं से शुरु होता है । परिवार जैसे सुदृढ़ मानवीय संस्था की शुरुआत का आधार स्त्री और पुरुष का वैवाहिक जीवन है । वहाँ खामियाँ भी है और खूबियाँ भी । उत्तर आधुनिक युग में वैज्ञानिक प्रगति के तेज़ रफ्तार में तो पारिवारिक संस्था में दरारें आने लगी हैं । यह दरार समाज पर पड़ने वाला एक तीखा प्रहार है । असंतुष्टि, आपसी अप्रियता, समझौता का अभाव, पति पत्नी के आपसी मन-मुटाव, नफसा-नफसी, सन्देह, अन्य अनेक संघर्ष, स्वार्थ, आधिपत्य मनोभाव आदि के कारण पारिवारिक ज़िन्दगी अत्यंत दूभर होती जा रही है। ऐसे परिवार में से जो व्यक्ति आता है स्वाभाविक रुप में उसका प्रभाव समाज में भी दिखाई पड़ता है । आज समाज नानारूपों में विकास की चरम स्थिति

में पहूँचना चाहता है । आधुनिक समाज के स्त्री पुरुष अब परंपरागत रुढ़ बन्धनों से अपने आपको बाँधकर रखना नहीं चाहते । स्त्री हो या पुरुष स्वतंत्रता के आकांक्षी हैं । समाज की उन्नति के लिए एक उत्तम मूल्य व्यवस्था उचित है । उच्च आकांक्षा रखनेवाले स्त्री पुरुष नये दृष्टिकोण, नई मान्यताएँ, नये दबाव और नयी परिस्थितियों से टूट रहे हैं । यह आज के साहित्य में दृष्टिगोचर हैं । ममता कालिया की कहानियाँ आज के इन परिवर्तनों से अछूती नहीं है । मूल्य परिवर्तन की नयी आहटें उनकी कहानियों में भी सुनाई पड़ती हैं ।

३.१ सामाजिक कहानियों में परिवर्तित मूल्य चित्रण

समाज निरन्तर परिवर्तनशील है । प्राकृतिक, मानसिक, शारीरिक, भौतिक यानी सभी माहौल में समाज में निरन्तर परिवर्तन आते हैं । आज समाज में आत्मीयता की कमी है । आत्मीयता के अभाव संबन्धों के भार को ढोने के लिए सभी विवश हैं ।

३.१.१ प्रेम का नया स्वरूप

ममता कालिया की कहानी 'छुटकारा' में संबन्धों का बिखराव दिखाया गया है । इसमें प्रेम की समस्या है । आज प्रेम स्थूलता का पर्याय है जो मात्र अल्पकाल के लिए है। इसकी नायिका और बत्रा में विश्वविद्यालय के दिनों से एक प्रकार की निकटता एवं आत्मीयता का संबंध था । लेकिन कुछ दिनों के अंतराल में दोनों में एक दरार, अलगाव का भाव महसूस होने लगता है । प्रेम के क्षेत्र में समर्पण की भावना आज नहीं के बराबर है । इस कारण वहाँ जल्दी ही प्रेम ऊबाहट में परिणत हो जाता है । प्रेमी-प्रेमिका स्वयं महसूस करते हैं कि प्रेम में स्थायित्व नहीं है । 'छुटकारा' की प्रेमी प्रेमिका दोनों का प्रेम संबन्ध अल्पकाल में ही समाप्त हो जाता है । छुट्टियों के बाद आने पर

उनको लगता है कि प्रेम का रस कहीं रिस गया है । यहाँ दोनों के संबन्ध दृढ़ नहीं हो पाता, क्योंकि दोनों के व्यवहार में काफी अंतर आ गया है । इसकी नायिका अपने प्रेमी से न जुड़ पाने की स्थिति का विश्लेषण करती हुई कहती है – "मैं चाहती थी, वह ऐसे अकेला न हो, पर उसके लिए मैं कुछ कर नहीं सकती थी । किसी के अकेलेपन का मर्म समझकर भी उसे बाँट न सक पाना करुण होता है । इतना गीलापन हमारे स्वभावों के विपरीत था ।"[४] इसलिए वे अपने संबन्धों को नया मोड़ देना चाहते हैं । वास्तव में प्रेमी-प्रेमिका की यह दृष्टि भी सार्थक है । प्रेमी-प्रेमिका को महसूस होता है कि प्रेम का संबन्ध सूक्ष्म नहीं इसलिए वे अपने को सुरक्षित बनाया रखना उचित समझते हैं । ममता कालिया मूल्य पर विश्वास रखती हैं, इसलिए अपनी कहानी के पात्रों के मार्फत आधुनिक समाज के छात्रों को चेतावनी भी देना चाहती है ।

प्रेम का परिवर्तित रुप 'बेतरतीब' कहानी में देख सकते हैं । इसका नायक आनन्द एक नाटक कंपनी में काम करता है । नायिका उस कंपनी को ग्रान्ट देनेवाले एक अमीर की अविवाहित पुत्री है । इसका नाम सन्तोष है । सन्तोष आनन्द के प्रति विशेष लगाव प्रकट करती है । लेकिन आनन्द जीवन को व्यावहारिक दृष्टि से देखता है । वह जानता है कि जो लड़की उसके पीछे है वह संपन्न वर्ग की है । आनन्द एक साधारण निम्न मध्यवर्ग का युवक है । इसलिए वह सोचता है कि "सन्तोष उसे धागे का बेतरतीब ढेर समझता है । हर बात में ऊँगली पर एक गज ढील और लपेट लेती है ।"[५] आनन्द अपने विचारों को लेकर उससे दूर रहना चाहता है । कभी-कभी वह उसके सामने खुलकर हँसने को भी डरता है और वह जानता है कि प्रेम संबन्ध इस तरह के भय, आतंक और डर से फलता नहीं है बल्कि मुरझा जाता है ।

भारतीय समाज विकास और परिवर्तन को महत्व देने के साथ-साथ

परंपरागत आचारों विचारों को भी एक साथ ग्रहण करता है । भारतीय संदर्भ में प्रेम का महत्वपूर्ण स्थान है । इसका आधारभूत तत्व है त्याग, घनिष्ठता, प्रेम, करुणा । यह दिखाने की चीज़ नहीं । लेकिन आज स्थिति बदल गई है । बदलते हुए नये मूल्यों के साथ प्रेम का स्वरूप धूमिल हो गया है । पाश्चात्य जगत की देखा देखी आज प्रेम नुमाइश की वस्तु बन गयी है । इस कारण स्थायित्व के भाव नहीं के बराबर है । कच्चे धागे की तरह प्रेम टूट जाता है । 'प्यार के बाद' ऐसी एक अलग कहानी है । इसमें ममता कालिया ने परिवर्तित नये प्रेम के स्वरूप को प्रस्तुत किया है । यहाँ दो प्रेमी-प्रेमिका हैं साहनी और बंगालन युवति । जो अपने स्वतंत्र और उच्छृंखल प्रेम के द्वारा प्रेम का एक नया मिसाल कायम रखना चाहती है । लेकिन "यह शहर तो लड़की का ऊँचा ब्लाऊज़ या नीची साड़ी भी बर्दाश्त नहीं कर सकता था । औरतों का बासी, मनहूस और अधेड़ दिखना शायद इस शहर की नैतिकता का एक अनिवार्य अंग था । एक ही साइकल पर आगे-पीछे बैठे हुए वे दोनों शहर के लिए एक धमकी थे । पर उन्हें इसका अहसास नहीं था ।"[६] हमारे परंपरागत समाज में उक्त स्थिति स्वीकार्य नहीं है ।

'साथ' कहानी में ममता कालिया ने भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों का पतन किस तरह हो रहा है इस बात को दिखाने का प्रयत्न किया है । इसमें प्रेम का नया रूप देखने को मिलता है । प्रेम के नाम पर समाज के सामने डर से जीवन भर अविवाहित रहना या गल-गल मरना आज की आधुनिक स्त्री के लिए स्वीकार्य नहीं है । क्योंकि आधुनिक युग में प्रेम की परिभाषा बदल गयी है । आज प्रेम किसी से भी हो सकता है। विवाहित पुरुष या दो बच्चों के पिता भी प्रेमी हो सकता है । आज 'co-living' की स्थिति बड़े-बड़े शहरों में देखी जाती है । शादी के बिना, दायित्व के बिना साथ रहना यह पाश्चात्य विखण्डित समाज का यथार्थ रूप है जिसे हम भारतवासी मूर्खों की तरह अपना

रहे हैं । इस विखण्डित स्वरुप को ममता कालिया ने 'साथ' कहानी में प्रकट किया है। 'साथ' की सुनन्दा एक विवाहित पुरुष जिसने अपनी पत्नी को छोड़ दिया है, शादी के बिना उसके साथ रहने लगती है । सुनन्दा आज की नयी नारी का प्रतीक है जो न आगे देखती है न पीछे । जिस के लिए नैतिक मूल्य या संस्कारों का कोई महत्व नहीं है । जब पिता दहेज न देने की बात करते हैं तब वह बडी बुलन्द आवाज़ में कहती है - "मैं कुछ नहीं चाहती, उसके पास पहले से ही सबकुछ है । वह चाहे तो एक चैक से आधी मुम्बई खरीद सकता ।"[७] यहाँ लेखिका ने आधुनिक युग की स्वतंत्र चेता स्त्रियों के दिग्भ्रमित मानसिकता को उजागर किया है ।

३.१.२ युवा पीढ़ी की मानसिक दशा की नई अभिव्यक्ति

ममता कालिया की एक श्रेष्ठ कहानी है 'लड़के' । इस कहानी के माध्यम से ममता कालिया कुछ लड़कों के चरित्र पर प्रकाश डालती हुई नई पीढ़ी के लड़कों के चरित्र का उन्मीलन करती है । इन लड़कों को पढ़ाई में विशेष रुचि नहीं है । कॉलेज में वे इधर-उधर घूमते बातचीत करते रहते हैं । वास्तव में ये लड़के असंतुष्ट एवं बेचैन हैं । उन्हें अभिव्यक्त करने के लिए कोई कारगार साधन उपलब्ध नहीं हैं । तभी उनमें हड़ताल की चिन्ता जाग उठती है । दरअसल हड़ताल के बारे में वे कुछ नहीं जानते । हड़ताल क्या है ? इसका औचित्य क्या है ? हड़ताल कैसे किया जाता है ? इसका परिणाम क्या होगा ? इन सब बातों से वे अनजान हैं । फिर भी वे समिति के मंत्री का सुझाव स्वीकार करते हैं । वे चुपचाप बैठना भी नहीं चाहते । किसी सक्रिय काम में भाग लेना चाहते हैं क्योंकि वे अपने वर्तमान की स्थिति में कुछ परिवर्तन लाना चाहते हैं । इसलिए वे हड़ताल जैसे कार्य को स्वीकारते हैं । उनमें एक प्रकार का आक्रोश भाव है । आज की

सामाजिक एवं शिक्षा व्यवस्था के प्रति उनके मन में वितृष्णा का भाव है । गंगा में नहाने का खास शौक उन्हें नहीं है । फिर भी वे हड़ताल का आरंभ विधिवत् करना चाहते हैं। गंगा तट पर खडे होकर वे तरह तरह के दृश्य देखते हैं । इसी वक्त कुछ अधिकारी वर्ग परिवार सहित सरकारी जीपों में वहाँ आते हैं । यह देखकर लड़के क्रुद्ध हो जाते हैं । क्योंकि वे जानते हैं कि ये सरकारी धन या नागरिकों के धन का ही दुरुपयोग कर रहे हैं । यह सरासर अन्याय है । इस अन्याय को देखकर वे उन अधिकारियों को एक पाठ पढ़ाना चाहते हैं । इस कारण कोई न कोई वजह बताकर हड़ताल से विमुख हो जाते हैं। वे अपनी क्षमता के बल पर एक जीप में आये अधिकारी वर्ग को भगाने में सक्षम हो जाते हैं । अपने जीवन में ऐसे एक सार्थक काम करने से वे अत्यंत खुश भी हो जाते हैं ।

यहाँ आधुनिक युग के युवापीढ़ी की सही तस्वीर उतारने में ममता कालिया सक्षम हुई है । सही दिशा और ज्ञान के बिना युवापीढ़ी दिशाहीन एवं आवारा बन जाती हैं । स्वतंत्र भारत के बदलाव का चित्रण करके परिवर्तित नई युवा पीढ़ी को लेखिका हमारे सामने प्रस्तुत करती है । डॉ. रामप्रसाद के अनुसार, "कॉलेज के छात्रों की उद्धंडता एवं लक्ष्यहीन कार्य कलापों का उल्लेख करती हुई कहानीकार ने पूरी युवापीढ़ी की दिग्भ्रमित प्रवृत्तियों पर ही व्यक्त किया है । वे दूसरे के परामर्श पर गंगास्नान के बाद नारियल तोड़कर हड़ताल पर जाने की योजना बनाते हैं । किन्तु गंगा से लौटते हुए एक सरकारी जीप को चुरा लाते हैं और जॉनसन गंज के एक चौराहे पर छोड़कर भाग जाते हैं। यह कहानी देश में फैली अराजक स्थिति की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित करती है ।"[८]

ममता कालिया ने अन्य कहानियों से बिल्कुल अलग ढंग से इसका चित्रण किया है । जैसे बताया गया है इसमें आधुनिक युवापीढ़ी की अनुशासनहीनता के साथ

अधिकारी वर्ग की स्वार्थता एवं मनमानेपन को दर्शाने का प्रयत्न भी ममता कालिया ने किया है । अफसर लोग और राजनैतिक नेता साधारण आदमी का शोषण करके ही आरामपरस्त ज़िन्दगी जी रहे हैं । उन्हें केवल अपने सुख सुविधा की ही चिन्ता है । यानी बुराईयों को दूर करने या रोकने का उत्तरदायित्व जिन्हें हैं वे ही भ्रष्टाचार के दलदल में फँसे रहते हैं । इसलिए भ्रष्ट आचरण समाज भर में फैल गए हैं । इनसे प्रभावित होकर ही युवापीढ़ी भी आगे बढ़ रही हैं । यहाँ ममता कालिया इस कहानी के माध्यम से इन सभी अन्यायपूर्ण बातों पर सतर्क रहने का आह्वान ही कर रही हैं । सचमुच यह कहानी अपने लक्ष्य को भेदने में सक्षम हुई है ।

'वे' कहानी में लेखिका ने उत्तराधुनिक युग के युवालोगों के नैतिक बोध को उभारा है । आज के अधुनातन समाज में स्त्री सुरक्षित नहीं है । प्रभाकर क्षोत्रीय ने कहा है कि स्त्री कहीं भी सुरक्षित नहीं, कहीं भी किसी भी समय उसके साथ बलात्कार हो सकता है । ऐसे संदर्भ में 'वे' कहानी की अरुणा का आत्मधैर्य सराहनीय है । रात के वक्त बस खराब होने पर अनजान युवक के साथ उसके घर में पनाह लेना आधुनिक लड़कियों के आत्मविश्वास को दर्शाता है । कभी कभी ऐसी अवस्था में स्त्री अपमानित भी होती है । लेकिन इस कहानी में नायक अपने नैतिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए उसका संरक्षण करता है ।

'अपने शहर की बत्तियाँ' बेरोज़गारी की तीव्र समस्या को झेलनेवाले दो शिक्षित नवयुवकों की कहानी है । आजकल युवक अपने परिवार के प्रति कम जिम्मेदार हैं । कुछ अपवाद के रूप में भी दिखाई पडते हैं इस कहानी के दो नायक, पंकज और संजीव । उनको अपने कर्म के प्रति आस्था है । संजीव को कभी-कभी घरवालों के आग्रहों

को देखकर डर लगता है । वह कहता है, "मुझे तो अपने घरवालों की उम्मीदों से डर लगने लगा है । जिसे देखो वही उम्मीदों की लालटेन जलाए बैठा है ।"[१] दोनों अपने परिवार की खातिर नौकरी तलाशते हैं । सचिवालय में आवेदन देने के लिए दिल्ली पहुँचते हैं । लेकिन एक महानगर के दमघुटने वाले माहौल से वे शीघ्र ही अपने छोटे से गाँव में वापस आने को मज़बूर हो जाते हैं । यहाँ उच्च आकांक्षा रखनेवाले नयी पीढ़ी से भिन्न है संजीव और पंकज । वे अपने परिवार से जुड़कर आत्मीयता का आनन्द लेना चाहते हैं । आज के युग में ऐसे युवक विरले ही दिखाई पड़ते हैं ।

'आहार' कहानी में नीरज परंपरागत दफ्तर के माहौल में कुछ परिवर्तन लाना चाहता है। आधुनिक युग में यह देखा जाता है कि दफ्तर में लोग एक दूसरे का पैर खींचने, एक दूसरे पर वार करने के लिए मौका ढूँढते रहते हैं । किसी किसी को दूसरों की मानसिक शांति को भंग करने में संतोष का अनुभव होता है । ऐसे रूढ़ माहौल में परिवर्तन करना चाहता है नीरज । दफ्तर का माहौल सही नहीं है इसलिए वह एक मनोरंजन का क्लब स्थापित करना चाहता है । ताकि मानसिक तनाव कुछ दूर हो जायें। आज के यन्त्रवत् जीनेवाले लोगों के लिए मनोरंजन का कार्यक्रम अत्यावश्यक है । आज के प्रगतिशील युग में नीरज जैसे युवक यदि सभी दफ्तरों में रहे तो माहौल कितना सुखदायक हो जाय यह सोचने की बात है ।

३.१.३ स्वाभिमान एवं आत्मविश्वास के नये आयाम

आज 'स्पेस' की समस्या हर कहीं है । परिवारों में भी 'स्पेस' की खोज हर एक व्यक्ति करता है । 'अलमारी' कहानी संवेदनात्मक है । कुछ ऐसे होते हैं जो जीवन में संवेदना को महत्व देते हैं । यह संवेदना चेतन और अचेतन दोनों पर होते हैं । 'अलमारी' कहानी में शरत का अलमारी के साथ एक आत्मीय संबन्ध है । उस अलमारी

के साथ उसके कुछ परंपरागत यादें है । वह उसे घर के बुजुर्ग सदस्य के रूप में देखता है । लेकिन उसकी पत्नी पति के उस आत्मीयता से भरी अलमारी को लेशमात्र भी पसन्द नहीं करती । उसकी आँखों में आधुनिकता का नशा है । जो इस परंपरा की जीर्ण अलमारी को अपने जीवन से दूर करना चाहती है । ऐसे लोग संबन्धों को भी स्थूल दृष्टि से देखते हैं। संबन्ध के पुराने पड़ने पर उसे दूर फेंकने में वे हिचकते नहीं । शरत की पत्नी भी पति की उस अलमारी को उससे पूछे बिना उसकी भावनाओं को रौंधते हुए अपने स्कूल के चपरासी की बेटी के विवाह पर तोहफे के रूप में दे देती है । पत्नी के इस व्यवहार से शरत बहुत दुखी होता है । उसे लगता है उसके जीवन से अपने बुजुर्ग का संबंध कट गया है । अचेतन वस्तुओं के प्रति ऐसे संबन्ध, ऐसी भावनाएँ स्वाभाविक है ।

'लकी' कहानी का कथ्य समाज में व्याप्त अंधविश्वास को उकेरती है । इसका नायक जिसका नाम लकी है । इस नाम के पीछे भी इस तरह का एक विश्वास विद्यमान है । लकी के जन्म के बाद ही जीवन में प्रगति एवं उन्नति के कारण परिवारवालों ने उसका नाम 'लकी' रखा । जीवन में सफलता हासिल करना और लक्ष्य को प्राप्त करना सबके वश की बात नहीं है । इसके लिए इन्सान को व्यावहारिक सोच की ज़रूरत है । लकी अपने माँ बाप के विश्वासों के पथ पर आगे बढ़ता है । ज्योतिषी के दिशा निर्देशन के अनुसार वह कार्य करता है । एक दिन उसके चाचा के द्वारा यह जाना जाता है कि उसका जन्मतिथि गलत है । तब उसे ज्योतिषियों के पीछे भागकर समय व्यर्थ करना अर्थहीन लगता है । लकी जीवन को व्यावहारिक नज़रिये से देखता है । इसी कारण यथार्थ जन्मतिथि प्राप्त होने पर उसे अपने अतीत पर दुख नहीं होता । वह जीवन को नये सिरे से जीने के लिए तैयार हो जाता है । हमारे समाज में ऐसे लोग हैं जो ज्योतिषशास्त्र के पीछे अंधाधुंध भागते रहते हैं । ज्योतिष विद्या का आधार वैज्ञानिक है, यह सत्य है ।

लेकिन हर कार्य के लिए ज्योतिष के पीछे भागना मूर्खता है । यहाँ लेखिका यह बताना चाहती है कि आधुनिक युग में ज्योतिषियों का महत्व बढ़ता जा रहा है ।

चिकित्सा क्षेत्र दरअसल सम्मान और सेवा का पुण्य जगह है । लेकिन आज स्थिति बदल गयी । क्योंकि आज इसका ध्येय बेहिसाब धन कमाना मात्र है । 'मेडिकल एथिक्स' केवल शब्द कोश का शब्द मात्र रह गया है । 'पर्याय नहीं' कहानी डॉक्टर दंपतियों से जुड़ी कहानी है । नीना बडे काबिल एवं क्षमतायुक्त डॉक्टर है साथ ही शुल्क लेने में भी हिचकती नहीं । उसका पति डॉक्टर सुनिल टंटन गाँव में निःशुल्क सेवा करना चाहता है । मरीज़ की तीमारदारी शुरु होने के पहले ही एडवान्स लेने की अपनी पत्नी की रीति को वह नापसन्द करता है । कभी-कभी उसे खींझ भी होती है । एक बार एक घटना इस प्रकार घटती है । नीना के शुल्क लेने से कुछ समस्या उठ खडी होती है तब से डॉ. नीना दुर्घटनाग्रस्त मरीज़ को देखना बन्द कर देती है । डाक्टरों के कर्तव्य को समझाते हुए डॉ. सुनिल कहता है – "बीमार व्यक्ति का उपचार करना डॉक्टर का कर्तव्य है । हमने मानव सेवा का जो संकल्प लिया है, तुम्हें याद है ।"[१०] यहाँ डॉ. सुनिल मानवीयता और मूल्य भावना की ओर इशारा करता है । वह अपनी पत्नी को भी परिवर्तित करना चाहता है । बल्कि पत्नी की तरह नौकरी से लाभ उठाना वह नहीं चाहता है ।

मातृस्नेह को कौन नहीं चाहता ? 'सफर में' कहानी में ममता कालिया मातृस्नेह की स्मृतियों को अलग ढंग से प्रस्तुत करती है । स्त्री दया,ममता और क्षमा की मूर्ति है । वह माँ है, जननी है, ममता की खान है । माँ के रुप में स्त्री को सदा ही उच्च स्थान मिला है । मातृत्व स्त्री जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है । इस कहानी में मातृस्नेह का एहसास नायिका को तब होता जब कि रेलयात्रा के बीच थकी हुई एक महिला

नायिका के साथ सट कर बैठ जाती है । तब उस अधेड़ उम्र की स्त्री के स्पर्श से नायिका को एक माँ के पास बैठने का अनुभव होता है । "स्पर्शों की स्नेहिल भाषा कितनी मौन व गहन होती है । इसमें ऊष्मा है, उत्ताप नहीं, आश्रय है, आमंत्रण नहीं । मैं कल्पना करती हूँ इस स्त्री के बच्चों को अपनी माँ की गुदगुदी गोद में कितना सुख मिलता होगा । न जानते हुए भी वह मेरी कितनी अपनी है । मुझे लग रहा है कि माँ के गर्भ में पड़ी हूँ ।"[११] यहाँ परिवर्तित नये मूल्य का चित्रण है । आज के युग में बहुत कम लोग ही है जो दूसरों के स्पर्श को बरदाश्त करते है विशेषकर रेल यात्रा में । यहाँ थकी हुई शिथिल स्त्री का भार नायिका बडे प्रेम से स्वीकार करती है । उस अधेड़ स्त्री में वह अपनी माँ को देखती है क्योंकि उसकी माँ को दिवंगत हुए नौ वर्ष हो गये । उस अधेड़ उम्र की स्त्री को नायिका अपनी बेटी जैसी लगती है । यहाँ दोनों में एक प्रकार की आत्मीयता है । उस अधेड़ उम्र की स्त्री की बेटी की अकाल मृत्यु हो गयी होती है । और इसी कारण वह युवा लडकी उसे अपनी बेटी जैसी लगती है और लड़की को अधेड़ उम्र की स्त्री अपनी माँ जैसी लगती है । कभी कभी ऐसी अवस्थाओं में अनजाने ही एक आत्मीय संबन्ध उभर आता है । यहाँ भी ऐसा ही एक संबन्ध दोनों में बन जाते हैं । जब नायिका के पैरों में दर्द होने लगता है तब वह अधेड़ उम्र की स्त्री कहती है, "मालिस करवा, लाल तेल की सीसी घाम में धरकर घंटा भरे खूब भीजें । मुगलसराम रहतीं तो हम गोड़ ठीक कर देतें ।"[१२] इस तरह की परिस्थितियाँ जीवन में एक सीख देती है । दूसरों को स्वीकारने में एक सुख है । सुख में कभी कभी आत्मीयता का एहसास भी होता है।

यहाँ ममता कालिया ने विघटित समाज में रिसते हुए मूल्यों को बनाये रखने की कोशिश की है । वैसे हमारे समाज में यों बेटी का संबन्ध बहुत ही गहरा और

संवेदनशील है । परिवर्तित हो रहे मूल्यों के साथ इन संबन्धों में भी कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ है बावजूद इसके उसका नैसर्गिक भाव नष्ट नहीं हुआ है । जिसे इस कहानी में स्पष्ट किया गया है ।

ममता कालिया ने समाज की समस्त स्थितियों पर अपनी लेखनी चलायी है । विशेष रुप से स्त्री समस्याओं को गहराई से आंकने की कोशिश भी की है । 'वह मिली थी बस में' कहानी में लेखिका ने दो भिन्न मानसिकता रखनेवाली स्त्रियों के व्यक्तित्व को हमारे सामने प्रस्तुत किया है । एक तो निम्नवर्गीय स्त्री है दूसरी शिक्षित नौकरीपेशा मध्यवर्गीय स्त्री । समाज में ऐसी अनेक स्त्रियाँ हैं जो नौकरीपेशा होकर आत्मनिर्भर होने पर भी पति के चरणों की दासी है । शिक्षित होने के बावजूद भी वह परंपरागत मध्यवर्गीय विश्वासों की खोल से बाहर नहीं निकल पा रही है । दूसरी ओर ऐसी भी स्त्रियाँ है जिनका अपना एक दृढ़ व्यक्तित्व होता है और उसमें आत्मविश्वास भी है । ऐसी एक स्त्री है सोनू की माँ । एक बार रात के समय यात्रा के दौरान बस खराब हो जाती है । नौकरीपेशा स्त्री बुरी तरह घबरा जाती है । उस घबराहट के पीछे हो सकता है उसके पति का अंकुश हो, उसके अनगिनत सवाल हो आदि आदि । दूसरी ओर सोनू की माँ निश्चिन्त बड़े ही आत्मविश्वास के साथ ढाबे में सोने के लिए कहती है । शिक्षित स्त्री की घबराहट देखकर वह कहती है – "तो का । धो धा के आ जाइत हैं घरे । अरे कौनो चोट चपेट लगे तो मरा थोड़ो जाई । ई देही त देही है कौनो मसीन नहीं कि कल-पुरजा बदल लेयं ।"[१३] सोनू की माँ के आत्मविश्वास और धैर्य देखकर शिक्षित नौकरीपेशा स्त्री दंग रह जाती है । वह सोचती है कि उम्र में छोटी होने पर भी उसमें गजब का आत्मविश्वास और अदम्यता है । आत्मविश्वास और अदम्यता के लिए यह ज़रुरी नहीं है कि वह शिक्षा संपन्न या उच्च वर्ग की हो । अशिक्षित निम्न वर्ग की स्त्रियों में भी आत्मविश्वास और जागरण

की स्थिति देख सकते हैं ।

यह तो सर्वविदित सत्य है कि आजकल के व्यस्त माहौल में नौकरों का मिलना मुश्किल है । क्योंकि समाज विकास कर रहा है । विकास के साथ छोटी छोटी कंपनियाँ और उद्योग खुल रहे हैं । सभी उस कंपनियों एवं उद्योगों की ओर आकर्षित हो जाते हैं । उसमें जुड़ जाते हैं । घरेलू काम को कोई भी पसंद नहीं करता क्योंकि घरेलू काम करने से वह किसी का नौकर बन जाता है । दफ्तर का काम करनेवाला नौकरीपेशा कहलाता है । 'बांगडू' कहानी सत्यदेव की कहानी है । इलाहाबाद से आये आदिवासी की कहानी है । सत्यदेव शुरु शुरु में नादान बारह-तेरह साल का था । लेकिन थोडे ही दिनों में घर का सारा काम संभालने में समर्थ हो जाता है । छुटपन से ही उसके चेहरे पर एक बुजुर्गीला भाव विद्यमान था । सत्यदेव परिवर्तित नये माहौल के अनुसार अपने व्यवहार को भी ढाल देता है ।

कोई भी किसी को नियंत्रण में रखना नहीं चाहता । सभी स्वतंत्रता यानी अपनी इच्छा से जीना चाहते हैं । 'नमक' कहानी में एक वृद्ध बीमार माँ की जिद्दी स्वभाव का चित्रण करते हुए बाद में उसमें आये परिवर्तित मूल्य का उल्लेख किया गया है । वृद्ध माँ रक्तचाप और मधुमेह से पीड़ित है। यह एक स्वाभाविक सत्य है कि वृद्धावस्था में इन्सान बालक बन जाता है । बच्चों की तरह जिद्द करने लगता है । यहाँ की वृद्ध माँ भी स्वादिष्ट भोजन के लिए जिद्द करती है जबकि वह रोगग्रस्त है । रक्तचाप, मधुमेह से पीडित होने के नाते नमक, चीनी उसकेलिए निषिद्ध है । जिद्दीपन के कारण वह आते जाते लोगों से शिकायत करती हैं और अस्पताल से घर जाना चाहती है । घर में व्यवस्थित ढंग से कायदे के अनुसार भोजन मिलेगा । ममता कालिया ने स्त्री के हृदय के परंपरागत मूल्य

को उजागर किया है । माँ के अंदर अपने बच्चों के प्रति समर्पण भावना है, उनके प्रति वह अनगिनत सपने भी देखती है । 'नमक' की वृद्ध माँ भी भविष्य की जिम्मेदारियों को देखकर कायदे के अनुसार भोजन कर अपने सहेत को बनाये रखने का संकल्प करती है । बेटे साहिल को दिलासा देते हुए एक समझदार माँ की तरह वह कहती है, "रिलैक्स बेटू, मैं अपना ध्यान रखूँगी । अभी तो तेरा ब्याह करना है । छोटू की नौकरी देखनी है, मरने की फुरसत कहाँ है ।"[१४] वह अपने उत्तरदायित्व के प्रति अवगत है । इसलिए अपने व्यवस्थित स्वादिष्ट पूर्ण भोजन छोडने को तैयार हो जाती है । वह कहती है, "मैंने अपने को नयी संकल्पनों से लैस कर लिया जिऊँगी । तभी न हिमाद्रि तुंग श्रृंग के ऊपर पहुँचने में कामयाब रहूँगी । अब से परहेज़ करना है । स्वास्थ के प्रति सावधान रहना है । बीमारी अबलापन की ओर ले जाती है उस ओर नहीं फिसलना है ।"[१५] जीवन की असलियत एवं परिवेशगत सच्चाई को समझकर वह स्वयं परिवर्तन की ओर मुड़ती है । अपनी जिद्दी स्वभाव को भी छोड़ती है ।

आज के विकसित आधुनिक इस अधुनातन समाज में भी मानवीयता का स्फुरण देखने को मिलता है । 'सवारी और सवारी' कहानी में एक कॉलेज छात्रा के सशक्त व्यक्तित्व को दिखाया गया है । एक बार कॉलेज जाते समय ट्रैफिक ब्लोक हो जाती है । पुलिस आकर ब्लोक में फंसे रिक्शेवाले को डाँटता है । रिक्शे के आगे पीछे कई गाडियाँ फँसी है । पुलिस की नज़र गाडियों की ओर जाती नहीं है । रिक्शा वाले निरीह, गरीब, निम्नवर्ग के हैं उस पर जुल्म डालने से वह सबकुछ सह लेगा ऐसा एक विश्वास कुछ वर्गों में है । इसी विश्वास के कारण पुलिस सिपाही रिक्शेवाले को फटकारता है । ऐसी स्थिति की विद्रूपता को देखकर एक कॉलेज छात्रा भड़क उठती है । वह पुलिस से कहती है, "आगे पीछे तमाम गाडियाँ फँसी है और आप इस रिक्शेवाले पर जुल्म ढा रहे हैं । आगे

जाकर गाडियों को चलता क्यों नहीं करते ।"[१६] हमारे समाज में ऐसी स्त्रियाँ बहुत ही कम है या फिर कह सकते हैं ऐसे लोग नहीं के बराबर है । जो अकारण दूसरों की समस्याओं में अपने को उलझाकर स्थिति को सुधारने की कोशिश करते हैं । सभी अपने स्वार्थ पर टिके होते हैं । दूसरों की तकलीफों में उलझकर अपना समय और क्षमता को नष्ट करना कोई नहीं चाहते लेकिन ममता कालिया यह कहना चाहती है हमारे समाज में ऐसी भी लड़कियाँ हैं जो अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने में तनिक भी हिचकती नहीं ।

ममता कालिया की एक प्रतीकात्मक कहानी है 'खिडकी' । हर एक व्यक्ति के मनरुपी खिडकी का संकेत यहाँ किया गया है । इसमें कंचन एक आम ए.जी अफसर की बेटी है जो अविवाहित है । वह अस्थाई रूप में एक प्राइवेट स्कूल में पढ़ाती है । वह अपने परिवार के प्रति सदा समर्पित एवं व्याकुल है । उसकी अपनी आवश्यकताओं के लिए अपनी नौकरी काफी है । एक रेलयात्रा में बन्द पडी खिडकी द्वारा कंचन के दिमागरुपी बन्द हुई खिड़की खुल जाती है । कंचन रेलगाडी में कहीं जा रही होती है । रेल के डिब्बे की बन्द खिडकी वह खोल नहीं पाती है । वह बहुत कोशिश करती है लेकिन असमर्थ होती है । रेल की बन्द खिड़की को खोलने का प्रयत्न बहुत सारे युवक करते हैं । इनमें एक युवक 'एम.के' जो अलिगढ़ यूनिवेर्सिटी में 'थीम आफ एलियनेशन इन रामायण' पर रिसर्च कर रहा होता है । वह भी खिड़की खोलने की कोशिश करता है लेकिन असफल हो जाता है । वह अपनी बातों से कंचन के हृदय की बन्द खिड़की को खोल देता है । यानी कंचन के संकीर्ण दृष्टिकोण की गांठ खोल देता है । कंचन उस लड़के के व्यावहारिक चिन्तन से प्रभावित होती है और अपनी ज़िन्दगी को नये सिरे से जीने को सोचती है । कंचन को लगता है उसकी दिमागरुपी खिडकी से प्रकाश की किरण फूटने लगी है । आजकल एम.के जैसे प्रकाश फैलानेवाले छात्र कम ही है क्योंकि आजकल

सब जगह होड़ ही होड़ है । विशेषकर शैक्षणिक और नौकरी के क्षेत्र में । ऐसी हालत में कंचन जैसे लडकियों की मनरुपी बन्द खिड़की को खोलने वाला एम.के जैसे छात्र के व्यावहारिक चिन्तन काफी सराहनीय है ।

३.१.४ रिसते हुए पारिवारिक सम्बन्धों का परिवर्तित रूप

दांपत्य जीवन का आधार विश्वास है । यदि विश्वास ही डगमगाने लगे तो वह संबन्ध ताशमहल के समान ढहढहाकर गिर जायेगा । 'उत्तर अनुराग' में दांपत्य जीवन में होनेवाली अनगिनत सवालों को लेखिका ने यहाँ उकेरा है । खन्ना साहब एक व्यवसायी है । आर्थिक समृब्धि, संपन्नता की वजह से सूज़ी के साथ ब्यूटी पार्लर चलाता है । सूज़ी चीन की है। कर्म के प्रति एक समर्पण भाव है । सूज़ी और खन्ना का ब्यूटी पार्लर उस इलाके में बहुत मशहूर है । सभी अपने सौन्दर्य निखारने के लिए उनकी सहायता लेते हैं । खन्ना और सूज़ी का मिलजुलकर काम करने को खन्ना की पत्नी रेणु संशय की दृष्टि से देखती है । हालांकि उनमें कोई अनैतिक संबन्ध नहीं है । लेकिन एक पत्नी होने के नाते रेणु का संशय करना भी स्वाभाविक है । मानसिक रुप से उसके अंतर्मन में यह बात घरकर जाती है कि उसके पति और सूज़ी में कोई नाजायज संबन्ध है । यह बात उसके मन में कुंठा के रूप में जम जाती है । हो सकता है उसकी मानसिक स्थिति रोगग्रस्त हो गयी हो । बीच बीच में वह अपने पति से कहती है उसकी मृत्यु के बाद वह दुबारा शादी कर ले । इसी बीच अचानक उसकी तबीयत खराब हो जाती है और उसकी मृत्यु हो जाती है। रेणु की मृत्यु के बाद खन्ना साहब का पत्नी प्रेम और भी प्रकट हो जाता है । पत्नी की तस्वीर पर माला चढ़ाकर आराधना भाव से उसके द्वारा किये जाने वाले कामों को सुचारु रुप से करने लगता है । जैसे गमलों में पानी देना, बगीचे को बनाना अर्थात् रेणु जिन कार्यों को बडे चाव से करती थी खन्ना उसे उतनी ही रुचि के साथ करने लगता है । इससे

उसे एक आत्मीय सुख भी मिलता है । हो सकता है खन्ना को इसे कुछ मानसिक तुष्टि मिलती हो । खन्ना के अंतर्मन में एक पश्चाताप की भावना है । उसे महसूस होता है कि उसने पत्नी को उतना प्यार नहीं किया जितना करना चाहिए था । इसमें खन्ना की भी कोई गलती नहीं । जीवन की व्यर्थता और आर्थिक जिम्मेदारियों में सभी पुरुष अपने कर्म के प्रति एक प्रकार की उपेक्षा भरी दृष्टिकोण रखते हैं ऐसे संदर्भ में समझदार स्त्रियाँ समझौता कर लेती हैं । लेकिन रेणु ऐसा नहीं करती और शायद इसी वज़ह से वेदना, व्यथा आदि के कारण असमय उसकी मृत्यु हो जाती है ।

आज समाज की सबसे प्रमुख समस्या सांप्रदायिकता है। सांप्रदायिकता के नाम पर सिक्के उछालने में राजनैतिक दलों का ज़बरदस्त हाथ होता है। छोटी सी बात को लेकर माहौल को विकृत कर देते हैं । 'उपलब्धि' कहानी में 'चेहल्लुम' के दिन का चित्रण है । उस दिन शहर में कहीं से जुलूस निकल होता है । इसी बीच चेतन-प्राची का बेटा बबलू के हाथों से पानी का ग्लास नीचे गिर जाता है । पानी के छींटे जुलूस पर पड़ जाते हैं । जिससे पूरे जुलूस में खलबली मच जाती है। सबके बीच सवाल उठता है –
"पानी कहाँ से आया ? कौन नापाक पानी फेंक रहा है ? कौन काफिर मूत रहा है ?"[१७]
और परिणामस्वरुप तोड़फोड़, आगजनी जैसी विकराल स्थिति पूरे शहर में व्याप्त हो जाती है । चेतन की दुकान में आग लग जाती है । इसी बीच बबलू हँगामा में लापता हो जाता है । काफी खोजबीन के बाद बबलू को एक मुसलमान की कोठरी में सुरक्षित पाया जाता है । यहाँ लेखिका यह स्पष्ट करती है कि मानवीयता हर इन्सान में होती है चाहे वह मुसलमान हो या हिन्दू । मानवीयता को ज़हरीला बनानेवालों के पीछे उनका निजी स्वार्थ विद्यमान होता है । और इसी स्वार्थ के कारण मारकाट, तोड़फोड़, आगजनी की स्थितियाँ आये दिन व्याप्त हो रही हैं । यहाँ बबलू का एक मुसलमान के घर में सुरक्षित

रहना इस बात का उदाहरण है कि स्नेह, मानवता और ममता की भावना से ही सुशांति हासिल होती है ।

पुरुष वर्चस्ववादी समाज में स्त्री की सुनवाई नहीं होती । कोई भी स्त्री की समस्याओं को, स्त्री की परेशानियों को समझने की कोशिश नहीं करता । स्त्री शोषण की यह स्थिति बरसों पुरानी है । आज के उत्तराधुनिक युग में भी स्त्री की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं रखा है । अपनी अस्मिता को बनाये रखने में आज भी स्त्री संघर्षरत है। 'निर्मोही' कहानी में ममता कालिया ने एक मिथकीय वातावरण को लेकर वर्तमान की सामाजिक अवस्था की ओर इशारा किया है । इस कहानी में राजा सूरसेन परंपरागत पुरुष वर्ग का प्रतीक है जो पत्नी पर अपना पूर्ण आधिपत्य रखता है । उसकी दृष्टि में स्त्री का अर्थ दायराबद्ध होना है । इसमें सूरसेन परंपरागत रूढ़ मान्यताओं से ग्रस्त है । एक बार एक हादसा उसके जीवन की सारी अवस्था को परिवर्तित कर देता है । उसकी पत्नी फूलमती बेर तोड़ने बगीचे में गयी थी । बेर तोड़ते वक्त उसके हाथों में कांटा गड़ जाता है । वहाँ थोड़ी दूर पर मालिन का बेटा कन्हाई पूजा के लिए फूल तोड़ रहा था । रानी फूलमती की कराहने की आवाज़ सुनकर साथ ही उसके हाथ से खून की बूँदें देखकर वह रानी की सहायता करने के लिए दौड़ पड़ता है । वह अपने मुँह से खून चूस लेता है । यह दृश्य देखकर राजा सूरसेन की स्थिति जड़वत हो जाती है जैसे काटो तो खून नहीं । वह आग बबूला हो उठता है । वह पत्नी को राजभवन के कमरे में कैद कर देता है । रानी की इस दयनीय अवस्था से बेचैन होकर कन्हाई उसे उस कारागृह से मुक्त करता है । रानी भी स्वतंत्र होना चाहती है । वह कन्हाई के साथ निकल पड़ती है । यहाँ लेखिका एक जीवंत सत्य को ज़ाहिर करती है । स्त्री हो या पुरुष हर एक की अपनी अस्मिता होती है, अपना अस्तित्व होता है । कोई भी अपने अस्तित्व को पिंज़डाबद्ध करना

नहीं चाहता । यहाँ फूलमती भी इसी उद्देश्य को लेकर राज घराने के आलीशान वातावरण को छोड़कर कन्हाई के साथ कुटिया में रहना चाहती है । महलों में रहने से ज़्यादा खुशी उसे कुटिया में हासिल होती है ।वर्षों बाद राजा पत्नी को ढूँढ़ते ढूँढ़ते इधर उधर भटकते समय वह अपनी पत्नी को छोटी सी कुटिया में खुशहाली का जीवन व्यतीत करते हुए देखता है । जब कन्हाई से राजा पूछता है, एक आदर्श एवं स्नेही पति के तौर पर छाती ठोंककर वह कहता है, "पिरितिया खवाऊँगी, पिरितिया पिलाऊँगी। तुमने तो जाके पिरान निकारै, मैंने जामें वापस जान डारी, तो जे हुई मेरी परानपियारी । बच्चों को दिखाकर कहता है जे हमारी डाली का फूल हैं ।"[१८] ममता कालिया ने लोककथा के माध्यम से आजकल की पीड़ित का परिवर्तित स्वरुप प्रस्तुत किया है ।

३.१.५ पीढ़ियों का परिवर्तित स्वरूप प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में

मूल्यों का सही इस्तेमाल करना जीवन के लिए अनिवार्य है। मूल्यों में परिवर्तन और विरोध हमेशा ही होता रहता है । युगीन परिस्थितियों के अनुसार सामाजिक गतिविधियों में बदलाव स्वाभाविक है । 'समय' कहानी में ममता कालिया ने बताया है कि वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी के द्वारा विकसित कंप्यूटर, इन्टेरनेट, मोबाइल फोन आदि का उपयोग ज़रूरत के अनुसार करें तो उसमें कोई बुराई नहीं है । हरेक मानव को भी समय के बदलाव के अनुसार स्वयं को बदलना पड़ेगा । इसमें अपने पति और बेटों से अलग रहनेवाली एक वृद्ध आंटी का चित्रण है । पास पड़ोस के बच्चे और औरतों ने आधुनिक युग की सूचना प्रौद्योगिकी की सुविधा के बारे में उसे समझाया । दरअसल उसकी महत्ता वह जानती है लेकिन उसे पूर्णरूप से आत्मसात करने को वह हिचकती है । लेकिन आज के युवा लोग ऐसी सुविधाओं के बीच पड़े रहते हैं । मोबाइल की उपयोगिता पर एक समझदार औरत की तरह वह कहती है, "मैं तो कहूँ ऐसे लोगों को

शोकसभा में आना ही नहीं चाहिए जो एक मिनट अपनी दुनिया से फुसर्त नहीं निकाल सकते ।"[१९] बच्चे सभी इक्कीसवीं सदी के महत्व के बारे में आंटी को बताते है लेकिन आंटी घर के फोन का भी इस्तेमाल नहीं करती है मोबाइल की बात तो दूर रही । मोबाइल की दुरुपयोगिता की ओर भी लेखिका ने इस कहानी में स्पष्ट किया है । जैसे किसी की मृत्यु के समय भी सभी मोबाइल की घंटी में उलझे रहते हैं । दाहकर्म के समय भी मोबाइल में व्यस्त रहते हैं । यह आज की बढ़ती हुई बेचैनी का नतीजा है जिसे लेखिका ने व्यक्त किया है । यहाँ आधुनिक पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के लोगों की वैचारिक अंतर की अभिव्यक्ति मिलती है । आंटी इक्कीसवीं सदी के प्रौद्योगिक विकास को स्वीकारना नहीं चाहती । वह अपनी पुरानी परंपरा में ही बनी रहना चाहती है । आज की स्थिति भी ऐसी है । यहाँ हम 'Generation Gap' को भी देख सकते हैं । पुरानी पीढ़ी के लोग Internet, chatting, Face book आदि से अवगत नहीं है । अवगत होना भी नहीं चाहते । नई चीज़ों को आत्मसात करने में एक हिचक की भावना होती है वह आंटी में भी है ।

३.२ पारिवारिक संबन्धों की कहानियों में मूल्य चित्रण

मानव जीवन में परिवार का अपना एक अलग ही महत्व है । परिवार के बिना मानव जीवन का अस्तित्व निरर्थक है । क्योंकि आज के टूटते-बिखरते परिवेश में परिवार का उत्तरदायित्व अधिक बढ़ रहा है । पुराने ज़माने में परिवार का स्वरूप अत्यंत सहज, सरल एवं सुन्दर था । लेकिन आज समय बदल गया है । समय के परिवर्तन के साथ-साथ परिवार में पारस्परिक आत्मीय रिश्तों में , सामाजिक मान्यताओं में परिवर्तन दिखाई देने लगा है । आधुनिक समाज में पाश्चात्य सभ्यता, प्रभाव तथा व्यक्ति स्वतंत्रता के कारण परिवारों का विघटित होना एक प्रमुख समस्या है जिसके अनेक दुष्परिणाम देखे

जा सकते हैं । परिवार के न होने से व्यक्ति अकेला होकर विभिन्न मानसिक तनावों को समाज में फैलाता है । जीवन में परस्पर झगडे, अहम, स्वार्थ आदि के कारण दरारें पड़ रहे हैं । ममता कालिया ने अपनी कहानियों में बदलते हुए संबन्धों के टूँटते मूल्यों को बारीकी से अभिव्यक्ति दी है ।

३.२.१ संयुक्त परिवार में सास-ससुर-बहू के संबन्धों में मूल्य चित्रण

आज सारा संसार विकास के चतुरदिक् दिशा पर स्थित है । विकास के साथ-साथ जीवन का रफतार भी बढ़ रहा है । इस तेज़ रफ्तार में विभिन्न कारणों से मूल्यों का क्षरण होते जा रहा है। पारिवारिक मूल्यों के विघटन का आघात संयुक्त परिवार पर पड़ा है । परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार विघटित होने लगा है । इसका प्रमुख कारण आधुनिकता, व्यक्तिवादिता, औद्योगीकरण, नगरीकरण आदि है । आज पारिवारिक संबन्ध में एक प्रकार की शिथिलता आ गई है । अपवाद के रूप में कुछ परिवारों में संबन्धों की दृढ़ता आज भी है । इसका ज्वलन्त उदाहरण ममता कालिया की कहानी 'इक्कीसवीं सदी' में देख सकते हैं । इसकी नायिका रेखा परिवार के आपसी संबन्धों के महत्व जानती है । उसे पता है कि अपने परिवार में मूल्यों को संभाल कर रखना है । "ससुराल के स्तर पर रेखा को कोई कष्ट नहीं था, चारों तरफ फैली मूल्यहीनता के बीच भी उसके परिवार में कुछ मूलभूत मूल्य सुरक्षित रखे हुए थे, परिवार के कीमती जेवरों की तरह । यह बात सबके अंदर कूट-कूटकर भरी हुई थी कि सारी समस्याओं के बीच भी रिश्तों को यथायोग्य आदर और स्नेह मिलता रहना चाहिए । एक आदर्श औसत परिवार था वह जो संयुक्त होते हुए भी हर सदस्य की आज़ादी की कद्र करता था ।"[२०] रेखा के लिए ससुराल अपना घर समान है । आज जैसे घर, बाहर वातावरण असुरक्षित है एक खौफभरे वातावरण में स्त्रियाँ जीने के लिए विवश हो जाती हैं । ऐसे संदर्भ में रेखा अपने

संयुक्त परिवार में चैन का सांस लेती है । जब परिवार की ओर से रेखा को इतना आदर मिलता है तो वह भी सास ससुर के प्रति आदर के साथ समर्पित होती है । क्योंकि यह एक 'given take policy' है । परिवार में होनेवाले सभी अनबन टकराव एक दूसरे को समझे बगैर दोषारोपण करने के कारण है । परस्पर स्नेह और आत्मीयता से रिश्तों का आधार दृढ़ बना रखता है । रेखा जीवन के इस रणनीति से परिचित है और इसी के द्वारा वह पूरे परिवार में शांति का माहौल बनाये रखती है । रेखा का ससुराल परंपरागत होते हुए भी नवीनता को लिये हुए हैं । ममता कालिया ने मूल्यों से संपन्न एक संयुक्त परिवार का चित्रण किया है ।

दुनिया में सब जहाँ अनेकानेक परिवर्तन आज के आधुनिक युग में हुए हैं । परिवर्तित हो रहे नये माहौल में आज भी ऐसे लोग हैं जो अपने निजी दायरे में बन्द होकर जीने को विवश हैं । 'खानपान' कहानी में लेखिका ने इन मुद्दों को उकेरा है । 'खानपान' की सास परंपरागत रुढ़ियों से जकड़ी हुई है । 'इक्कीसवीं सदी' कहानी की सास से भिन्न दृष्टिकोण है 'खानपान' की सास का । 'खानपान' की बहू सास के आतंक से पीड़ित है । स्वतंत्र रुप से कुछ भोजन बनाना उसके लिए असंभव है । यहाँ सास बिल्कुल परंपरागत है । हमारे समाज में, हमारे परिवारों में सास-बहू का रिश्ता ही कुछ ऐसा है जिसे सभी शंका की दृष्टि से देखते हैं । सास प्रतीक है द्वन्द्व, शोषण और अत्याचार का । आज के आधुनिक युग में स्थितियाँ कुछ बदल गयी हैं । लेकिन पूर्ण रुप से बदलाव नहीं आया है । परिवारों में सास कभी बदलने को तैयार नहीं है । दूसरी ओर ससुर हमेशा हर तरह के द्वन्द्वों से रहित रहते हैं । परिवारों में ऐसे सास बहू के संघर्षों से ससुर अछूता रहता है । पारिवारिक उलझनें सास-बहू के इर्दगिर्द ही घूमती रहती हैं । यह बरसों पुरानी एक अवस्था है । हालांकि इस अवस्था में आधुनिक शिक्षित सासें

बदलाव तो ला रही हैं लेकिन ये बदलाव मात्र आंशिक ही है । कभी-कभी सास के आततायी स्वरुप से पूरे परिवारवाले प्रभावित होते हैं । ससुर भी इसके सामने एक कमज़ोर इकाई बन जाता है । इस कहानी में ससुर का वक्तव्य एवं बर्ताव इसका जीवन्त मिसाल है । वह अपनी बहु से कहता है – "तुम क्यों बुरा मानती हो । वे हम लोगों के साथ भी ऐसा ही करती हैं । देखा नहीं हम खड़े से उनसे बात करते हैं, कभी उनके तख्त पर बैठ नहीं सकते ।"[२१] बहू का समर्थन करते हुए एक आदर्श ससुर की तरह वह अपनी पत्नी से कहता है - "तुम्हारी अपनी बहू है, उसके हाथ का खाने से तुम भ्रष्ट नहीं हो जाओगी ।"[२२]

सास-बहू के संघर्ष की दूसरी कहानी है 'बोलनेवाली औरत' । इस कहानी के कपिल की परिवर्तित सोच विचारणीय है । कभी कभी परिवार में यह देखा जाता है कि सास-बहू के उलझनों के बीच में बेटा फँसा रहता है । वह न माँ को छोड़ पाता है न पत्नी को । कुछ लोग बड़े तंत्रपूर्ण रीतियों से रिश्तों को निभाते हुए चले जाते हैं, और कुछ लोग पराजित हो जाते हैं । ऐसे संदर्भ में समस्यायें खड़ी हो जाती हैं । यहाँ कपिल माँ का प्यार भी चाहता है और पत्नी का स्नेह भी । ऐसे संदर्भ में वह माँ से कहता है, "मैं उसे समझा दूँगा । आगे से बहस न करेगी ।"[२३] और पत्नी से प्रेम के साथ कहता है, "मैं एक शांत और सुरुचिपूर्ण जीवन जीना चाहता हूँ ।"[२४] यहाँ कपिल की स्थिति आम परिवारों में देखी जा सकती है ।

यह तो सर्वविदित बात है कि अधिकांश बहू अपनी सास से कुछ दूरियाँ बनाई रखती हैं । लेकिन 'इरादा' कहानी की शांति एक भोली-भाली बहू है । तीन साल के बाद भी संतान सौभाग्य प्राप्त नहीं होता है । वह किसी का साथ चाहती है । क्योंकि अकेलेपन की भावना उसे सताने लगती है । अकेलेपन की अवस्था में कभी-कभार

आनेवाली सास के प्रति उसका बर्ताव बुरा नहीं है । क्योंकि कम से कम उसके पास कोई तो है । सास के साथ बातें करते करते शांति अपनी बीमार माँ की चर्चा करती है । "माँ न जाने क्यों तीन महीने से अम्मा की कोई चिट्ठी नहीं आई । मेरा मन बड़ा कच्चा कच्चा हो रहा है ।"[२५] शांति का माँ के प्रति प्रेम देखकर सास का असली रूप प्रकट होता है। यहाँ पर लेखिका ने परंपरागत मूल्यों को महत्व देनेवाले सास का चित्रण प्रस्तुत किया है । शांति की सास चाहती है कि शांति उसकी सेवा करे, उसके प्रति समर्पित हो । यह हमारे समाज की एक परंपरागत सोच है । ब्याह के बाद स्त्री का संबन्ध घर से कट ही जाता है । इसीलिए कहा जाता है लड़की पराया घर का धन है । पिता, माता, भाई, बहन आदि उसके लिए दूर के रिश्तेदार बन जाते हैं । पहली कोटि में आनेवाले हैं सास, ससुर, ननद, देवर आदि । यहाँ शांति की माँ के चिन्तन में भी यही मुद्दा उभर आता है।

वैज्ञानिक एवं पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से आधुनिक समाज विकास के ऊँचे शिखर पर है । इस युग में भी प्राचीन आदर्शों, मान्यताओं एवं रीतिरिवाज़ों पर अटल रहनेवाले संयुक्त परिवार में नयी नवेली शिक्षित बहू के ज़रिये मौजूद परिस्थितियों में परिवर्तन का संकेत ममता कालिया ने 'बाथ्रूम' कहानी में चित्रित किया है । परिवार की बड़ी बहुएँ चुपचाप सब सहती रहती है । यह भारतीय परिवार का दृश्य है । जहाँ स्त्रियाँ पुरुषों के सामने अपनी राय नहीं देती या फिर अपनी राय देने का अधिकार पुरुष वर्ग उसको देते नहीं । इस कहानी में शिक्षित बहू परिवार के जीर्ण मूल्यों को नकारने और परिवर्तित करने को तैयार होती है। जब छोटी बहू के पिता के बारे में बडे भाई कुछ कहते हैं तो वह जलती आँखों से कहती है, "मेरे फादर का नाम मत लीजिएगा, नहीं तो ठीक नहीं होगा ।"[२६] कभी-कभी संयुक्त परिवारों में नहाने धोने की कोई सुविधायें नहीं होती । वहाँ की औरतें अभावों को भी अपनी नियति मानकर सबकुछ झेलने को मज़बूर

होती है । इस कहानी में यही सत्य है । लेकिन नयी बहू घर के इस अभाव को झेलने को तैयार नहीं होती है । वह अपने पति से कहती है, "मैं खुले में बैठकर नहीं नहाऊँगी। आपकी इज्जत भी अजीब है जो गलत बातों को मानने से बनती है और न मानने से बिगड़ती है ।"[२७] उसके अन्दर स्त्री चेतना की, नई सोच की भावना उभरने लगती है, जब हम स्त्री-पुरुष की समानता की बात कहते हैं तो वहाँ गुलामी का प्रश्न उठता नहीं । लेकिन हमारे परिवारों में देखा जाता है कि स्त्रियाँ पुरुषों की गुलामी करती हैं । इस कहानी में बहुएँ रात्री का भोजन देने के लिए रात देर तक दुकान से आनेवाले पतियों का इन्तज़ार करती है । नयी बहू इस प्रणाली में आमूल परिवर्तन कर देती है । वह कहती है, "नौ बजे के बाद खाना चौके में अंगीठी के ऊपर रखा मिलेगा, अपने आप लेकर खा लें ।"[२८] दरअसल इस रीति से बडी बीवियों का थोड़ा हौसला बढ़ता है । उनको खूब सोने का मौका भी मिलता है । जब बड़े भाई कहते हैं, "इस नई बहू ने तो घर की औरतों को बिगाड़ दिया है, वह सामने बोलने लगी है ।"[२९] यहाँ हमारे परंपरागत सामाजिक व्यवस्था की ओर इशारा किया गया है । परंपरागत पुराने मूल्यों के अनुसार स्त्रियाँ गूँगी बनी रहती थी । गूँगापन ही उनका सौन्दर्य है ऐसा ही एक विश्वास था । जो प्रतिरोध करती है या अपना अधिकार के लिए आवाज़ उठाती है उसकी हर कहीं निन्दा ही होती है । नई बहू के प्रतिरोधी व्यक्तित्व को लेकर घर के पुरुष वर्ग चिन्तित हो जाते हैं । घर की 'गूँगी' स्त्रियाँ अब बोलने लग गयी हैं । नयी बहू स्त्री चेतना के प्रति जागरुक है । जहाँ आवाज़ बुलन्द करती है वहाँ आवाज़ उठाती है । इसका यह अर्थ नहीं है उसका चरित्र नकारात्मक है । संदर्भ के आने पर वह दूसरों की सेवा करना, उनकी सहायता करना, उनके प्रति समर्पित करना अपना दायित्व समझती है । एक बार मचली बहू के बीमार पड़ने पर नयी बहू पूरी जिम्मेदारी के साथ अपना कर्म करती है । यहाँ ममता कालिया ने

स्त्री में आये परिवर्तन को उजागर किया है । मुख्यधारा में प्रभावित स्त्रियाँ जीवन को व्यावहारिक दृष्टि से देखती है फिर मानवता के महत्व देनेवाली इस कहानी की नयी बहू इसका श्रेष्ठ उदाहरण है ।

३.२.२ पारिवारिक माहौल में पीढ़ियों में आये परिवर्तित नये मूल्य

'सेवा' कहानी नये मूल्यों को उजागर करने लायक कहानी है । इक्कीसवीं सदी का समाज पाश्चात्य मूल्यों से प्रभावित है । परिवार में माँ-बाप एक धुरी पर है तो बच्चे दूसरी धुरी पर । माँ-बाप अपनी जवानी में पूरी जिम्मेदारियों के साथ अपने बच्चों को पालते हैं, बड़ा करते हैं, उनको एक ज़िन्दगी प्रदान करते हैं । लेकिन बच्चों की ओर से अपने माता-पिता के प्रति कोई स्नेह भाव नहीं देख सकते हैं । यह आज भी एक विड़ंबना है या कहें तो पाश्चात्य संस्कृति की नकल हो सकती है । 'सेवा' कहानी की माँ रोगग्रस्त होकर अस्पताल में पडी है । बच्चों को इस संदेश ठीक वक्त पहुँचाया भी जाता है । विवरण सुनकर विवाहित बेटियाँ भी दौड़ भागकर माँ के पास आ जाती है । और दो दिन ठहरने के बाद लौट जाती है क्योंकि दोनों नौकरीपेशा है । उनकी अपनी भी जिम्मेदारियाँ हैं । उन जिम्मेदारियों के बीच भी समय निकालकर अपनी रोगग्रस्त माँ के पास आना अपने आप में बडी बात है । नौजवान विवाहित बेटा और बहू भी अपने मातृस्नेह व्यक्त करने को जल्दी आ जाते हैं । इस अधुनातन युग में जीनेवाले बच्चों के मन में कुछ स्वतंत्र चिन्तन है । कोमा पर पड़े माँ के साथ सारा समय बैठने की क्या ज़रुरत है, एक नर्स तो काफी है । बहू कहती है – "पापा फिर तो आप घर जाकर रिलेक्स भी कर सकते हैं ।"[३०] आज की तेज़ रफतार में समय किसी के पास नहीं है । सभी समय के मोहताज में है । इस कहानी में समय को अमूल्य माना है । नयी पीढ़ी के पास समय की कमी के साथ सेवा करने का मनोभाव भी नहीं है। माँ बाप के पास रहने के लिए उनके

पास समय नहीं है दूसरी ओर पुरानी पीढ़ी के पास समय एवं सेवा करने का मन है । समय को कैसे काटे इसे लेकर वे बेचैन हैं विशेषकर रोगग्रस्त माता पिताओं के लिए समय एक पहाड़ के समान है । यहाँ बच्चों के व्यवहार से आहत, अकेलेपन के शिकार से व्यथित नरोत्तम सहाय को अपनी पत्नी के प्रति अपना सारा समय व्यतीत करना पड़ता है । वह स्नेह, करुणा, त्याग, वात्सल्य आदि पत्नी के सामने समर्पित करता है । वह कहता है, "सुना तुमने, किसी को फुर्सत नहीं है तुम्हारे लिए । तुम्हारे बाद मेरा क्या होगा । मैंने अभी से देख लिया है । तुम जल्दी से ठीक हो जाओ । देखो, आँखें खोलो । तुम्हारे सिवा मेरा और है ही कौन ।"[३१]

पीढ़ियों का संघर्ष आज भी देखने को मिलता है । आधुनिक पीढ़ी अपने इच्छानुसार स्वतंत्रता पूर्वक जीना चाहती है । नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी से बिल्कुल भिन्न है । 'कवि मोहन' कहानी में कवि मोहन अपने व्यक्तित्व और अस्तित्व को भली भाँति पहचानता है । वह अपने पिता के इच्छानुसार परंपरागत घरेलू धन्धे अपनाकर जीना नहीं चाहता । मोहन आधुनिक विचारों से लैस व्यक्ति है । वह पुरानी पीढ़ी की दकियानूसी और परंपरागत मान्यताओं, आचार-विचार, रीति रिवाज़ और विश्वासों को अपने जीवन में स्वीकार करके आगे चलना नहीं चाहता है । अपने प्राध्यापक से उसे कविता लिखने की जो प्रेरणा मिली उसके माध्यम से समाज में व्याप्त गन्दगी को वह दूर करना चाहता है । जब यूनिवेर्सिटी की पढ़ाई समाप्त हो जाती है तब पूर्णत: कविता को आत्मसात कर लेता है । वह पिता से कहता है - "चार अक्षर पढ़ लूँगा तो आपके काम आऊँगा, यह क्यों नहीं सोचते आप ।"[३२] इसमें ममता कालिया ने पिता के अधीन रहने पर भी अपने बेटे की उन्नति की ही चिन्ता करनेवाली एक ममतामयी माँ का चित्रण भी किया है । उसके उज्ज्वल भविष्य की कामना करती है । अपने पुत्र की पढ़ाई ज़ारी रखने की प्रबल इच्छा उसके

मन में है । एक आम नारी होने के बावजूद भी माँ प्रगति की ओर सोचती है । परंपरागत रीति रिवाज़ से अपने पुत्र को स्वतंत्र करना चाहती है । यहाँ पिता चाहते हैं कि बेटा उसकी परंपरा को आगे बढ़ाकर परंपरागत धन्धे का नैसर्गिक मूल्य बनाये रखें लेकिन नयी पीढ़ी का बेटा पिता की अवज्ञा करता है । इसी तरह के पीढ़ी संघर्ष के कारण श्रेष्ठ मूल्य समाज से नकारे जायेंगे ।

मानवता के नष्ट होने वाले आज के विकासशील युग में स्नेह, वात्सल्य, करुणा, आत्मसमर्पण, त्याग जैसे मानवीय मूल्यों को अत्मसात् कर जीनेवाले दंपति विरले ही होते हैं। 'एक दिन अचानक' कहानी में एक बेटा दुर्घटना का शिकार होता है । उसकी स्थिति कोमा में चली जाती है । ऐसे संदर्भ में बेटे की दयनीय अवस्था पर पीड़ित होकर उसके माँ-बाप उसकी सेवा करते हैं । आशा की हल्की किरण भी नज़र नहीं आती बावजूद इसके भगवान के प्रति समर्पित होकर माता-पिता अपने आप को बेटे की सेवा में अर्पित कर देते हैं । वैज्ञानिक प्रगति के इस युग में अनेक सुविधायें उपलब्ध हैं । आज तो अर्थ सब का मूलाधार है । पैसे के बल पर अस्पताल में दाखिला कर या होमनर्स के द्वारा मरीज़ की सेवा हो सकती है साथ ही परिवारवाले निश्चिन्त रहते हैं । यही स्थिति आज समाज में देखी जा रही है । यह दरअसल पाश्चात्य संस्कृति की नकल है । भारतीय संस्कृति की पहचान है स्नेह, त्याग, समर्पण, करुणा आदि । लेकिन विकास के इस युग में ये सारे मूल्य शिथिल हो गये हैं । आज का इन्सान अपने श्रेष्ठ परंपरागत मूल्यों को छोड़कर पाश्चात्य संस्कृति के आयातित मूल्यों को अपनाकर जो खतरा मोल रहे हैं जिससे जीवन और भी बेचैन हो जाता है । लेकिन इस कहानी में लेखिका परंपरागत मूल्यों को महत्व देनेवाले माँ-बाप का चित्रण करती है । पिता जयकृष्ण अपनी रोज़मर्या के ज़िन्दगी से थककर दुखी होकर इस तरह करने को मज़बूर हो जाता है । "भगवान उठा ले मुझे, अब

और नहीं झेला जाता ।"[३३] लेकिन जयकृष्ण की पत्नी प्रभावती बहुत ही व्यावहारिक है । उसके व्यावहारिक चिन्तन कहानी में एक नया सोच पैदा करती है जैसे वह कहती है, "सोच समझकर बोला करो । तुम्हें या मुझे कुछ हो गया तो बब्बू किसके सहारे जियेगा ? क्या पता यह कल उठ बैठे, साँस से आस है, आस से सांस ।"[३४] जब जयकृष्ण अवकाश प्राप्त होता है तो दफ्तरवाले स्मृतिचिह्न के रूप में 'व्हीलचेयर' प्रदान करते हैं । हमारे समाज में ऐसे लोग भी है जो सन्दर्भोचित सोचते नहीं । इस कहानी में व्हीलचेयर देना इसका जीवन्त उदाहरण है । हालांकि व्हीलचेयर जयकृष्ण के बच्चे के लिए अनिवार्य है, लेकिन स्मृतिचिह्न के रूप में यह देना बुद्धिशून्य कार्य है । यह किसी को अपमानित करने के समान है । इसी वजह से जयकृष्ण कहता है, "आपकी सहृदयता मेरी संचित निधि रहेगी, यह उपहार आप फुर्सत से कभी भिजवा दें । परिवार का बोझ सहने का मैं अभ्यस्त हो चला हूँ । ईश्वर से प्रार्थना है कि मेरे जैसा कठिन भविष्य किसी को न मिले ।"[३५] यहाँ लेखिका ने बहुत ही हृदयविदारक ढंग से संदर्भोचित चित्रण किया है । समाज से मूल्यों के नष्ट होने के कारण आज कोई किसी की भावनाओं को परखने की कोशिश नहीं करता । व्हीलचेयर देने से जयकृष्ण कितना दुखी होगा इसके बारे दफ्तरवाले सोचते नहीं । अंत में जब पत्नी कहती है -"चलो थोड़ी देर आराम कर लो। बहुत काम कर लिया जीवन भर।"[३६] इसमें एक प्रकार की प्रतीकात्मकता है । जीवन भर जिम्मेदारियों को निभाकर यात्रा करनेवाले जयकृष्ण के लिए अवकाश प्राप्ति एक राहत का समय है । सरकार ने भी इसीलिए कर्मचारियों को अवकाश की यह स्थिति प्रदान की है ताकि वह आगे का समय विश्राम कर ले । मूल्यों में होनेवाले बदलाव की ओर इस कहानी में संकेत है ।

आजकल बेरोज़गारी की समस्या ज्वलंत होने पर भी नौकरीपेशा लोगों की कमी नहीं है । लेकिन आत्मविश्वास और आत्मसमर्पण से काम करनेवाले विरले ही है । बल्कि ममता कालिया की 'जाँच अभी ज़ारी है' की अपर्णा ऐसी धारणाओं को ठुकराती है । उसे जगह जगह पर लिखे नारे भी अच्छे और अर्थपूर्ण लगने लगते है । "परिश्रम ही देश को महान बनाता है । अनुशासन आज की ज़रुरत है । कड़ी मेहनत, पक्का इरादा, दूर-दृष्टि ।"[३७] परिश्रम के महत्व को ज़्यादा सार्थक समझनेवाली युवती बैंक की नौकरी को अन्य नौकरियों से बेहत्तर मानती है । अपर्णा का सेवाभाव, नौकरी के प्रति उसका दायित्व और उसके भोले-भाले व्यक्तित्व को देखकर वहाँ की अन्य अफसर स्त्रियाँ उसे हमेशा सचेत करती हैं कि "हमेशा सतर्क रहे, संभलकर रहना अपर्णा । ये शादीशुदा मर्द बड़े खतरनाक होते हैं । पहले आतुर बनेंगे फिर कातर और फिर शातिर एकदम पन्नालाल है सब के सब ।"[३८] ये स्त्रियाँ अपने सहकर्मी स्त्री के प्रति चिन्तित हैं । वर्तमान की अवस्थाओं को जानने की वजह से वे नहीं चाहती अपर्णा वर्तमान के मोहजाल में फँसकर दिग्भ्रमित हो जाय । इसलिए वे अपर्णा को जागृत करती हैं ऐसा माहौल सब दफ्तरों में नहीं होता ।

समय के अनुरुप माता-पिता को भी अपनी धारणाओं और व्यवहार में परिवर्तन करना चाहिए । लेकिन देखा जाता है कि माता-पिता अपने दकियानूसी विचार से मुक्त नहीं होते । लेकिन 'बच्चा' कहानी में माता-पिता अपने बच्चे के महत्व को बढ़ा-चढ़ा कर दिखाते हैं । व्यवस्थित ढंग से काम करने में असमर्थ बच्चा दसवीं में अव्वल दर्जे में उत्तीर्ण हो जाता है । माता-पिता उसे अपने बडे बेटे की तरह बाहर भेजकर पढ़ाना चाहते हैं लेकिन बच्चा नहीं चाहता । वह हमेशा अपने परिवार से जुड़े रहना चाहता है । वह कहता है, "मैं तुम लोगों की रक्षा करूँगा। तुम्हें बुरी आदतों से बचाऊँगा और सही

रास्ता दिखाऊँगा ।"[३९] आज के युग में ऐसे बच्चों को देखना तो दूर की बात है । माता-पिता किसी पार्टी में जाने को तैयार होते हैं तब बेटा उनको पार्टी में जाने से रोकता है । उसके अनुसार पार्टियों में जाने से समय निकल जाता है, सोहबत भी खराब हो जाता है। बच्चा आज के आधुनिक वैज्ञानिक समाज के गतिविधियों से परिचित है । पार्टियों में होनेवाले अनैतिक संदर्भों की वह अवहेलना करता है । यहाँ लेखिका ने नयी पीढ़ी के व्यावहारिक सोच रखने वाले लड़कों को सराहा है । सोलह साल की नन्हीं सी उम्र में बच्चा बहुत ही गंभीर विचारों को प्रकट करता है । कभी-कभी परिवारों में माँ-बाप ही बच्चों को बिगाडने में उतावले होते हैं । यहाँ वही स्थिति है । लेकिन इस कहानी का बच्चा बहुत ही होनहार है । समाज की विश्रृंखल स्थितियों को जानते हुए उसे दूर रहना ही बेहत्तर समझता है । एक संदर्भ में माँ से कहता है, "मैं तुम जैसा या पापा जैसा नहीं बनूँगा । आप में जीवन दर्शन का अभाव है ।"[४०] यहाँ नयी पीढ़ी का पुरानी पीढ़ी को एक संदेश है । नयी पीढ़ी के बच्चे में सैद्धान्तिक ज्ञान कम और व्यावहारिक ज्ञान ज़्यादा होते हैं । जीवन को किस दिशा की ओर कैसे ले जाते वे अच्छी तरह जानते हैं । कभी कभी बच्चे माता-पिता को दिशा निर्देश देते हुए नज़र आते हैं। ममता कालिया ने आज के परिवर्तित नयी पीढ़ी की नयी अवस्था को इस कहानी में बताया है ।

'उड़ान' कहानी में आधुनिक समाज के परिवर्तित मूल्य और वर्तमान जीवन की बदलती संवेदनाओं का चित्रण है । इस कहानी में नयी पीढ़ी का एक लड़का साधारण माहौल में पढ़ लिखकर बड़े पद पर आसीन होता है । जीवन में प्रगति हासिल करने के साथ मानवीय संबन्ध और व्यवहार में भी बदलाव आ जाता है । यह एक आम बात है । साही शिक्षित है । दरअसल शिक्षा का उद्देश्य मानवीयता, मूल्य, संस्कार आदि को बनाये रखना है । आज के इस वैज्ञानिक युग में सब के मन में एक बाज़ारी दृष्टिकोण है । यहाँ

साही भी मल्टीनेशलन कंपनियों के प्रति आकर्षित होता है । उसके मन में अनेक भावनायें और स्वप्न भी है । वह तत्परता से व्यापार प्रबन्धन की पढ़ाई पूरी करता है और नामी कंपनी में उसकी नियुक्ति भी मिल हो जाती है । जल्दी जल्दी पदोन्नती और वेतन वृध्दि भी होती है। छुट्टी के दिन अपने घर आते ही वापस जाने की चिन्ता साही और उसकी पत्नी चम्मी में होती है । अब साही को ग्रामीण वातावरण से भी प्रिय शहरीय वातावरण है । उसका दृष्टिकोण बिलकुल व्यावहारिक है । डॉ. मीना खरात के अनुसार, “आज व्यक्ति ‘कैरियरिज्जम’ को अधिक महत्व देता है । यह उत्तर आधुनिक यथार्थ है । बाकी सारी बातें ‘कैरियर’ के बाद सोची जा सकती है । अत: कुछ बनने के लिए मानवीय संबन्ध को तिलांजली देना व्यक्ति की नियति बनती है ।”[४१] यहाँ का साही भी अपने कैरियर में सबसे ऊपर उड़ना चाहता है । वह माँ से कहता है – “मेरे सामने आकाश का विस्तार हो और ढेर सारी डोर । फिर मेरी उड़ान देखना ।”[४२] आज के आधुनिक युवक का एकमात्र लक्ष्य अर्थ और उन्नति है । परंपरागत मूल्य और मानवीय संबन्धों में आजकल परिवर्तन दृष्टिगत होता है । वह पत्नी से कहता है कि अब तो छुट्टी में घर नहीं आयेंगे। पापा, मम्मी बहस करके मुझे उलझा देते हैं । यहाँ परिवर्तित मानवीय संवेदना और व्यवहारों का खुला चित्रण है । आधुनिक समाज में सूचना प्रौद्योगिकी, कंप्यूटर क्रांति, इन्टेरनेट, विश्व व्यापार व्यवस्था और प्रबन्धन कौशल ने रोज़गार के अवसरों पर जितनी वृध्दि की है प्रतियोगितायें भी उतनी ही कठिन होती जा रही है । उसमें सबसे आगे बढ़ने में समर्थ नौजवान इतने तल्लीन है इसलिए मानवीय संबन्ध के निर्वाह केलिए उनके पास समय ही नहीं होता है । बहुराष्ट्रीय कंपनियों में तकनीकी या व्यापार प्रबन्धन कार्यों से जुड़े व्यक्तियों की अपनी अनेक तरह की विवशताओं में मानवीय संबन्ध शिथिल होते जा रहे हैं । ‘उड़ान’ का ‘साही’ इसका उत्तम मिसाल है । ममता कालिया बदलते परिवेश

में परिवर्तित जीवन मूल्यों की विकृत स्थिति का अवबोध इसके द्वारा प्रस्तुत करती है । 'उड़ान' के अंत में साही अपने पापा से घर से विदा लेते हुए कहता है – "पापा आपके ज़माने में ईमानदारी बहुत बड़ा गुण माना जाता था, मेरे ज़माने में समझदारी इससे बड़ा गुण है । और तो और वफादारी, ईमानदारी अब इन्सानों की नहीं, कुत्तों की खासियत है और मैं किसी कंपनी का वफादार कुत्ता कहलाना कभी पसंद नहीं करूँगा ।"[४३] इन वाक्यों से यह समझा जाता है कि उत्तराधुनिक समाज में ईमानदारी नहीं समझदारी का अधिक मूल्य है । यह समझदारी अपने स्वार्थ और सुख-सुविधाओं के बरकरार रखने की मतलबी मनोभाव के अलावा और कुछ नहीं है । यहाँ ममता कालिया आधुनिक युग के नयी पीढ़ी की परिवर्तित सोच को उजागर करती है ।

३.२.३ नई पीढ़ी की लड़कियों के नये मिसाल

'तोहमत' ममता कालिया की एक श्रेष्ठ कहानी है । इसमें सुधा और आशा नामक दो छात्राओं के माध्यम से आधुनिक समाज में स्त्रियों की अवस्था को चित्रित करने का प्रयास करती है । हमारा वर्तमान समाज वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी का है । सूचना प्रौद्योगिकी के इस ज़माने में भी लड़कियों और स्त्रियों के प्रति हमारे समाज का दृष्टिकोण सामन्तवादी एवं परंपरागत है । सुधा और आशा कॉलेज में पढ़ती है । दोनों का संबन्ध गहरा है । कॉलेज के सारे प्रोफेसर उनकी दोस्ती को देखकर उनकी प्रशंसा करते हैं । कॉलेज का वातावरण उनमें अत्यधिक आत्मविश्वास भर देता है । वे इतने सक्षम और ताकतवार हो जाती हैं कि कॉलेज के लडकों को प्राय: उनपर आवाज़ उठाने या ठिठोली करने की हिम्मत नहीं होती । अन्य लड़कियों के सामने जो बुरी तरह पेश आते हैं, मेमने से इनके सामने शांत निकलते हैं । एक दिन शाम को बातें करते करते न जाने वे बहुत

दूर निकल जाती हैं । आशा को आगे जाने की तनिक भी इच्छा नहीं होती । लेकिन सुधा कुछ दूर जाकर वापस आना चाहती है । सुनसान जगहों में जाते वक्त उन्होंने एक भयानक चेहरे को देखा । नितान्त, निर्वस्त्र तांत्रिक सा लगनेवाला एक साधू चिड़चिड़ाहट से उन्हें घूर रहा था । लड़कियों का साहस एकदम थम जाता है । वे भयचित्त होकर भागने लगती हैं । साधू भी उनके पीछे आता है । फिर वह पीछे भागना छोड़कर ज़ोर से चिल्लाता है - "प्राणों की चिन्ता है तो भाग जाओ दुष्टाओ, ख़बरदार कभी इस क्षेत्र में फिर प्रवेश न किया ।"[४४] वे एक तरह गिरती पड़ती घर पहुँच जाती हैं । सात बजे तक घरवाले निश्चिन्त रहते हैं बाद में चिन्ता होने लगती है । फिर दोनों घरवाले एक दूसरे पर दोषारोपण करने लगते है । फिर उनकी चिन्ता खीझ में बदल जाती हैं । घर वापस आयी लड़कियों के भयचकित चेहरे, अस्तव्यस्त कपड़े आदि को देखकर आशा की माँ चीख मारकर कहती है, हाय, हाय यह तुझे क्या हो गया ? सुधा डर, आतंक और आक्रोश से कांपती हुई कहती है कि चाचाजी आपकी इज्जत धूल में नहीं मिली है । हमारे साथ कुछ भी नहीं हुआ है । पिता कहते हैं, जो हो गया सो हो गया ।

ममता कालिया ने इस कहानी के माध्यम से आधुनिक समाज की स्वतंत्र चेता लड़कियों के वैचारिक खुलेपन एवं साहसी व्यक्तित्व को दिखाने का सफल प्रयास किया है । जैसे वेदप्रकाश अमिताभ ने सूचित किया है, "नारी सम्बन्धी मूल्य किस तरह आज भी बदलने का कोई प्रमाण नहीं देते । इसकी झलक तोहमत कहानी में है । फटेहाल, बिखरे बाल और पसीने से नहाये चेहरे देखकर अपनी लड़की के साथ कुछ गलत घटित हो जाने का निश्चय मध्यवर्गीय मानसिकता को हिला देता है और आगे न पढ़ाने की घोषणा हो जाती है । लेकिन कहानी का अंत गवाही देता है कि लड़कियों में इस तरह की स्थितियों से जूझने की हिम्मत पैदा हो गयी है ।"[४५] वास्तव में आज की लड़कियाँ

किसी भी मुसीबत के सामने चुपचाप खड़ी नहीं रहती है । उनके विरुद्ध अपनी खुली प्रतिक्रिया व्यक्त करने में वे सक्षम हैं । ममता कालिया इन लड़कियों के माध्यम से यह साबित करने की कोशिश कर रही है कि स्त्री को अपना रास्ता खुद तय करना है । जब सुधा को कॉलेज न जाने की आज्ञा पिताजी देते है लेकिन वह मानती नहीं । अपने को छेड़नेवाले लड़कों पर भी दोनों लड़कियाँ बुरी तरह पेश आती है । लड़कियों की खुली सफाई के बावजूद घरवाले यह मानने के लिए तैयार नहीं है कि वे पाक् हैं जो भी हो लड़कियाँ सभी विरोधी परिस्थितियों को जीतने में काबिल हो रही है ।

आधुनिक मानव की यह विशेषता है कि वह छोटी छोटी बातों को लेकर बेचैन हो उठता है । इसका अपवाद है 'मुन्नी' कहानी की मुन्नी । मुन्नी एक छोटी सी लडकी है । इसके ज़रिये नारी अस्मिता को दिखाना लेखिका का उद्देश्य है । छोटी होने पर भी उसका आत्मविश्वास और आत्मधैर्य को देखकर हम दंग रह जाते हैं । बचपन में अनेक जानलेवा बीमारियों से लड़कर वह अपने अस्तित्व को बनाये रखती है । अपने अभावों को, कमियों को अनदेखा कर वह अपने अस्तित्व में विश्वास रखती है । यह सोचते हुए मुझमें शक्ति है, क्षमता है । अपनी बीमारियों को दूरकर वह बच्चों के साथ खेलना चाहती है । लेकिन बच्चे उसे बीमार मानकर खेल में शामिल नहीं करते । ऐसे में मुन्नी पीछे हटने को तैयार नहीं होती । "तुमसे भागा नहीं जाएगा । क्यों नहीं, यह देखो, मुन्नी उचक-उचक कर कंगारु की तरह दौड़ कर दिखाती । बच्चे फिर भी न मानते । तब मुन्नी उनके खेल के बीचोबीच धरना देकर बैठ जाती । नहीं उठेगी, नहीं उठेगी । हारकर बच्चे कहते, अच्छा बाबा उठो, तुम भी खेलो ।"[४६] वह खेल में भी तेज़ है । उसके व्यक्तित्व की खासियत यह है कि वह अन्याय बर्दाश्त नहीं करती । यह एक हद तक वह समझौता करती है । लेकिन जब स्थितियाँ सीमातीत हो जाती हैं तो वह विद्रोह करती है । एक

बार बस में लड़कियाँ मुन्नी को बैठने की जगह नहीं देती, दो-तीन दिन तक मुन्नी सहती रही लेकिन तीसरे रोज़ मुन्नी ने लड़कियों को ऐसे ज़ोर से चिकौटी काटी तो वे डर के मारे मुन्नी को जगह देने को तैयार हो जाती हैं । इस घटना के बाद लड़कियों ने मुन्नी से टक्कर लेने की कोशिश नहीं की । मुन्नी के ऐसे दबंग व्यक्तित्व को देखकर स्कूल की मदर उसे कहती है, "इतना जंगली और बेशर्म व्यवहार ओ गॉड ! इससे पता चलता है कि यह किस परिवार से आयी है । शो मी योर हैंड ।"[४७] इस पर मुन्नी आग बबूला हो उठती और वह मदर से कहती है, "मदर आप मेरे परिवार को कोस रही हैं, इन लड़कियों के परिवारों को भी देखें । क्यों, क्या इनके माँ-बाप यही सिखाते हैं कि दूसरी लड़कियों को अपने से नीचा समझो, उनकी हँसी उठाओ । मैं माफी नहीं माँगूंगी । मदर ने दाँत पीसकर कहा, चुप रहो बदतमीज़ लड़की । तुम्हें माफी माँगनी पड़ेगी वरना तुम इस स्कूल में नहीं रहोगी । जो वाद प्रतिवाद के परिसमाप्ति के तौर पर मुन्नी आत्मधैर्य के साथ कहती है, मुझे ऐसे स्कूल में पढ़ना भी नहीं है जहाँ इतनी बेइनसाफी हो ।"[४८] यहाँ ममता कालिया ने इन्सान में बनते हुए व्यक्तित्व की सार्थकता को उजागर कर दिखाया है । मनोवैज्ञानिक के अनुसार व्यक्तित्व का विकास बचपन में ही होता है । बचपन में दृढ़, सबल व्यक्तित्व रखनेवाले बड़े होकर भी आत्मविश्वास से बने पूर्ण व्यक्ति बन जाते हैं और उन्हें अपने जीवन के समस्त मूल्यों का पता टिकाना भी होता है । मूल्यों को महत्व देते हुए नाइनसाफी का प्रतिरोध करने के लिए ये तैयार होते हैं ।

'मुन्नी' कहानी की तरह पारिवारिक माहौल पर आधारित और एक कहानी है 'नई दुनिया' । नारी चेतना या नारी के बदलते स्वरुप की ओर इसमें संकेत किया गया है । इसमें एक ऐसी अकेली लड़की पूर्वा की कहानी है जो अपने परिवारवालों से उपेक्षित है । परिवार के सभी लोग अत्यंत होशियार एवं समर्थ है । पूर्वा को साहित्य के प्रति रुचि

है । आज के आधुनिक युग में बच्चों की तुलना करना एक हद तक हानिकारक है । सबको यह जानना ज़रूरी है कि बच्चों का भी अपना अस्तित्व है । बच्चों को हमेशा 'पोसिटीव स्ट्रोक' की ज़रूरत है । इसके बदले 'नेगटीव आटिट्यूड' घरवालों से मिले तो क्या फल निकलेगा ? लेकिन आम बच्चों से अलग पूर्वा में जो आत्मविश्वास और आत्मशक्ति मौजूद है इसलिए वह खुद एक नयी दुनिया में अपने को परिवर्तित करना चाहती है । वह सृजन का आनन्द आत्मसात् कर लेती है । "परिवार ने उसमें दिलचस्पी लेनी खत्म कर दी, इतनी कि उसे खुद परिवार में दिलचस्पी लेनी बन्द करनी पड़ी । उसकी सलाह सुझाव, मर्जी नामर्जी का कोई महत्व न रहा । महज़ मेहमानों के नमस्ते करते कितने दिन परिवार में अपनी प्रासंगिकता बनाई रखी जा सकती थी । यही समय था जब कमरे में अकेले रहते रहते, पूर्वा ने कहानियाँ उपन्यास सैकडों की संख्या में पढ़ डाले । उसने पाया किताबों में एक निराली दुनिया कैद है । इनमें तरह तरह के लोग हैं तरह तरह के परिवेश । ज़िन्दगी का हर लमहा किसी न किसी शक्ल में इन किताबों में शामिल है मानो साहित्य ज़िन्दगी का ही एनसाइक्लोपीड़िया हो ।"[४९] अपनी इस नयी चेतना के बाद उसे लगता है कि वह अकेली नहीं, उसमें ताकत है । वह अपने को नीचा न दिखाकर सिर उठाकर संतुष्ट होकर चलने लगती है । वह स्वयं अपने अस्तित्व एवं व्यक्तिगत मूल्य को बनाये रखने की कोशिश करने लगती है । अपने व्यक्तित्व में बदलाव लाकर उसमें आत्मविश्वास भरकर ऊँचाईयों पर बैठे भाई बहनों के सामने गर्व से सिर ऊँचा करके खड़ी रहती है । यहाँ व्यक्ति के अंदर का आत्मविश्वास के परिणाम को दिखाया है । ऐसे एक जीवन्त सत्य को लेखिका ने उजागर कर दिया है । इन्सान दृढ़ चित्त होकर कर्म करे तो वह आसमान के तारे को भी तोड़ सकता है । इस कहानी की पूर्वा घरवाले की उपेक्षित पात्र थी । अपने ही घर में वह 'unwanted' सी थी। लेकिन जीवन में हौसला

रखकर वह आगे बढ़ने को तैयार हो जाती है ।

'नई दुनिया' की पूर्वा की तरह एक हद तक परिवारवालों से उपेक्षित पात्र है 'आपकी छोटी लडकी' की टुनिया । हमारे परिवारों में यह देखा जाता है कि अपने ही बच्चों के बीच इतरेतर तुलना होता है । यह ज़रूरी नहीं है कि परिवार के सभी सदस्य बहुत ही श्रेष्ठ एवं होशियार हो । ये अपनी अपनी क्षमता पर निर्भर होती हैं । 'आपकी छोटी लड़की' में दो ऐसी लड़कियाँ हैं जिनमें बड़ी लड़की की क्षमता और सौन्दर्यपरक दृष्टिकोण को माता-पिता प्रशंसा कर उसे सात आसमान में चढ़ा देते हैं तो दूसरी ओर छोटी लडकी की कमियों को, अभावों को छानकर देखते हैं । वास्तव में तेरह साल की टुनिया में अपनी उम्र से ज़्यादा परिपक्वता है । बडों की तरह घर संभालने में वह दक्ष है । घरवालों की उपेक्षा सहते हुए भी वह किसी से घृणा नहीं करती । ऐसे ही एक रोज़ टुनिया के पिताजी की साहित्यिक गोष्ठी में आये बडे साहित्यकार मुक्तिदूत जी ने दूसरों के सामने टुनिया की क्षमता का खुलासा किया । वे कहते हैं – "आपकी छोटी लड़की की आवाज़ बहुत अच्छी है, इसका रेडियो ऑडिशन क्यों नहीं करवाते ? आपकी छोटी लड़की की आवाज़ में एक संस्कार है। इसकी आवाज़ एक समूची संभावना है ।"[५०] अपनों द्वारा उपेक्षित टुनिया को इससे जीवन में एक प्रेरणा, एक नयी जीवन शक्ति मिलती है । ममता कालिया ने आधुनिक समाज के परिवर्तित नये मूल्यों को दर्शाते हुए यह बताया है कि उन नये मूल्यों से बच्चों के व्यक्तित्व किस तरह आहत होते हैं । सही मार्गनिर्देशन मिलने पर बच्चों में किस तरह नया उन्माद उमड़ पड़ता है टुनिया इसका जीवन्त उदाहरण है ।

माँ-बाप विहीन अविवाहति स्त्री की अवस्था आधुनिक समाज में अत्यंत संघर्षपूर्ण है । 'रिश्तों की बुनियाद' कहानी में प्रीति अपने भाई-भाभी के अधीन एक नौकरानी की हैसियत से रहती है । प्रीति की शादी के लिए सुरक्षित रखा गया सोना भी

भाई-भाभी हथिया लेते हैं । माँ की मृत्यु के पहले ही घर भी अपने नाम कर लेते है । यहाँ लेखिका ने स्वार्थपूर्ण सम्बन्धों की संकीर्ण मानसिकता को उजागर किया है । भारतीय परंपरा में भाई-बहन का संबंध पवित्र एवं दृढ़ होता है । लेकिन कुछ परिवारों में भाई विवाह के उपरान्त परिवर्तित हो जाता है । अपने माँ-बाप और भाई बहनों को वह अपने से दूर रखने की कोशिश करता है । इस कहानी में प्रीति को अपने भाई से यही अनुभव मिलता । प्रीती का कटु जीवनानुभव देखकर मुन्ना का ट्यूशन मास्टर उसकी ओर आकर्षित होता है । मानसिक तौर पर पीड़ित प्रीति के जीवन में परवेज़ रोशनदान बन जाता है । प्रीति परंपरा, रीति-रिवाज़ जैसे समाज के समस्त बन्धनों को तोड़कर परवेज़ के साथ परिवेशगत सच्चाई के अनुसार मूल्यों में परिवर्तन लाकर नई ज़िन्दगी शुरु करना चाहती है । परवेज़ के विचारों से प्रीति ने बहुत कुछ नया सीखा है । उसे अन्दाज़ है कि ज़िन्दगी का शक्ल बनाना बिगाड़ना खुद अपने हाथों से होता है । जाति बिरादरी इन्सान ने बनाया है, भगवान ने नहीं । रिश्तों की बुनियाद और कुछ नहीं मात्र मुहब्बत है । वह मौन धारण कर सब कुछ सहने के बदले अपने अस्तित्व को चेतना चाहती है । आज के उत्तराधुनिक युग में संत्रस्त जीवन बिताने पर भी प्रीति मुँह खोलकर बेधड़क घर के लोगों से कह देगी "मैं परवेज़ के साथ जा रही हूँ, एक नई ज़िन्दगी की शुरुआत करते । आप अगर कुछ दे सकते हैं तो सिर्फ आशीर्वाद दीजिए । आज इस लमहे से मैं एक बहुत बड़ा और पाक् बिरादरी का हिस्सा बनने जा रही हूँ । मुहब्बत की बिरादरी । इसमें न जात-पांत है, न ऊँच-नीच, न हिसाब-किताब, न महाजनी लेन-देन । मेरी ज़िन्दगी मेरी अपनी है, इसमें आप दखल मत कीजिए, मैं रुकूँगी नहीं, खुदा हाफिस ।"[५१] दरअसल एक प्रकार की व्यावहारिकता उसके व्यक्तित्व में आती है । आज के युग में ऐसा स्वतंत्र दृष्टिकोण लड़कियों में होना अनिवार्य है । अन्यथा जीवन काल की कोठरी में बन्द

हो जायेगा ।

'पीली लड़की' कहानी में नायिका अविवाहित है । वह एक कॉलेज में अंग्रेज़ी प्राध्यापिका है साथ ही सबकी चहेती भी है । वरिष्ठ आलोचक मधुरेश के अनुसार, "इसका अन्य पात्र सोना अपने सहपाठी से प्रेम विवाह के बावजूद घर में अकेली ऊबती रहती है । पति हिन्दी का प्रवक्ता है । सोना उसके प्रति पूरी तरह समर्पित और शांत है दरअसल एक भारतीय पत्नी की तरह । पति अपने वरिष्ठ प्रोफेसर की आनेवाली किताब का प्रूफ पढ़ता है । रीडर की बेटी की कच्ची हिन्दी पक्की करता है । वह दुनियादार किस्म का आदमी है और मानता है कि जीवन में तरक्की और विकास के लिए यह सब ज़रुरी है । वाचिका के पत्नी के रुप में सोना की शांत और समर्पित छवि भयभीत करती है जिसके कारण अपनी शादी का इरादा वह फिलहाल मुल्तबी कर देती है ।"[५२] सोना ने अपने पति के व्यवहार को सही ढंग से पहचान कर, परखकर शादी की थी । पुरुषवर्ग के आधिपत्य को देखकर प्राध्यापिका को डर लगने लगता है । वह जीवन में परिवर्तन की इच्छा रखती है । स्त्री पुरुष में समानता चाहती है । लेकिन जहाँ उसके व्यक्तित्व का शोषण होने का एहसास होता है तो वह प्रतिरोध के लिए तैयार होती है । पति के अन्याय एवं अत्याचार को पंरपरागत स्त्रियों की तरह सहने को वह तैयार नहीं । इसके लिए वह तलाक तक लेने को हिचकती नहीं । यहाँ लेखिका स्वातंत्र्योत्तर समाज की बढ़ती हुई तलाक की ओर इशारा करती है । स्वातंत्र्योत्तर समाज में पति-पत्नी के बीच होनेवाले तनाव तलाक में ही समाप्त होता है । लेकिन सोना की अवस्था को देखकर प्राध्यापिका को भविष्य के जीवन के प्रति आशंका होने लगती है । डॉ. विजयावारद के अनुसार, "परंपरागत मूल्यों से वह मुक्ति चाहती है । एक ओर विवाहित स्त्री सोना है जो अपने पत्नीत्व को सुरक्षित नहीं रख पा रही है । मज़बूरी से पति की हुकुमत में जी रही है तो दूसरी ओर वह

अविवाहित स्त्री है जो इस विवाहित स्त्री की स्थिति को देखकर अपने भविष्य के प्रति आशंका हो उठती है । ये दोनों स्त्रियाँ भारतीय स्त्रियों की दो भिन्न मानसिकताओं का प्रतिनिधित्व करती है ।"[५३]

३.२.४ संबंधों में बनते-बिगडते रिश्तों के नये मूल्य

भारतीय सभ्यता में पारिवारिक सम्बन्धों का अहं स्थान है । भाई बहन के रिश्ते में पवित्रता है । जिसे जीवन भर बनाये रखने के कस्मेवादे किये जाते हैं । स्त्री में एक मातृत्व का स्वरुप है परिवार में बहन बड़ी हो तो अपने भाई बहनों के लिए वह माँ स्वरुप है । प्रेमचन्द के शब्दों में, "नारी केवल माता है और उसके उपरान्त वह जो कुछ भी है वह मातृत्व का उपक्रम मात्र है ।"[५४] अर्थात् नारी रुपी बहन को प्रेमचन्द स्नेह एवं क्षमता की मूर्ति मानते हैं । बहन शक्ति एवं प्रेरणा का स्रोत है । बहन के सहनशील दायित्वपूर्ण जीवन चित्रण ममता कालिया की कहानियों में चित्रित है ।

'वे तीन और वह' कहानी की बहिन अपने बीमार भाई प्रयाग की सेवा शुश्रूषा अत्यंत त्याग भाव से करने के साथ उसके साथियों से कहती है - "देखो, जब तब यह बीमार है इसे बाहर न निकलने देना और इसके लिय चाय, दूध वगैरह का इन्तज़ाम कर देना, बिल मैं समझ लूँगी ।"[५५] अपने समय और धन के प्रति उसकी कोई चिन्ता नहीं है । अकेले में बीमार पड़े भाई की सहायता करना वह अपना मानवीय धर्म समझती है । यहाँ मूल्य का परिवर्तित स्वरुप देखने को मिलता है । साधारणतः भारतीय अवधारणा में भाई बहन की रक्षा करने की रीति है । लेकिन यहाँ बिल्कुल भिन्न स्थिति है । समय के अनुसार नया बदलाव सम्बन्धों में आया है ।

बहन के स्नेहपूर्ण व्यवहार की ओर एक तस्वीर ममता कालिया की 'दो

ज़रुरी चेहरे' में व्यक्त है । आधुनिक समय में भी भारतीय परिवार में परंपरागत भाई-बहन के रिश्ते का स्वार्थ रहित प्रेम देखने को मिलता है । 'दो ज़रुरी चेहरे' की बहिन मीनाती अपने इकलौते भाई की खातिर विवाह तक नहीं करना चाहती । लेकिन अंत में प्रेम विवाह ही कर लेती है । इसलिए वह अपराध बोध से पीड़ित है । बहिन के प्रति उसमें अपार स्नेह है । लेकिन वही प्यार प्रकट रुप में खुलकर दिखाने में वह असमर्थ है । ऐसे भाई के सामने श्याम के ज़बरदस्ती करने पर वह सीधे कहती है – "भैया श्याम हमसे शादी करेंगे ।" एक समझदार भाई की भांति वह चौंकता जरूर है लेकिन चुप हो जाता है । वह उसे देखते ही रह जाता है । यहाँ भाई बहन का प्यार व्यक्त है । भाई-बहन के अटूट संबन्ध के बीच मीनाती श्याम को छोड़ना भी नहीं चाहती । एक बार मीनाती बीमार पड़ जाती है उसे अस्पताल में दाखिला करवाया जाता है, ओपरेशन की स्थिति पैदा होती है इसके बाद जब उसको होश आता है तो सामने दो चेहरे को देखता - भाई और श्याम । मीनाती दुविधाग्रस्त हो जाती है । अंत में भाई ही उसकी शादी श्याम से करवा देता है । डॉ. साधना अग्रवाल के अनुसार, "इस सुखद अंत में लेखिका ने उलझनों को दूर होने का संकेत दिया है । जिन्हें सहन करने के बाद एक भारतीय लड़की अपने मन के अनुसार यानी प्रेम-विवाह करना चाहती है । इस तरह लेखिका ने मीनाती को आगत से जोड़ दिया है और अतीत से पूरी तरह न कटने की विवशता को उजागर किया है । इसमें पाश्चात्य प्रणाली में सेक्स को खुले रुप में चित्रित करने पर भी मीनाती के भारतीय मन को वह त्याग नहीं पाई है ।"[५६] भारतीय मूल्य का सारा भाव जैसे प्यार, ममता, वात्सल्य, दायित्व बोध, सेवा भाव सब यहाँ मिलता है ।

आज के उत्तराधुनिक युग में विवाहित भाई को बहिन के प्रति इतना ध्यान देने की ज़रुरत नहीं फिर भी पिता के न होने पर 'एक अकेला दुःख' का भाई बहिन के

लिए सब कुछ करता है । "यह तो शत प्रतिशत उसका भाई है, पिता के निधन के बाद आधा पिता, आधा भाई, उसका सबसे अच्छा दोस्त जो न सिर्फ उसके सपने समझता है वरन् उसकी हताशाएँ भी ।"[५७] लेकिन भाई की आकस्मिक मृत्यु में बहिन नीता अत्यधिक दुःखी हो जाती है । भाभी मीना और पुत्र गुड्डू भी दुःखी है फिर भी वे अपने को काबू में रखने का प्रयत्न करते हैं । जब बहिन भाई के घर पहुँचती है तब वह देखती है कि भाभी और गुड्डू अपने अपने काम में व्यस्त हैं । वास्तव में यह आधुनिक परिवर्तित समाज क सच्चा चित्रण है । मानवीय मूल्यों में आये अंतर एक हद तक भलाई के लिए भी है । पुराने ज़माने की तरह मृत व्यक्ति के लिए आँसू बहाना, सारा समय गंवाकर निष्क्रियता से जीवन बिताना आज के मानव के लिए स्वीकार्य नहीं है और समय भी नहीं है । बावजूद इसके मृत व्यक्ति के प्रति श्रद्धांजली देना और अपने उत्तरदायित्व को निभाकर उसकी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करना सार्थक कार्य है । इस कहानी का गुड्डू बुआ से कहता है, "बुआ, मुझे लगता है आपकी पीढ़ी अवसाद और शोक के प्रति भी उत्सवधर्मी है । आप साल भर शोक मनाने को कहेंगी तो मेरे लिए तो जीवन के सारे दरवाज़े बन्द हो जायेंगे ।"[५८] यह नये समाज का नया चिन्तन है और जीवन में समय संदर्भ के अनुसार मानवीय मूल्यों में परिवर्तन भी आना स्वाभाविक है लेकिन मूल्य इतने भी परिवर्तित नहीं होने चाहिए जिससे मानवता का हनन हो । भारतीय संस्कृति में माता, पिता, भाई, भाभी, पति, पत्नी के प्रति जो परंपरागत मूल्य हैं उसे बनाये रखने में भी भारतीय संस्कृति की पहचान है । अन्यथा हम भारतीयों में और पाश्चात्य विखण्डित समाज में क्या अंतर हो सकता है ।

अविवाहित नौकरीपेशा स्त्रियों से जुड़ी कहानी है 'कौए और कोलकत्ता' । यह दो बहिनों की कहानी है । बड़ी बहिन आधुनिक, उत्तराधुनिक, नवउपनिवेशवादी

समाज की सब गतिविधियों को पूर्ण रुप से समेटकर जीनेवाली एक मोड़ल है । वह आज के विज्ञापन क्षेत्र में काफी मशहूर है। छोटी बहिन दिल्ली में प्राध्यापिका है । माँ-बाप विहीन इन दोनों में बड़ी बहिन को वास्तव में छोटी की सहायता, संरक्षण करने का दायित्व है । लेकिन यहाँ भिन्न रुप हम देखते हैं । बड़ी बहिन की दिशाहीनता और अस्वाभाविक व्यवहार को जानकर छोटी बहिन उसे समझाती हुई कहती है, "मैं तुमसे यह कहना चाहती थी कि क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता, अब तक जो जीवन तुमने जिया, वह दिशाहीन था । ऐसे में हम आज से शुरु करते हैं अपना सार्थक जीवन । इस जीवन में न्यूनतम सामान हो, थोडी सी ज़रूरतें हों, दो-चार पक्के दोस्त हों, एक शेल्फ-भर किताबें हों, कोने में एक मेज़ हो जिस पर कागज़ और कलम हो ।"[५९] यहाँ छोटी बहिन के मन में बडी को सुधारने की चिन्ता है । कहीं कहीं परिवारों में यह देखा जाता है कि घर के छोटे काफी 'matured' और व्यावहारिक होते हैं । इस कहानी की छोटी बहिन काफी 'matured' और व्यावहारिक है । यह बदलते परिवेश का बदलता परिणाम है ।

३.२.५ माता, पिता और संतान के बीच बनते बिगडते परिवर्तित मूल्य

एक समय माता-पिता और संतान का सम्बन्ध सभी संबंधों में से सबसे ज़्यादा श्रेष्ठ और दृढ़ माना जाता था लेकिन आज स्थिति बदल गई है । माता-पिता और संतान के विभिन्न व्यक्तित्व का अंकन अनेक कहानियों में देखा जा सकता है । माता-पिता रुपी विशाल वृक्ष की छाया से सन्तानों की प्रगति होती है । वे सन्तानों के जीवन रुपी पाठशाला के पहले अध्यापक हैं । दोनों सन्तानों के प्रति सबकुछ करने को तैयार हैं विशेषकर माँ त्याग और समर्पण की साक्षात् देवी ही है । उनके अन्त:स्थल में मानो वात्सल्य का अपूर्व प्रवाह निरन्तर बहता रहता है । माँ ममतामयी है, स्नेहमयी है । लेकिन वर्तमान युग परिवर्तन का युग है जिस कारण माता-पिता और सन्तान के बीच अन्तराल

नज़र आता है ।

ममता कालिया की बाल मनोविज्ञान पर आधारित एक सुन्दर कहानी है 'राजू' । जीवन में अनेक तकलीफ़ों को सहने के बावजूद भी राजू एक समझदार लड़का है । पितृविहीन राजू का एकमात्र सहारा अर्थाभाव से पीड़ित माँ है । छोटा होने पर भी राजू अपनी माँ की मानसिक व्यथा को समझता है । जब वे दोनों खुशी से 'अशोक मामा' की शादी में जाते हैं वहाँ दूसरे लोगों से, खुद अपनों से भी राजू को अपमान सहना पड़ता है । औरों के कारण माँ क्रोध से उसे 'अपशकुनिया' कहती है लेकिन बाद में पश्चाताप एवं अपनी नियति पर रो पड़ती है । दरअसल एक माँ और एक बेटे को सहने योग्य दुःख से अधिक व्यथा उनको सहना पड़ता है । यहाँ राजू जैसे आम बच्चे का उद्धीयमान व्यक्तित्व एवं सही मूल्य का ज्वलंत रूप की अभिव्यक्ति है । वह जल्दी अपने और माँ के आँसू पोंछते हुए उसे दिलासा देते हुए कहता है, "अम्मा रोओ मत । मैं बारात में नहीं जाऊँगा । मुझे बारात बिल्कुल अच्छी नहीं लगती अम्मा । चलो हम वापस चलें ।"[६०] ऐसे हृदयस्पर्शी दिलासावूर्ण बात सुनकर माँ का हृदय पिघल जाता है । मातृस्नेह की ममता भरी भावना से वह बेटे को अपनी ओर खींच लेती है और लगातार चूमते हुए कहती है, "मेरा सवा लाख का बेटा मेरा नैनिहाल, मेरी जीभ जल जाये । तुझसे प्यारा मुझे कोई नहीं। मेरा कुँअर कन्हैया, तू तो मेरी आँखों की रोशनी है । तुझे देखकर तो मैं दिया जलाती हूँ । मेरा राजू तू जुग जुग जिये ।"[६१] दुनिया बदल गये, परिवर्तन का चकाचौंध रूप समाज में प्रतिफलित होने लगा लेकिन माँ का वात्सल्य का शाश्वत मूल्य अब भी नष्ट नहीं हुआ है । इसका उत्तम उदाहरण 'राजू' कहानी में देख सकते हैं ।

माँ और पुत्र के बीच का स्नेह संबन्ध को स्पष्ट रूप में ज़ाहिर करनेवाली कहानी है 'दो ज़रूरी चेहरे' । इसका पुत्र अपनी पत्नी की मृत्यु से अतीव दुख झेलता रहा

है । लेकिन अपने शोक एवं व्यथा को अपनी माँ के सामने उजागर करना नहीं चाहता । वह खुद अपने को काबू में रखने का प्रयत्न करता है । किसी भी हालत में वह अपने व्यवहार एवं बातों से उसे दुख देना नहीं चाहता । वह अपनी चुप्पी एवं व्यथा को सही ढंग से परिवर्तित करना चाहता है । माँ के प्रति भाई का स्नेहपूर्ण व्यवहार से अभिभूत होकर बहन मिनाती कहती है, "ममी की बहुत परवाह करते थे भाई । वैसे उन्हें ज़्यादा बात करते मैंने कभी नहीं देखा । दफ्तर से आकर भाई चाय पीते हुए बैठे रहते ममी के साथ । उनके आगे भाई ने अपनी आदतें इस तरह बदल लीं कि जाते समय ममी को यह अन्दाज़ा रहा कि भाई एक तरह से ठीक ही हैं । और दफ्तर वगैरह में व्यस्त रह लेते हैं ।"[६२]

माँ की खुशी संतान की खुशहाली में है । कोई भी माँ संतान को उदास नहीं देखना चाहती । 'जितना तुम्हारा हूँ' का बेटा रघु अपनी इच्छा से अपनी पसंद की एक बंगाली बहू को घर ले आता है । माँ पहले विचलित हो जाती है लेकिन बाद में उसे सोने की जंजीर पहनाकर स्वागत करती है । वास्तव में, रघु माँ जी के महान आचरण पर मुग्ध और अभिभूत हो जाता है । यहाँ माँ परंपरागत रीति-रिवाज के विरुद्ध व्यवहार करनेवाले बेटे के सामने अपने दकियानूसी विचारों को परिवर्तित करके एक शांतिपूर्ण माहौल बनाना चाहती है । यह पुरानी पीढ़ी की व्यावहारिकता है । वे अपनी जिद छोड़कर अपनों के साथ समझौता कर लेते हैं । इसी में उन्हें खुशी का अनुभव होता है ।

आज के आधुनिक युग में वृद्ध जनों के प्रति कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता । भारतीय परंपरा के अनुसार माता-पिता वृद्धावस्था में बेटों के सहारे जीना पसंद करते हैं । लेकिन 'आज़ादी' कहानी में एक बेटा नौकरी के स्थल से लौटकर आता है तो

रोगग्रस्त माँ अपनी बीमारी को भूल जाती है । बहू के रहते भी अपने ही हाथों से भोजन बनाकर खिलाती है । बाबू के आने पर घर में सब राजी खुशी रहे, लड़ाई झगड़ा न हो । बेटी ने सोचा, "बाबू के आने पर दादी इतनी खुश हो जाती कि लगता वे बिल्कुल ठीक हो गयी हैं, न उनका पैर दुखता, न आँखें पनियाती हैं । बाबू जल्दी जल्दी आया करें तो कितना अच्छा हो ।"[६३] घर में पति के आधिपत्य में पीड़ित स्त्री भी अपने पुत्र के प्रति लगाव से व्यवहार करती है । स्त्री की यानी माँ के नैसर्गिक स्वभाव को ममता कालिया ने यहाँ प्रस्तुत किया है । पुत्र स्नेह के सामने सभी माँ अपने दुःखों को भूलकर उनके प्रति अपने को अर्पित करती है । यह एक परंपरागत रीति है । आज के आधुनिक युग में मूल्यों में परिवर्तन तो हुआ है लेकिन संतान के प्रति माँ का प्रेम आज भी वैसे के वैसे है ।

'मनोविज्ञान' कहानी में एक विवाहित पुरुष अपनी पत्नी से ज़्यादा माँ को प्यार करता है । जब नवीन की माँ के आने की सूचना मिलती है तब नवीन पत्नी को आदेश देता है कि माँ के लिए सबकुछ करना बहू का कर्तव्य है । वह कहता है – "नौकर बाहरी लोगों के लिए कर सकता है, अम्मा के लिए तुम्हें करना चाहिए । तुम्हारा धर्म है ।"[६४] यहाँ एक ओर मातृभक्ति है तो दूसरी ओर पति से पत्नी की आदेश भी ।

स्त्री का मातृत्व उसके जीवन की सार्थकता, पूर्णता एवं सफलता का प्रतीक है । यह पद स्त्री को आत्मतुष्टि, आत्मसुख, आत्मविश्वास, आत्म अस्तित्व आदि के साथ साथ सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्रदान करता है । यह सर्वविदित सत्य है कि मातृत्व की लालसा संसार की सभी पीड़ाओं को विस्मृत कर देती है । इस पीड़ा के पश्चात् वह जीवन में नई शक्ति का संचार पाती है । यहाँ 'अर्द्धांगिनी' में रूपा वक्ष कैन्सर से राहत पाकर

स्वस्थ हो जाती है । ओपरेशन के बाद वह एक बच्चे को जन्म देती है । खुशी एवं गर्व के साथ पति सौरभ बच्चे के लिए कुछ खिलौने लाता है साथ साथ दूध की बोतल भी । इसे देखते हुए अचानक रुपा पूछ बैठती है –'इसका क्या काम' । बाद में उसे यथार्थ का भान होता है । उसे अपना नारीत्व रिसता हुआ नज़र आता है तब वह कहती है, मेरा हाल देखो बेटू का दूध यहाँ है । रुपा ने आंचल उठाया उसका पूरा ब्लाउस दूध से गीला हो गया था । सौरभ ने अपने को संकट में पाया और कहा, "मैंने सोचा .... मेरा ख्याल था ..... सभी बच्चे बोतल से दूध शुरु करते हैं । .... कहीं यह भूखा न रह जाए ।"[६५] रुपा मातृत्व के गर्व से आत्मविश्वास के साथ कहती है, "चिन्ता क्यों करते हो मैं इसकी माँ हूँ । इसका अमृत मेरे अंदर से बाहर आएगा ।"[६६] यहाँ एक स्त्री की अस्मिता का सवाल उठता है । स्त्री के अस्तित्व की पूर्णता तभी होती है जब वह माँ बनकर अपने नवजात शिशु को स्तन पान करायें तभी ही स्त्री अपने आप को सार्थक मानती है । कैन्सर से पीड़ित रुपा एक तरह से अपने खण्डित व्यक्तित्व को लेकर जी रही है । उसके अंदर एक अपूर्णता बोध है, जब पति दूध की बोतल लाता है तब अपूर्णता की भावना और भी गहरी हो उठती है ।

आज समाज में सब जगह उपभोक्तृ संस्कृति का बोलबाला है यहाँ तक विवाह भी इससे मुक्त नहीं । हर माता पिता की तरह 'बिटिया' कहानी की माता भी बेटी की शादी में वरपक्ष के 'डिमान्ड' के अनुसार सबकुछ देने को तैयार हो जाते हैं । भूमण्डलीकरण और बाज़ारीकरण के प्रभाव के फलस्वरुप वरपक्ष की आवश्यकता भी निरन्तर बढ़ती जाती है । ऐसी दुरुस्त हालत में उसको निभाने का प्रयत्न करनेवाली आदर्श माँ का चित्रण ममता कालिया ने 'बिटिया' में प्रस्तुत किया है ।

माँ त्याग, करुणा, वात्सल्य जैसे अनेक मानवीय भावों की संचय निधि है । माँ अपनी बेटी से कितना प्यार करती है, उसका पूरा ज्ञान 'इरादा' कहानी द्वारा व्यक्त होता है । 'इरादा' कहानी की बीमार माँ अपने विवाहित बेटी के आने से खुश हो जाती है । लेकिन दामाद का बुलावा पाकर एक आदर्श माँ की तरह कहती है, "शांति, मैं बिल्कुल ठीक हूँ, तू जा, तू आ गई, तुझे आँख भर देख लिया यही बहुत है । यह तो उसका बड़प्पन है कि तुझे हर साल भेज देता है, नहीं तो मालूम है न, तेरी बड़की मौसी की क्या दशा थी ! एक बार शादी हो गई तो कभी पीहर की दहलीज़ पर पाँव नहीं रख सकी । जाने कौन बात से उसके ससुरालवाले नाराज़ थे, बस कभी भेजा ही नहीं । तेरी नानी आखिर तक उसके लिए कलपती रहीं, पर वह उनके मरने पर ही आई ! तू शाम की ही गाड़ी में चली जा ।"[६७] यहाँ एक विवाहित बेटी की तकलीफ को माँ भलि-भाँति समझती है । इसलिए उसको कोई शिकायत नहीं । भारतीय परंपरा के अनुसार लड़की पराया धन होती है और ब्याह के बाद उसका घर उसका ससुराल ही होता है । माइके के साथ उसका संबन्ध नहीं के बराबर होता है । इस स्थिति को लेकर हमारा समाज 'conditioned' है । इसे लेखिका ने यहाँ व्यक्त किया है ।

माँ सहनशीलता और सहनशक्ति की साक्षात् प्रतिमा होती है । महात्मा गाँधी ने भी नारी के आदर्श के विषय में कहा है कि 'नारी त्याग की मूर्ति है'। अपनी संतान के लिए वह अपनी जान की बाजी लगा देती है। 'माँ' कहानी में इसका यथार्थ रूप व्यक्त हुआ है । इस कहानी की माँ अपनी बच्ची को बन्दर के उठा भागने पर अत्यंत दुखी है । जल्दी वहाँ उपस्थित दो अनजान लडके अपने जीवन की परवाह किये बगैर बच्ची को बचाते हैं । यों वह अपनी बच्ची के रक्षक को देखना चाहती है लेकिन वे भीड़ में गायब हो जाते हैं । कभी कभी जीवन में ऐसी अवस्थाएँ आती हैं जब कोई अनजान हमारी रक्षा

के लिए आता है । ऐसे समय में हमें वे भगवान से भी ज़्यादा बड़े लगने लगते हैं । लेकिन कभी कभी संदर्भ के विपरीत अपने ही लोग बात का बतंगा बना देते हैं । यहाँ इस कहानी में सास इस घटना को एक विकृत रूप देती है । उसे लगता है कि रक्षक बनकर आये दो युवक बहू के पुराने आशिक है । वह कहती है, "तेरी दादी विकराल मुद्रा में बैठी थीं, मुझे देखकर बोलीं, बहुत हो चुकी नौटंकी । ज़रूर कोई पुरानी आसनाई रही होगी, नहीं तो कौन किसी की खातिर जान पे खेलतौ है ।"[६८] लेकिन बहू सास की ऐसी कडवी युक्ति को अनदेखा करती है । यह एक तरह की बुद्धिमानी है ।

बच्चों के शरारती व्यवहार के सामने कभी कभी माता-पिता को सिर झुकाना पड़ता है । 'निवेदन' कहानी में ऐसे एक जिद्दी, शरारती पुत्र के प्रति त्याग, क्षमा, ममता, स्नेह प्रकट करनेवाली एक औसत बेचैन माँ का चित्रण असरदार तौर पर ममता कालिया प्रस्तुत करती है । इसमें पुत्र के प्रति माँ का गहरा प्रेम दर्शाया गया है । हमारे समाज में कुछ ऐसे पुरुष हैं जो बच्चों के द्वारा उनकी माँ को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करते हैं । इस कहानी में भी वर्माजी एक ऐसा व्यक्ति है जो मन्टू को मीठी सुपारी देकर उसके प्रति प्यार जताता है । षोपिंग के बाद वर्माजी के बुलावे एवं बच्चे के जिद्द के कारण मिनी को बेमन से उसकी कार में बैठना पडता है । अपने बेटे की हरकत के प्रति वह अत्यंत बेचैन है । लेकिन मीठी सुपारी सुरती की तरह हथेली में मसलते वक्त उसको लगता है "उसकी शरारत और उसका भोलापन उसकी गुलाबी रंग में कुछ इस तरह मिले हुए थे कि मिनी को उस पर ढेर प्यार आया । इस वक्त वह रिक्शे में बैठी होती तो मण्टू को अवश्य चूम लेती ।"[६९] यहाँ अब तक की उसका जिद्द, शरारत, वर्माजी के सामने का व्यवहार आदि से विवश माँ जल्दी ही उसके निष्कलंक हरकत के प्रति प्रभावित होती है । यहाँ एक वात्सल्यमयी माँ का चित्रण मिलता है ।

आम तौर पर माताओं को बच्चों के प्रति प्यार अधिक होता है । लेकिन आधुनिक विदेशी वातावरण के बीच काम करनेवाले बच्चों के मन में भी मातृस्नेह की झलक खूब दर्शाया गया है । अपनी ग्रामीण घरेलू माताओं को विदेश ले जाने का तीव्र परिश्रम करनेवाले दो आधुनिक युवक का चित्रण बेहद प्रशंसनीय है । 'परदेश' कहानी में बिना कहे परिवार से विदेश पहुँचे टूटू और भूषी की एकमात्र इच्छा है अपनी माताओं को विदेश में ले जाना । उनकी भेजी चिट्ठी में टूटू लिखता है, "साल भर में काम कर पैसे जोड़ लूँ, फिर झाईजी, तुम्हें मैं अपने पास बुला लूँगा । भूषी लिखता है वह भी अपनी बीजी को बुलायेगा । प्लेन में आप दोनों इकट्ठी आ जाना, डर कम लगेगा ।"[७०] अंत में उनकी कोशिश सफल हो जाती है । दोनों की माँ विदेश पहुँचकर वहाँ के वातावरण में एक हद तक घुलमिल जाती हैं । दोनों को तसल्ली होती हैं । इस कहानी में ममता कालिया ने आज के बदलते परिवेश में संतानों का माँ के प्रति स्नेह, समर्पण और प्रेम की भावना को दर्शाया है ।

सभ्यता और संस्कार होने के बावजूद भी आज भारतीय परिवारों में पुरुषों का आधिपत्य है । 'सीमा' कहानी में पति के अधीन रहनेवाली एक स्त्री है सीमा । ससुराल के वातावरण में उसका मन बेचैन एवं पीडित है । एक हद तक यह स्वाभाविक भी है । हर एक स्त्री अपना माइके का माहौल ससुराल में भी ढूँढ़ती है । स्त्री की नियति है कि ससुराल के विपरीत माहौल में भी उसे अपने आपको ढालना पड़ता है । पुरुष माइके के नियमों के अनुसार बदलता नहीं है बदलना तो स्त्री को है । यह अवस्था सदियों पुरानी है। आज की इक्कीसवीं सदी में यही स्थिति मौजूद है । परंपरागत रीति में परिवर्तन नहीं आया है । इसी वजह से माँ बेटी को समझाती हुई कहती है, "तो इसमें बुरा क्या है, अच्छी औरतों को हमेशा पति की मर्जी में ही अपनी मर्जी देखनी चाहिए ।"[७१]

उसके पिता भी बेटी को समझाता है, "शुरु शुरु में एडजस्टमेंट में दिक्कत होती है । धीरे धीरे सब ठीक हो जायेगा ।"[७२] यहाँ माता-पिता बेटी के सुनहरे भविष्य की खातिर बेटी को परिस्थितियों से समझौता करने को कहते है । जिसमें एक हद तक व्यावहारिकता है क्योंकि दांपत्य जीवन समझौते पर टिका हुआ है । आधुनिक जीवन में इसकी कमी खूब देख सकते है । इसी वजह दांपत्य जीवन ताश के पत्तों की तरह ढहटहाहट गिर पड़ते हैं।

माँ के व्यक्तित्व का मर्मस्पर्शी चित्र 'एक दिन अचानक' में व्यक्त हुआ है । माँ के रुप में स्त्री को सदा ही उच्च स्थान मिला है । माँ त्याग और समर्पण मनोभाव की यथार्थ मूर्ति है । उसके अन्त:स्थल में वात्सल्य की धारा प्रवाहित होती है । एक माँ के लिए उसके संतान ही उसकी अनमोल निधि होती है । संतान के लिए वह अपने सारे ऐश्वर्यों को समर्पित करती है । इस कहानी में कोमा में पड़े बब्बू के प्रति माँ का समर्पण अद्वितीय है । लेकिन ढाई साल की सेवा शुश्रूषा के अंत बब्बू हमेशा केलिए इस दुनिया से नि:शब्द विदा हो जाता है । माँ प्रभावती विलाप कर उठती है, "हाय घर कैसा खाली, खाली लग रहा है, अब हम कैसे जियेंगे ।"[७३]

'पहली' कहानी परिवार केन्द्रित है । परिवार में संतानों का माँ के प्रति अटूट प्रेम है । इसमें माँ का स्नेह, वात्सल्य प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले बेटे का चित्रण अत्यंत ही जीवन्त है । बच्चा, चाहे कितने भी बड़ा हो जाता है माँ के हाथों से भोजन खाना चाहता है। इस कहानी में भी इसी विषय को ममता कालिया ने बडी तन्मयता और स्वाभाविकता के साथ उकेरा है । यहाँ माहौल महीने की पहली तारीख से संबन्धित है । पहली तारीख का अपना महत्व होता है । उस दिन पिता तनख्वाह लेते हैं मिठाई खरीदते हैं । यह एक निम्न मध्यवर्गीय का सामान्य दृश्य है । इसी स्थिति की एक झलक इस

कहानी में मिलती है । बेटे माँ को खाना खिलाने को कहता है तब माँ पूछती है, "तुम अपने आप क्यों नहीं खाते ? तभी बेटा कहता है -तुम्हारे हाथ से रोटी मीठी लगती है।"[७४] बच्चे पहली तारीख्र की खुशी में अपनी माँ के हाथ से खाना चाहते हैं ।

मातृस्नेह को उजागर करनेवाली सशक्त कहानी है 'उपलब्धि' । इस कहानी का बेटा चेहल्लुम के दिन अकारण सांप्रदायिक समस्याओं में फँस जाता है । सांप्रदायिक दंगों में राजनीति की रणनीति होती है । वास्तव में हिन्दू मुस्लीम में कोई विरक्ति ही नहीं। विरक्ति पैदा करता है राजनेता । इस कहानी में सांप्रदायिक समस्या होने पर भी बबलू को एक मुसलमानी परिवार के लोग अपने घर में पनाह देते है । और वह सुरक्षित रहता है । बबलू की माँ प्राची बेटे के अभाव में बहुत व्यथित होती है । जब वह देखती है उसका बेटा किसी मुसलमनी कोठरी में सुरक्षित है । "वह बरसती आँखों से बबलू का मुँह, हाथ, पैर, आँखें, सिर चूम रही थी । बबलू को उसने आवेश में इतना कसकर चिपटाया कि वह जाग गया । एक क्षण वह प्राची की छाती में छुपा, फिर सिर उठाकर बोला अम्मा मारा-मारी हुई थी । ढिशुं ढिशुं ।"[७५] यहाँ बिछुडे हुए बेटे को पाकर माँ इतनी खुश होती है मानो उसे स्वर्ग मिला हो । माँ-बेटे का रिश्ता ऐसा होता है ।

'नया त्रिकोण' में पारिवारिक माहौल की प्रधानता है । पीढ़ियों का संघर्ष कोई नई बात नहीं है । नयी और पुरानी पीढ़ी का संघर्ष सालों पुराना है । इस कहानी में आनंद ऐसे संघर्षपूर्ण वातावरण से अपनी पत्नी को दिलासा देने का प्रयत्न करता है । माँ और बाबू का दृष्टिकोण अलग होने के वास्ते घर में हमेशा स्थिति बेहाल रहती है । दरअसल आनन्द शुरु से अपनी माँ के व्यक्तित्व की खूबियों और खामियों को अच्छी तरह जानता था। इसलिए उसे इतनी तकलीफ नहीं होती थी । पर हर चीज़ों को तार्किकता की

दृष्टि से देखनेवाली उसकी पत्नी की सहनशक्ति का कचूमर निकलता जा रहा था । वास्तव में सास की देखभाल करने का कोई अच्छा प्रमाण पत्र उसको नहीं मिलता । सास बहू का तनाव परंपराबद्ध है । बहू पर शोषण करते वक्त सास तभी यह नहीं सोचती वह भी कभी बहू थी । और आजकल की बहुओं भी ऐसी है कि छोटी छोटी बातों को पहाड़ बना देती है । यहाँ वही स्थिति है । सास के साथ तनमयता से व्यवहार करने की कोशिश वह करती है जबकि सास का स्वभाव सख्त ज़रूर है । इसलिए अनिता का पति आनंद अपनी पत्नी के विचारों में परिवर्तन लाने की प्रेरणा देते हुए कहता है – "माँ का हृदय एकदम साफ है। उनकी बात बुरा मत माना करो, उन्हें प्रसन्न रखा करो और खुद भी खुश रहा करो ।"[७६] आनंद जैसे पुरुषों की कमी आज के युग में है । आज के पुरुष पत्नी की बातों को सुनकर अपनी माँ का अपमान करते हैं । बुजुर्गों में कुछ कट्टरता रहे भी तो उसे सहना हमारा कर्तव्य होता है । और उसमें एक विशेष तरह का सुकूल भी रहता है । आज के आधुनिक वैज्ञानिक युग में यह स्थिति समाज से मिट रही है ।

आज के विकसित स्वतंत्र पारिवारिक माहौल में घुटकर पति के अधीन अपमानित होकर जीनेवाली एक वृद्ध दादी की दर्दभरी कहानी है 'आज़ादी' । दादी के प्रति उसकी पोती गहरा प्यार, आत्मीयता दिखाती है। स्वतंत्रता की खूबियों से अनजान दादी से पोती कहती है – "दादी आज आज़ादी का दिन है, हम स्कूल जा रहे हैं, तिरंगा झंडा फहराब जायेगा । दादी बोली री मुन्नी थोड़ी आज़ादी मेरेलिए भी तो ले आना पुड़िया में बाँध के ।"[७७] समारोह में खाने के लिए जो 'बताशे' मिले उसने अपने हिस्से के आधे दादी के लिए रख दिये । दादी के प्रति एक असली स्नेह की भावना छोटी उम्र में भी पोती में प्रकट होती । यहाँ एक दादी की निष्कलंक मानसिकता का चित्रण है । हमारे समाज में ऐसे अनेक स्त्रियाँ हैं जो दादी के समान घुट घुट कर जीने को विवश है। और इसी

विवशता में ज़िन्दगी समाप्त हो जाती है । इस कहानी में जब पोती दादी को 'बताशे' का आधा हिस्सा देने जाती है तब पता चलता है कि दादी इस अस्वतंत्र संसार से हमेशा के लिए स्वतंत्र हो गयी ।

माता-पिता और संतान के बीच का संबन्ध आज के उत्तराधुनिक युग में भी दृढ़तर है । बाहरी तौर पर कभी कुछ न कुछ वैमनस्य होते हुए भी आंतरिक तौर पर उनमें प्यार बना रहता है । 'नायक' कहानी का अमित एक सफल युवक है । लेकिन एम.ए की पढ़ाई में एक प्रोफेसर से प्रभावित होकर उसमें कुछ परिवर्तन दृष्टिगत होने लगता है । व्यावहारिक रूप में अपने बेटे में हुए इस परिवर्तन को माँ पहचान लेती है । जब बातें पिता के कानों तक पहुँचती है तब वह शांतिपूर्वक कहता है - "किसी बात पर किसी से बिगड़ गया होगा, नौजवान लड़कों का खून गरम होता है । अनमना हो गया है । पुचकार लो, ठीक हो जायेगा ।"[७८] यहाँ एक पिता की व्यावहारिक दृष्टि व्यक्त है । जो बेटे के व्यवहार से नाराज़ होकर समस्याओं को उलझाये बिना सहज, स्वाभाविक ढंग से सुलझाना चाहते हैं । लेकिन विद्रोही विचारों को रखनेवाले बेटे में यह पुचकार या प्यार कहाँ तक स्वीकार्य रहेगा ? फिर भी पिता अपने दायित्व को छोड़ना नहीं चाहता । नयी पीढ़ी की विकृत सोच को समझने के लिए आक्रोश काम नहीं आता समझदारी से कार्य निपटाना पड़ता है । यहाँ विद्रोही भावना रखनेवाला बेटा पिता की मानसिकता को समझता नहीं है और पिता अपने कर्तव्य से विमुख भी नहीं होते । बेटे के जीवन के यथार्थ के बारे में समझते हुए वकील पिता कहते, "अगर मैं झूठ न बोलता तो तुम कभी सच बोलने लायक न बन पाते बेटे । यह तुम्हारी गर्मी ठीक है, पर इसे स्टेज के लिए संभाल कर रखो । हम अब हुए बूढे । जैसे जीते आये हैं वैसे ही जियेंगे । तुम बाकी समाज को बदलो । हम भी तमाशा देखेंगे ।"[७९]

आधुनिक पीढ़ी का खुलापन पुरानी पीढ़ी में नहीं होता है । 'ऐसा ही था वह' कहानी दो पीढ़ियों के यथार्थ को उजागर करती है । इसमें एक पिता है जो परंपरागत है । पुराने मूल्यों से जुड़ा हुआ है । नयी पीढ़ी का बेटा नये हावभाव को लेकर नये मुद्दे के आधार पर जीनेवाला है । यहाँ ममता कालिया यह स्पष्ट करती है पुरानी पीढ़ी के लोगों में दिखावा नहीं होता और नयी पीढ़ी के लोग दिखावे की आड़ में जीने वाले होते हैं । इस कहानी में एक पिता रक्तचाप बढ़ने पर सारी जिम्मेदारियों को बेटे पर छोड़ता है। और बेटा बहुत ही आलीशान तरीके से बीमार के लिए कीमती फल खरीदकर लाता है । पिता को यह इतना अच्छा नहीं लगता क्योंकि आर्थिक तंगी के कारण पिता पैसे का महत्व जानते हैं इसलिए वह कभी कीमती फल खरीदता नहीं । बेटे की ऐसी हरकत को देखकर गुस्से में पिता कहता है – "यह फलमंडी क्यों उठा लाया है तू । मुझे नहीं खाने ये राजे महाराजेवाले फल । लाना ही था तो अमरूद ले आता । फल खिलायेगा, अरे पहले नौकरी ढूँढो, तनखा लाओ । तब खरीदो फल और मेवा । बाप के पैसों पर मज़ा करना बड़ा आसान होता है, क्या समझे ।"[८०] यहाँ पिता की व्यावहारिक दृष्टि काम करती है । इसे हम कंजूसी नहीं कहेंगे । बल्कि एक निम्न मध्यवर्ग व्यक्ति की सच्चाई है । संपन्न वर्गों के लिए कीमती फलों का सेवन स्वाभाविक है । फल खाने के लिए अमरूद भी खाया जा सकता है । यही पिता कहता है । पिता अपने पुत्र विवेक को व्यावहारिक बनाना चाहता है । जीवन के कठोर धरातल पर खड़े होने के लिए पैर तले ज़मीन दृढ़ होना चाहिए । इसलिए पिता बेटे को अपने पैर पर खड़े होने की सलाह देता है । वह स्वयं बेटे की नौकरी का आवेदन पत्र और भर्ती परीक्षा का खर्च खुशी खुशी से करता है । पिता के इच्छानुसार ही पुलिस सेवा में उपनिरीक्षक पद के लिए प्रशिक्षण का आदेश आता है तब पिता की खुशी की कोई सीमा नहीं होती । वह कहता है – "सफल हुई मेरी साधना । अब मैं चैन

से तेरी माँ के पास जा सकूँगा ।"[८१] यहाँ एक पिता का बेटे के प्रति देखे गये सपने सार्थक होते देखकर पिता प्रफुल्लित हो उठता है । यह दरअसल एक आम पिता की मानसिक अवस्था है । हर पिता अपनी संतान के उज्ज्वल भविष्य का सपना देखता है । इस कहानी का पिता अचानक बीमारग्रस्त हो जाता है । पिता की रोगग्रस्त अवस्था को जानकर बेटा प्रशिक्षण स्थल से दौड़भाग कर आता है और बौखलाते हुए वह पिता से कहता है – "अच्छा आप ही बताइये, मैं क्या करता । आपकी बीमारी की सुनकर भी वहीं लेफ्ट राईट करता रहता । मेरे से रहा नहीं गया पिताजी ।"[८२] यहाँ एक बेटे का पिता के प्रति प्रेम व्यंजित है जो स्वाभाविक भी है । लेकिन यहाँ का अनुशासन प्रिय, बीमार ग्रस्त पिता नहीं चाहता कि बेटा ट्रेनिंग छोड़कर पिता की सेवा में वहाँ बैठ जाय । वह बेटे को वापस लौटने के लिए मज़बूर करता है । पिता के जिद्द के सामने उसको वापस ट्रेनिंग जाना पड़ता है । जाते वक्त उसकी चेतना में पिता के लिए चिन्ता, प्रार्थना और विस्मित गर्व सब गड्ड-मड्ड हो जाते हैं । जब अचानक पिता की मृत्यु हो जाती है, बेटा फिर अंतिम संस्कार और घर संबन्धी सारा काम करने के लिए घर आता है । सारा काम एकदम पूरा हो जाता तब उसको चेतन मन में पिता का स्वर गूँजने लगता है, "फिर तू बैठ गया यहाँ आकर । काम में दीदा नहीं लगता । फौरन वापस जा क्या समझा ।"[८३] यहाँ ममता कालिया ने पुरानी पीढ़ी के अनुशासन पूर्ण जीवन रीति पर प्रकाश डाला है जो परवर्ती पीढ़ी के लिए एक धरोहर है ।

'सिकन्दर' कहानी में आदर्श एवं मूल्य को बनाये रखने का प्रयत्न करनेवाला एक मामूली पिता का चित्रण कर ममता कालिया अपनी कहानी कला के महत्व को दिखाती है । मौसम, महंगाई, बाज़ार के प्रलोभन आदि का सामना करने के लिए पिता ने कुछ सिद्धान्त बनाये हैं । वे अपने बच्चे को आर्थिक समस्याओं से दूर रखेंगे ।

'सिकन्दर' एक पारिवारिक कहानी है । परिवार की रीढ़ की हड्डी उस परिवार के पिता है । यहाँ भी पिता अपनी संतानों को सही राह पर लाने के लिए व्यावहारिक दृष्टिकोण को अपनाता है । आज के आधुनिक युग में बच्चे समाज के खोखलेपन, विभिन्न प्रकार की रीति रिवाज़ एवं विज्ञापनों के पीछे भागते हैं और माता-पिता भी बच्चों के अनुसार नौटंकी करते हैं । लेकिन इसका पिता बच्चों को नयी सीख देता है । विज्ञापनों में एक भोज्य पदार्थ को देखकर प्रभावित होते बच्चे को समझाते हुए कहता है – "यह भी कोई खाना है, न्यूडल्ज़, जैसे कुलबुल कीडे । बताओ बच्चों कीडे खाओगे या गोल मोल फूली फूली गरम रोटी। 'रोटी' बच्चे एक स्वर में चिल्लाते और उस दिन का खाना दावत जैसा मज़ा देता ।"[८४] अन्य विज्ञापनों को देखकर फिर बच्चे कहते हैं – "यह फेयरनेस क्रीम नहीं चमड़ी उधेडनेवाली क्रीम है । इसे लगाने से फायदा हमें नहीं उसे बनानेवाले को होता है । तभी पिता का कहना है कि विज्ञापनों का मकसद होता है बिक्री और मुनाफा ।"[८५] बरफ पानी में नहाने की अप्रियता प्रकट करनेवाले बच्चों में नवउन्मेष देकर पिता कहता है - 'देखो जो पहले उठकर नहा ले वे ही आज का सिकन्दर' । बच्चों में होड़ लग जाती । 'पहले मैं पहले मैं' कहकर वे निकल जाते । यहाँ जीवन में आनेवाले मज़बूरियों के बीच भी मनोरंजन एवं सामंजस्य के साथ छोटे छोटे परिवर्तनों के मार्फत नये जीवनमूल्य को सुरक्षित रखने की निरन्तर कोशिश करनेवाले एक आदर्शवान पिता का चित्रण ममता कालिया उजागर करती है ।

३.२.६ पारिवारिक माहौल में स्त्री का संवेदनात्मक मूल्य

ममता कालिया की कहानियों में स्त्री का महत्वपूर्ण स्थान है । वे स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त हैं । उनकी कहानियों में मध्यवर्ग

की स्त्री ज़्यादा है । उन्होंने स्त्री के विभिन्न रूप जैसे माँ, बेटी, बहू, पत्नी, सास, अविवाहित नारी, कामकाजी नारी, प्रेमिका आदि को नये संदर्भों में चित्रित किया है । नारी जीवन सच्चे अर्थों में त्याग और प्रेम का जीवन है । दरअसल वह समूचे परिवार की धुरी बनकर रहती है । उसके कन्धों पर ही परिवार रूपी महान इमारत खड़ी है ।

स्वतंत्रता के बाद स्त्री जीवन में व्यापक परिवर्तन देख सकते हैं । डॉ. रेणु गुप्ता के अनुसार, "अब समाज में नारी को अबला के स्थान पर सबला का दर्जा दिया जा रहा है । वह दिनों दिन विकास के पथ पर बढ़ रही है। कोई क्षेत्र ऐसा नहीं रह गया जहाँ नारी का प्रवेश निषिद्ध हो । इस शिक्षित और समझदार नारी ने समाज में भी अपना स्थान पहले से ऊँचा कर लिया है ।"[८६] वास्तव में इस परिवर्तित समाज में बाहर से स्त्री पुरुषों में कोई अंतर नहीं । किन्तु क्या है ? स्त्री आज भी पुरुष मेधा समाज में, उनकी दासता में अंदर ही अंदर घुटती जा रही है । आज के आधुनिक विकसित युग में भी उनकी दशा शोचनीय है । ऐसी दुर्गम स्थिति में स्त्री अपने मूल्य भावना को बनाये रखने में प्रयत्नरत है ।

ममता कालिया की 'मनोविज्ञान' कहानी की कविता शादी का अर्थ घर, सुरक्षा और हैसियत समझती है। डॉ. रेणु गुप्ता के अनुसार, "कविता पढ़ी-लिखी, समझदार होने पर भी पति के हाथों की कठपुतली मात्र है । पति के लिए आधुनिकता सिर्फ नये फर्निचर और कटे बालों में है । नये विचारों में नहीं । वह पत्नी को समझदार होने पर भी बराबर का दर्जा नहीं दे पाता, बल्कि उसे बात-बात में जलील करता है । फिर भी वह उसी के साथ रहती है, बिना किसी विद्रोह के ।"[८७] यहाँ कविता आधुनिक है, समझदार है इसलिए विद्रोहपूर्ण व्यवहार से अपने दांपत्य जीवन को नरकपूर्ण बनाना

नहीं चाहती है । कविता भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों को समेटकर पति के साथ 'Adjust' कर नये मूल्यों की स्थापना करने का प्रयास करती है । स्त्री की भारतीयता इस तरह के समझौते पूर्ण जीवन पर आधारित है । प्रतिरोध करना, प्रतिवाद करना और परिवार को तोड़ना आसान है । लेकिन संबन्धों को अपने स्थान पर बनाये रखना कठिन कार्य है । जो समझौता पूर्ण व्यवहार कविता करती है जिससे परिवार दृढ़ रहता है और एक भारतीय स्त्री का कर्तव्य है परिवार को बनाये रखना ।

भारतीय संस्कृति के अपने कुछ संस्कार है और इसी संस्कार के कारण आज यह संस्कृति संपूर्ण विश्व में अपनी पहचान रखती है । ऐसी महान संस्कृति के उसूलों को तोड़नेवाली स्त्रियों की कमी आज हमारे समाज में नहीं है । इसके साथ भारतीय संस्कृति की महानता और उसके संस्कार को बनाये रखनेवाली स्त्रियाँ भी हमारे समाज में हैं । जैसे 'बिटिया' कहानी की बेटी मधु । मधु परंपराबद्ध है। मधु किसी से प्रेम करती है लेकिन संकोचवश वह अपनी प्रेम कहानी पिता को बताती नहीं है । परिवारवालों द्वारा तय की गयी शादी को वह स्वीकार कर लेती है । वह माता पिता के विरुद्ध धिक्कारवश कुछ करना नहीं चाहती । अपनी पढ़ाई को भी वह स्थगित कर परिवारवाले की खुशी के लिए अपनी अस्मिता को कुण्ठित करती है । मधु जैसी लड़कियाँ हमारे समाज में आज के समय कम ही दिखाई पड़ती है । लड़की को भी अपने भविष्य के लिए चिन्तित होना चाहिए विशेषकर आज के युग में । अपनी पढ़ाई को छोड़कर भविष्य को अनदेखा कर किसी पुरुष के सामने वरमाला के लिए खड़े रहना मूर्खता है । क्योंकि शादी की रौनक चन्द महीनों बाद समाप्त हो जाती है । जीवन में परेशानियों के आने पर यहाँ वहाँ दौड़ भाग करने से कोई फायदा नहीं है । स्त्री को चाहिए कि विवाह के पहले वह अपने आप को 'equipped' करें । अपनी आत्मसुरक्षा उसे स्वयं बनानी है । इसका यह अर्थ नहीं है

कि वह माता पिता को धिक्कारे । माता पिता को समझाकर जीवन में बदलते परिवेश के साथ उठनेवाली कठिनाईयों से उनको अवगत कराना चाहिए । माता पिता पुरानी पीढ़ी के होते हैं पुराने मूल्यों में बन्धे होते हैं । बदलते परिवेश के साथ नये मूल्यों से जोड़ना लड़की का दायित्व है ।

'दर्पण' कहानी की बानी पढ़ी लिखी नौकरीपेशा स्त्री है । परिवार की जिम्मेदारी को वह अच्छी तरह निभाती है । कामकाजी होने के नाते अपनी इच्छानुसार जीने की रकम उसके पास है, बावजूद इसके वह एक आदर्श बेटी की तरह अपने को संभालकर रखने में कामयाब निकलती है । आर्थिक निर्भरता की वजह से स्वतंत्र रुप से जीने की सारी सुविधाएँ उसमें है फिर भी मूल्यों के साथ जुड़ी रहना चाहती है । "घर की गाड़ी दुक्खम सुक्खम चल रही थी कमाई के नाम पर बानी के चार सौ चौबीस रुपये थे । बस चौबीस रुपये अपने लिए रख, बानी चार सौ माँ को पकड़ा देती । उसका अपना कोई खर्च नहीं था । पैदल स्कूल गई । पैदल आई । अति परिचय हो जाने के कारण रास्ता लंबा नहीं रहा था ।"[८८] उसके विवाह के बाद पति उसकी नौकरी को छुड़ा देता है । यह पुन्सवादी सभ्यता की एक विशेषता है । स्त्री को हमेशा अपने पायदान के रूप में देखने का इच्छुक पुरुष कभी उसकी आर्थिक स्वतंत्रता बर्दाश्त नहीं करता । ऐसे पुरुष शादी के बाद स्त्रियों की नौकरी छुड़ा देते हैं । बानी अपनी कुण्ठित पति के अनुरुप परिवर्तित होने लगती है । स्त्रियों की बड़बोलापन, निर्भीकता और सक्रियता से चिढ़नेवाले पति के अनुरूप अपने को परिवर्तित कर देती है । पुराने मूल्यों में बन्धे रहने का यह अर्थ नहीं है स्त्री अपने को अस्तित्वहीन कर दे । अपने अस्तित्व को कायम रखते हुए भी वह परिवार के मूल्य को बना सकती है । बानी के परिवारवाले पंरपराबद्ध होने के कारण पुराने संस्कारों में बद्ध रहते हैं । बचपन से ही उसकी इच्छा थी कि वह अपने रूप सौन्दर्य को

दर्पण पर देखे । लेकिन हमारे परिवारों में स्त्री के लिए इसका अधिकार नहीं है । आर्थिक स्वतंत्रता होते हुए भी स्त्री इन सुविधाओं से वंचित रह जाती थी । बानी भी ऐसी सुविधाओं से वंचित है । विवाह के बाद उसका एकमात्र सपना था कि दर्पण में अपने को देखे । लेकिन पति भी इसी तरह पुराने उसूलों पर चिपका रहता है । और बरसों बाद जब बानी के लिए घर में 'Dressing table' आता है तब उसे उसकी ज़रुरत नहीं पड़ती क्योंकि वह अधेड़ अवस्था में पहुँच गयी । इस कहानी में यद्यपि बानी पुराने मूल्यों को स्वीकारते हुए जीवन निर्वाह तो कर लेती है लेकिन छोटे से आग्रहों की पूर्ति करने में वह असमर्थ होती है । यह एक स्त्री की मज़बूरी है। एक दर्पण देखने की इच्छा को भी पूर्ण न कर पाने की विवशता दुखदायी है ।

आधुनिकता ने संबन्धों के बीच इतने फासले बना दिये है कि आज मानव के बीच पहले जैसा स्नेह या आपसी संबन्ध देखने को नहीं मिलता । आधुनिक जड़ता ने हमारे मानवीय सम्बन्धों को भी जड़ बना दिया है । आज कोई भी सम्बन्ध स्वार्थ के बिना संभव नहीं होता । समाज में ही नहीं, व्यक्ति खुद अपने परिवार में भी अजनबी बनकर रहने लगा है । यहाँ इसके विपरीत ममता कालिया की 'मेला' कहानी की चरनीमासी जो 'मकरसंक्रान्ति' में नहाने आयी है, वह कहती है – "पाप सिर्फ वह नहीं होता जो जानकर किया जाय । अनजाने भी पाप हो जाता है, उसी को धोने ।"[८९] इसके बारे में उसके सम्बन्धी चारु का विचार इस प्रकार है "जगतमाजी है ये । हर एक के दुःख में कातर, सुख में शामिल । न किसी से वैर, न द्वेष, पडोस में सबसे बोलचाल, रिश्तेदारों में मिलनसार, परिवार में आदरणीय, यहाँ तक कि बहुएँ भी कभी इनकी आलोचना नहीं करती ।"[९०] आज के उत्तराधुनिक युग में ऐसे अच्छे चरित्रवाले को देखना ही मुश्किल है । आज सब कहीं दूसरों से विद्धेष, अप्रियता, स्वार्थभाव प्रकट करनेवालों के बीच

चरनीमासी का अलग अस्तित्व है । चरनीमासी जैसी मानवतापूर्ण व्यवहार करनेवाले इन्सान के लिए इस तरह की परंपरागत रुढ़ियों की ज़रुरत नहीं है । क्योंकि इन्सान का महत्व कर्म में निहित होता है ।

'बोलनेवाली औरत' की शिखा आत्मविश्वास से संपन्न छात्रा थी । स्वतंत्र व्यक्तित्व रखनेवाली दीपशिखा अग्निशिखा की तरह प्रज्वलित होती है । उसकी वक्तृता से प्रभावित होकर कपिल उसे अपनाने को तैयार होता है । पढ़ाई के साथ शिखा घरेलू व्यवसाय में पिता के साथ अपना हाथ बाँटती है । विवाह संस्था में बँधने के बाद वह फुलटाइम गृहणी का रॉल अदा करती है । शादी के बाद स्वतंत्र अस्तित्व, आत्मनिर्भरता, स्वाभिमान को महत्व देनेवाली शिखा परंपरागत मूल्यों के 'खोल' में बद्ध हो जाती है । जीवन के अनुभव उसे बताते है कि प्रेम और विवाह दो अलग धरातल है । घर की कारा में कैद रहने के बावजूद भी जीवन में एक बदलाव लाने की कोशिश करती है । ऐसे ही कभी कभी वह अग्निशिखा से दीपशिखा बनकर ही रहना चाहती है। पारिवारिक उत्तरदायित्वों से रोज़ की रुटीन में एक परिवर्तन की चाह रखनेवाली आधुनिक, स्वतंत्र, लेकिन दायित्वों से भरी एक स्त्री का चित्र यहाँ बिम्बित है । आम स्त्रियों की तरह उसके भी छोटे छोटे सपने है । बाहर घूमना, खरीदारी करना, जगह देखना ये सब कौन स्त्री पसंद नहीं करती । शादी के बाद दीपशिखा ये सारी स्थितियों से वंचित रह जाती है। यह मात्र दीपशिखा की बात नहीं है । हर मध्यवर्गीय भारतीय स्त्री की नियति यही है । शादी के बन्धन में बंधने के बाद परंपरागत मूल्यों के जकड़न में वह जीवन की सार्थकता खोजती है ।

स्त्री परिवार की दीपशिखा होती है । शिखा की ज्वाला को कोई महसूस नहीं करता है । जब बत्ती जलकर राख हो जाती है और अंधकार गहराने लगते है तभी

दीपशिखा के महत्व को हम महसूस करते हैं । यही स्थिति स्त्री के साथ है । 'तासीर' कहानी वृद्ध लोगों से जुड़ी कहानी है । इसके सभी पात्र एक जगह एकत्रित होकर अपना समय गंवाते हैं । ऐसे समय में कंसलबाबू को डेढ़ साल पहले मृत पत्नी की याद आती है । वह कहता है – "शांति जो गई सो मेरी सुख भी ले गई, दुःख भी ले गई । शांति हर चीज़ का ठिकाना बना गई क्या । मज़ाल जो कोई चीज़ अपनी जगह न मिले ।"[९१] यहाँ ममता कालिया ने स्त्री का गुण, उसकी शालीनता, उसकी मर्यादा पालन, दायित्व बोध सबकी ओर इशारा किया है । "नारी के स्नेह, तपस्या, त्याग साधना, प्रेम, बलिदान आदि गुणों को वही व्यक्ति जान सकता है जो कुछ समय के लिए स्त्री के साहचर्य में रहता है ।"[९२]

भारतीय समाज में भी पति की ज़्यादती को सहनेवाली स्त्रियाँ हैं । वे परिवार की खुशी के लिए खामोश होकर सबकुछ सहती रहती हैं । 'श्यामा' कहानी में एक विजिलेंस इनस्पेक्टर की पत्नी जो आर्थिक कठिनाई से पीड़ित है । बच्चों का पालन पोषण करने केलिए नौकरी ढूँढ़ते वक्त एक प्राचार्या से कहती है, "बच्चों और मेरे प्रति उसका बर्ताव बहुत कठोर है । बात बात में बच्चों के सामने कहते हैं – आई विल किल यू । बच्चे डरकर रोते हैं ।"[९३] दरअसल ऐसे निर्मम व्यवहार से हम भय के साथ रहते हैं । फिर भी वह धैर्य के साथ नौकरी की तलाश कर जीवन को आगे बढ़ाने की कोशिश करती है। भारतीय समाज में स्त्री का अपमान करनेवाले पुरुष की कोई कमी नहीं है। स्त्री पर अन्याय करना, मार-पीट करना, गंदी गालियाँ कहना ये उनका जन्मजात अधिकार मानते हैं । यदि स्त्री पुरुष के इस विकृत व्यक्तित्व का विद्रोह करती है तब उसे प्रतिरोधी, विद्रोही आदि उपनामों से पुकारा जाता है । हमारा समाज यही चाहता है कि स्त्री परंपरागत रुप में बनी रहें । और वास्तव में परंपरागत दायरे में रहने से परिवार तो चलता है लेकिन स्त्री

का जीवन कुण्ठित हो जाता है । यह एक खतरे की घंटी है ।

नारी जीवन के यथार्थ स्वरुप को उभारनेवाली कहानी है 'राएवाली' । इसमें स्त्री का दर्द भरा जीवन चित्रित है । सास और पति द्वारा प्रताड़ित कालिन्दी जीवन में दु:ख, व्यथा और वेदना को सहने में मज़बूर है । जब उसकी माँ की मृत्यु हो जाती है तब वह अत्यंत दु:खी हो जाती है । माँ की मृत्यु पर भी उसे घर जाने का इज़ाज़त नहीं दिया जाता क्यों कि घर में ढेर सारे काम पड़े होते हैं, साथ ही देवर की शादी भी थी । ढोलक अच्छी तरह बजाने के कारण ये भी उसके जिम्मे में आ जाता है । बेचारी कालिन्दी मन की व्यथा को मन में ही रखकर ढोलक लेकर खड़ी हो जाती है । कितना अमानवीय व्यवहार कालिन्दी के साथ हुआ है । माँ की मृत्यु पर भी उसे मायके नहीं जाने दिया जाता और कालिन्दी भी ऐसी है कि ससुरालवालों की बनायी लीक पर चलने को मज़बूर है । माँ की मृत्यु की वेदना के साथ ढोलक की धुन कितना विरोधाभास है । "कालिन्दी भी ढोलक छोड़ खड़ी हो गयी और सबके साथ मिलकर उसने वह चक्करदार लड़रिया नाच नचा कि सारी महफिल दंग रह गई । साथ उठी लड़कियाँ हॉफ गई लेकिन कालिन्दी नाचती रही, नाचती रही और तब तक नाचती रही जब तक नाचनेवालों के बीचों बीच गिरकर चारों खाने चित्त हो गई ।"[९४] पारिवारिक जीवन में खुद अपनी वेदना को सहकर दूसरों के सामने अपने परिवार को बिखराव और अनैक्य से बचाने का प्रयत्न करनेवाली कालिन्दी ठीक एक आदर्श भारतीय नारी का दृष्टान्त है । ममता कालिया के सारे के सारे स्त्री पात्र जो परिवार से जुड़े हैं, परंपरागत मूल्यों से बद्ध रहने में मज़बूर हैं । कोई भी पात्र मूल्यों को तोड़ने को तैयार नहीं । हो सकता है वे ऐसा इसलिए करते हैं ताकि परिवार बने रहे । लेकिन इससे स्त्री का व्यक्तित्व, उसकी भावनाएँ, उसकी इच्छायें बुरी तरह रौंधी जाती हैं ।

३.३ दांपत्य संबन्धी कहानियों में मूल्य परिवर्तन की दिशाएँ

स्त्री और पुरुष परस्पर पूरक है । एक के बिना दूसरे का कोई अस्तित्व नहीं । इसलिए स्त्री और पुरुष का संबंध अनिवार्य बन जाता है। डॉ. मंजु शर्म के अनुसार, "मानव समाज स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का एक समुच्चय है । अर्थात् स्वस्थ दांपत्य जीवन शिष्ट एवं विकसित समाज के लिए परम आवश्यक है । इसलिए कि समाज का आधार परिवार ही है। और उस परिवार की आधारभूत इकाई दांपत्य जीवन है । यानी पति-पत्नी संबन्ध मानवीय जीवन का एक अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण पक्ष है । यह मूल्यांकित भी किया गया है कि परिवार की निरन्तरता को बनाये रखने के लिए दांपत्य सम्बन्धों की अविच्छिन्नता अनिवार्य तथ्य है।"[९५] अर्थात् सृष्टि का अस्तित्व ही दांपत्य सम्बन्धों पर निर्भर रहता है ।

पति-पत्नी संबंध के परिवेश को समझकर उसे यथार्थ संवेदनाओं के साथ प्रस्तुत करने में ममता कालिया सिद्धहस्त है । वरिष्ठ आलोचक अखिलेश ने लिखा है - "अनोखा रंग है उनकी ऐसी रचनाओं का । पति भी प्यारे, सभ्य, सुशील और कमोवेश आधुनिक ख्यालों को। फिर भी स्त्री की ज़िन्दगी नरक बनी हुई है ।"[९६] दांपत्य संबन्धों के नये या परिवर्तित मूल्यों को ममता कालिया ने अपनी कहानियों में खूब चित्रित किया है । इसका उत्तम दृष्टान्त है 'मन्दिरा', 'लैला मजनूँ', 'काली साड़ी', 'एक अदद औरत' आदि आदि ।

३.३.१ पाश्चात्य सभ्यता के बीच पत्नी का व्यतिरेकी दृष्टिकोण

पति परायणता या पातिव्रत जैसे मूल्य आज के आधुनिक युग में भी समाज में प्रतिफलित होते हैं । आज की मध्यवर्गीय स्त्री कितनी भी स्वतंत्र, आत्मनिर्भर, पढ़ी-

लिखी, संपन्न क्यों न हों परंपरा की 'खोल' से मुक्त नहीं है । इस युग में भी त्याग, समर्पण, विश्वास, निष्ठा, प्यार आदि श्रेष्ठ मूल्यों पर विश्वास रखती है । यह विचार तो वास्तव में एक परिवर्तित मूल्य है । ममता कालिया की 'बड़े दिन की पूर्व साँझ' की नायिका 'मैं' के द्वारा भारतीय संस्कृति के मूल्यों की महानता को परखा जा सकता है । परंपरा के मूल्यों में जकड़े रहना उसके व्यक्तित्व की एक कमज़ोरी भी होती है । इस कहानी की नायिका बिल्कुल परंपरागत है । पुराने उसूलों को लेकर जीवन जीना वह सार्थक समझती है । एक हद तक यह सही भी है । आज के समाज में पाश्चात्य सभ्यता का इतना स्थूल प्रभाव पड़ा है कि स्त्रियाँ पुरुषों के समान ही पार्टियों में शराब पीकर नाचती गाती हैं । इसमें उसको कोई बुराई नज़र नहीं आती । इसे वे आधुनिकता का एक अंग मानती हैं । सच्चाई यह है इस तरह की रीतियाँ उच्छृंखलता को बढ़ावा देती हैं । इसकी नायिका पर-पुरुष के द्वारा नृत्य के लिए आमन्त्रित करने पर उसे यह कहते हुए नकारती है, "मैं उससे ज़्यादा अटपटी हालत में थी । मैं ने रुप की तरफ देखा, फिर उसकी तरफ । मैं ने निर्णयात्मक ढंग से कहा । मैं शादीशुदा हूँ ! यह मेरे पति है ।"[९७] यहाँ एक स्त्री का व्यक्तिगत विचार और दृढ़ अस्तित्व उजागर होता है । वैसे पार्टियों में डान्स करने से पातिवृत्त भंग नहीं होता लेकिन इसकी आवश्यकता नहीं है । यह हमारी संस्कृति भी नहीं है तो इसे बढ़ावा देने की आवश्यकता कतई नहीं है ।

दांपत्य जीवन में पति-पत्नी के बीच दृढ़, अटूट विश्वास और आदर भावों की ज़रुरत होते हैं जो वास्तव में उनके वैवाहिक जीवन की परिशुद्धता और आदर्श को कायम रखते हैं । लेकिन स्वतंत्रता के उपरान्त दांपत्य जीवन में विघटन की प्रक्रिया प्रबल और तीव्र होती जा रही है । आज विभिन्न सामाजिक, व्यक्तिगत, आर्थिक और भावात्मक कारणों से दांपत्य जीवन के बीच प्यार, आत्मीयता और समझौते का रुप लुप्त होता जा

रहा है । परस्पर वफादारी और विश्वसनीयता ही वह मूल्य है जो दांपत्यरुपी पवित्र इमारत का आधार शिला है । वैवाहिक जीवन की सफलता पूर्ण रुप से दम्पति के वैचारिक सामंजस्य और मानसिक नियन्त्रण पर आधारित है । दांपत्य जीवन में मधुरता रोमान्स प्रेम और विश्वास के होने पर वह सफल, संपन्न होता है नहीं तो क्या है ? दांपत्य अनेक तरह की असमानताओं, अनैक्यों, गलत फहमियों, विकृतियों, कुण्ठाओं का शिकार हो जाता है । ममता कालिया ने अपनी कहानियों में दांपत्य जीवन में प्रस्फुटित नये मूल्य को भी उजागर कर बताया है । आधुनिक युग में जहाँ अनेक मानवीय मूल्यों का विघटन हुआ है वहाँ कुछ नये मूल्य अस्तित्व में उपस्थित हुए हैं । 'एक अदद औरत' कहानी ऐसी स्त्री की व्यथा है जिसके पास शिक्षा है, जिसका समाज में आत्मसम्मान है बावजूद इसके परंपरागत स्त्रियों के समान पति की परछाई बनने को वह विवश है । यह आम मध्यवर्गीय स्त्रियों की मज़बूरी है। आत्मनिर्भर होने पर भी पति की परछाई बनना ही वह अपना धर्म मानती है । और सत्ताधारी पुरुष भी यही चाहता है कि पत्नी उसके पीछे-पीछे उसका अनुगमन करती रहे । 'एक अदद औरत' की नायिका भी पति की अनुगामिनी है । पति के पदचिह्नों पर चलने की इच्छा न होने पर भी वह अपने आपको समझाती है । "नहीं मुझे अपनी नाराज़ी नहीं दिखाती है एक आदर्श पत्नी की तरह ऊब को भी पतिव्रत का हिस्सा मानकर झेलना है, मुझे मुस्कराना है, मुझे खुश होना है, मुझे सहमति में सिर हिलाते चलता है ।"[९८] यहाँ एक आम स्त्री की मज़बूरी है जो परंपरागत मूल्यों के जकड़न में घिरी हुई है । परंपरागत मूल्यों को बनाये रखने के लिए, पति का प्रेम पाने के लिए, समाज को खुश करने के लिए वह ऐसा दोहरा व्यक्तित्व रखती है ।

अनैतिकता के बीच भी नैतिकता को महत्व देने का प्रयत्न काफी महत्वपूर्ण है । विशेषकर आज के उत्तराधुनिक संदर्भ में । आज के उत्तराधुनिक समाज में सारी

अनैतिकता जायज है । इसे आधुनिक लोग 'Modernity' मानते हैं । इस 'Modernity' के पीछे कई परिवार तबाह हो जाते हैं । 'अपत्नी' कहानी में दो अलग-अलग दंपतियों के जीवन के प्रति भिन्न दृष्टिकोण को उकेरा गया है । इसमें एक पति-पत्नी के जोड़ी परंपरा एवं मूल्यों को महत्व देती है । जैसे हरीश की पत्नी नैतिक मूल्यों का खण्डन करना नहीं चाहती है । परिवार को बनाये रखना और नैतिक स्कलन से उसकी रक्षा करना एक स्त्री का कर्तव्य होता है । हरीश की पत्नी नहीं चाहती कि उसका पति दोस्त के घर जाकर मस्ती करें । वह सोचती है इससे बेहत्तर वह घर में बैठकर कुछ बियर पिये । आज के जीवन का कटु यथार्थ यह है प्राय: मध्यवर्गीय परिवारों में शराब का एक अहम स्थान है । हँसी खुशी में, दु:ख व्यथा में हर तरह के उत्सवों में शराब का कसाब लिया जाता है । शराब ऐसी चीज़ है जो इन्सान की मति खराब कर देती है । कुछ लोग इसे दकियानूसी विचार मानते हैं । लेकिन यह सच है । आज के उत्तराधुनिक युग में पति-पत्नी दोनों 'social status' के नाम पर दूसरों के साथ ड्रिंक्स को इस्तेमाल करने का एक तरीका अपनाते हैं । लेकिन 'अपत्नी' में हरीश की पत्नी ऐसे उत्तराधुनिक माहौल के पीछे चलना नहीं चाहती है । कभी कभी इस ड्रिंक्स में जाने अनजाने बच्चे भी शरीक हो जाते हैं और अनहोनी बात घट जाती है । घर में ड्रिंक्स पार्टियों का आयोजन होता है जो वास्तव में पाश्चात्य सभ्यता से आयातित है । आयातित संस्कृति सदैव हानिकारक होती है ।

३.३.२ पति की समझौतापरक अन्तर्दृष्टि

आर्थिक कठिनाईयाँ आज के युग की एक बडी समस्या है । इसकी वजह से मानव मूल्यों का हनन होता है । सम्बन्धों में नये मूल्य निर्मित होने लगते हैं । 'काली साडी' में इसका यथार्थ चित्रण है । सफल दांपत्य के लिए परस्पर समझौता अनिवार्य है । इस कहानी की कल्पना एक साधारण स्कूल की अध्यापिका है और उसका पति विनोद

किसी कंपनी में काम करता है । वे अपने बच्चों के साथ एक सुखमय जीवन बिताते हैं । कल्पना अपनी सहेली के लिए एक काली साड़ी खरीदती है । पैसा विनोद देता है। विनोद एक समर्पित पति है । कल्पना अपने पति की महानता जानती है । एक संदर्भ में कहती है, "निःसन्देह उसे प्रथम कोटी का पति मिला है । औसत पतियों की तरह खर्च करते समय न वह झींकता है न झल्लाता है । परिवार के सामने अपनी ज़रूरतों को नगण्य समझता है । उसके कितने ही दोस्त पान-सिगरेट में भक् भक् नोट फूंकते हैं । वह इन सबकी ओर ताकता भी नहीं ।"[९९] आजकल अपना पुरुषत्व के ज़रिये स्त्री को दबाकर दिखाने का प्रयत्न करनेवाले पुरुषों से भी विनोद भिन्न है । "विनोद, सच कितना अच्छा है, हसरत और हौसले से भरा । किस कदर उसकी परवाह करता है, न कभी डाँट-डपट, न कमी शक-शुबहा । कल्पना थकी हो तो वह पाव रोटी खाकर सब्र कर लेता है और ऊबी हो तो उसे और बच्चों को लेकर ढाबे में खाना खा आता है ।"[१००] विनोद उन पुरुषों से भिन्न है जो स्त्रियों पर दबंग व्यक्तित्व दिखाते हैं । वास्तव में उस परिवार का सुख, चैन, समृद्धि विनोद के कारण है ।

दांपत्य जीवन का एक दूसरा रुप 'मन्दिरा' कहानी में चित्रित है । इसमें मन्दिरा अडतीस वर्ष की प्राध्यापिका है जो अपने शांत, सौम्य पति वाजपेयी से तंग खाकर अपने विभाग के सुविमल से रिश्ता जोड़ती है । उसके अन्दर एक अंधविशास घरकर जाता है कि उसका अपना आधा-अधूरा अपूर्ण जीवन सुविमल के साथ पूर्ण हो जायेगा । दूसरी ओर वाजपेयी पत्नी से बहुत प्रेम करता है । उसका अगाध विश्वास और स्नेहपूर्ण व्यवहार से पत्नी लज्जित होती है । एक संदर्भ में वाजपेयी अपने घर आये सुविमल बनर्जी को पान देकर कहता है – "मन्दिरा, मिस्टर बनर्जी की सूरत अपने शिशिर से मिलती है न कुछ कुछ । यह सच मानो जब ये अन्दर आये, एक मिनट को मुझे लगा अपना शिशिर आ

गया है । वह कहाँ आयेगा । अभी तो छुट्टियों में दो महीने बाकी हैं ।"[१०१] पति के उस वक्तव्य से मन्दिरा सकपका जाती है । उसे लगता है जिसके साथ वह सम्बन्ध जोड़ रही है वह डगमगा जायेगा । वाजपेयी के शांत सौम्य व्यवहार के कारण मन्दिरा के जीवन से एक बहुत बड़ा खतरा टल जाता है । वास्तव में दांपत्य जीवन की मज़बूती का पूरा दायित्व दंपति पर निर्भर रहता है । यहाँ पति के उत्तम मूल्य भावना से दांपत्य जीवन में आये वैमनस्य, घृणा सब दूर हो जाता है । 'मन्दिरा' कहानी इन्हीं बातों पर देखे तो दांपत्य जीवन का सशक्त दस्तावेज़ है ।

वैवाहिक जीवन में समझौता और पारस्परिक विश्वास काफी अभिलषणीय है । आज हर पति-पत्नी अपने आपको स्वस्थ और सुन्दर रखना चाहते हैं । इसके विरुद्ध किसी में कोई कमी हो तो वहाँ मनमुटाव, घृणा, अतृप्ति आना स्वाभाविक है । लेकिन ममता कालिया की 'अर्द्धांगिनी' कहानी एक रोगग्रस्त पत्नी के प्रति पति का प्रेम, समर्पण, त्याग, सहयोग आज के नये युग में एक मिसाल है । पत्नी रुपा वक्ष कैन्सर से पीडित है । रुपा के कुरुप हो जाने पर भी सौरभ उससे नफरत नहीं करता । यह आज के युग में एक नई दृष्टि है । रिसते हुए मूल्यों में नये मूल्यों की स्थापना करने में सौरभ जैसे लोगों के दृष्टिकोण सार्थक बन पड़ता है । एक संदर्भ में वह कहता है – "रूप हमें क्या फर्क पड़ता है इस बात से । मेरे लिये तो सबसे ज़रुरी है कि तुम एकदम स्वस्थ रहो। तुम्हारा जीवन बना रहे । रही बात सौन्दर्य की तो तुम्हें मैंने दिन के प्रतिपल सबसे सुन्दर माना है । यही मैं मानता भी रहूँगा । सर्जरी और नो सर्जरी । ज़रा सोचो, तुम्हारे बिना मेरी ज़िन्दगी की कोई तस्वीर अब बन सकती है, नहीं न ।"[१०२] यहाँ सौरभ पत्नी को एक उपभोग की वस्तु नहीं मानता । उसके लिए पत्नी जन्म जन्मान्तर की साथी है । स्त्री देह को मात्र देखनेवाला एक पति होता तो उसमें अतृप्ति, निराशा जैसे भाव प्रकट होते ।

लेकिन वह उन गर्हित पुरुषों में से नहीं जो देह मात्र को नारी या पत्नी समझे । क्योंकि आज स्त्री देह पुरुष को इतना आकर्षित करता है । लेकिन नये मूल्य बोध के कारण पत्नी पति के लिए एक वस्तु बन जाती है । सौरभ का पत्नी के लिए आकर्षण और हमदर्दी मानवीयता की गहराई को बताते हैं। ओपरेशन के समय वह ढाढ़स देकर कहता है "यह शल्यक्रिया हमारे तुम्हारे कल्याण के लिए है ।इससे तुम्हें नई आयु मिलेगी, मेरे घर को देवी का वास मिलेगा और हम दोनों को बडों ने जो आशिष दिये थे, वे अटूट और अनंत सिद्ध होंगे ।"[१०३] सौरभ एक समझदार आदमी है इसलिए उसके सोच-विचार बहुत 'logical' है । वह सोचता है यदि किसी हादसे में अगर उसे कुछ हो गया होता तो पत्नी उसके प्रति कैसा बर्ताव करती ? ऐसे संदर्भ में पत्नी जब रोगग्रस्त हो जाती है तब उसका कर्तव्य है पत्नी का देखभाल करना । यह कहानी आज के स्वार्थ भरे युग में परंपरागत मूल्यों का महत्व देती है । आज के बदलते युग में सौरभ जैसे लोगों की कमी है । लेखिका सौरभ के द्वारा परिवर्तित नये समाज को नया दृष्टिकोण प्रदान करती है ।

दांपत्य जीवन के समझौतापरक सिद्धान्त पर आधारित कहानी है 'मुहब्बत से खिलाइए' । इसमें दो अलग दंपतियों का चित्रण है । मेहत्ता और बकुल बहुत ही स्नेह समर्पण और समझौता पूर्ण जीवन निर्धारित करते हैं । दूसरी ओर सुरेन्द्र-अमिता दंपति छोटी छोटी बातों पर नाराज़ होते हैं । एक संदर्भ में अमिता की नाराज़गी पर मेहत्ता कहता है – "मेरी बहन भी बहुत जल्द बुरा मान जाती है । देखा जाय तो जीवन में सेंस ऑफ ह्यूमर का होना बहुत ज़रुरी है । तब बकुल कहती है – हमें तो न जानें ज्यों कुछ भी बुरा नहीं लगता । कोई कुछ कह दे फर्क नहीं पड़ता ।"[१०४] यहाँ लेखिका ने दांपत्य जीवन के छोटे-छोटे उलझनों को सुलझाने का एक उपाय बताया है । आधुनिक जीवन में पति-पत्नी नये मूल्यों से आच्छादित होने के कारण छोटी-छोटी बातों पर झगड़ा, बहस, वाद-

विवाद करते हैं । कभी कभी छोटी सी बहस तलाक तक पहुँचती है । ऐसे संदर्भ में हमें कुछ परंपरागत होकर सोचना अनिवार्य लगता है । इससे मूल्य भी बने रहते हैं और परिवार में खुशहाली भी होती है । यहाँ मेहत्ता बकुल दंपति के दांपत्य जीवन में समझौतापरक दृष्टिकोण मौजूद है ।

'रजत जयन्ती' कहानी यह संदेश देती है कि वैवाहिक जीवन में 'अडजेस्टमेंट' की काफी ज़रूरत है । नहीं तो दांपत्य जीवन का 'ताशमहल' गिरने लगता है । यहाँ लेखिका बदलते माहौल में जीनेवाले नये दंपतियों को एक संदेश देती है कि "अगर पहला बरस सही सलामत बीत जाये तो फिर रजत जयन्ती, स्वर्ण जयन्ती, हीरक जयन्ती मनाने में बहुत मेहनत नहीं लगती ।"[१०५] दांपत्य जीवन में तकरार तो होते रहते हैं लेकिन उस तकरार के बीच भी प्रेम पनपता है । तभी वह संबन्ध मज़बूत हो जाता है । एक झगड़े में संबन्ध तोड़ना आसान है लेकिन तकरार होने के बावजूद भी रजत जयन्ती, स्वर्ण जयन्ती और हीरक जयन्ती मनाने में ही जीवन की सार्थकता है ।

दांपत्य संबन्धों में तनाव की अवस्था एक नयी स्थिति नहीं है । तनाव की स्थिति समझौते के अभाव में स्पष्ट होती है । 'तस्की को हम न रोये' कहानी में ऐसे तनावग्रस्त जीवन का चित्रण है । इसके दंपति के जीवन में तनाव आते जाते रहते हैं । फिर भी वे आदर्श दंपति के रूप में जीवन जीते हैं । उदाहरण के तौर पर जितेन्द्र बत्ती बुझाने के पहले निहायत कटखती आवाज़ में कहता है, "मुझे पता है, तुम सो नहीं रही हो, तुम मुझसे लड़ने के लिए अपने पंजे पैने कर रही हो ।"[१०६] लाख विपरीत कोशिश के बावजूद भी आशा की आवाज़ फौरन बुलन्द हो गयी और कहती है, "तुमसे लड़ने से कहीं अच्छा है कि मैं काठ के किवाड़ों पर सर पटकूँ, वे तुमसे ज़्यादा संवेदनशील होंगे । तब जितेन्द्र कहता है, माय हार्ट ईस बीटिंग ..... आशा कहती है , माय हार्ट ईस नोट

बीटिंग ।"[१०७] ऐसी छोटी छोटी अप्रियतापूर्ण बातें कहने पर भी सबेरे छह बजे चाय की ट्रे हाथों में लेती हुई आशा पति के सामने उपस्थित होती है । झगड़ा, मनमुटाव, वैमनस्य आदि आदि वैवाहिक जीवन के संतत सहचर है । लेकिन दीर्घकाल तक ऐसे विरोधी भावों से चिपके रहना सही नहीं है । मूल्यों को संरक्षित कर जितेन्द्र और आशा ज़िन्दगी को नवीनता से भरने का प्रयत्न करते हैं ।

आज विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और भावात्मक कारणों से दांपत्य सम्बन्धों के बीच प्रेम समर्पण, आत्मीयता ये सारे मूल्य नष्ट हो रहे हैं । 'प्यार के बाद' ऐसी ही एक कहानी है जिसमें पति पत्नी अपने आर्थिक स्तर को लेकर बेचैन है । जो 'महंगाई भत्ता' पत्नी को मिलता है वह उस रकम बैंक में डेपोसिट कर अपना बैंक बालन्स बढ़ाना चाहती है । लेकिन पति उस रकम को खर्च करना चाहता है । दांपत्य जीवन में खुशहाली बनाये रखने और पति को तृत्प करने के लिए पत्नी एक टेपरिकार्डर खरीदकर लाती है । जीवन में सुख चैन बनाये रखने के लिए पति-पत्नी के बीच कुछ त्याग मनोभाव का होना अनिवार्य है ।

'उपलब्धि' कहानी में भी दांपत्य जीवन की चर्चा हुई है । चेतन-प्राची को जीवन में तनावपूर्ण स्थितियों से गुज़रना पड़ता है । सांप्रदायिक दंगे फसाद में भी उनका बेटा बबलू सुरक्षित है । दांपत्य जीवन की पूर्णता संतान पर निर्भर है । जब बबलू सुरक्षित मिलता है तब चेतन को लगता है – "उसका कोई नुक्सान नहीं हुआ है । उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि तो उसके पहलू में है ।"[१०८]

'रोश्नी की मार' कहानी अछूत समस्या से जुड़ी हुई है । कहानी का तिवारजी शिक्षित एवं शिक्षा विभाग में काम करते हैं । इसलिए कि वह अछूत जैसी

समस्या का विरोध भी प्रकट करता है । लेकिन कभी कभी दांपत्य जीवन में तिवारजी को अपने आदर्श भाव को छोड़ना पड़ता है । जब पत्नी तिवारिनजी बेहोश हो जाती है तब उसकी सेवा घर की निम्नजातीय बिटिया करती है । यह सत्य तिवारजी को पत्नी के सामने छिपाना पड़ता है । क्योंकि पत्नी इस यथार्थ हालत को झेल नहीं पायी । दांपत्य जीवन की दृढ़ता को बनाये रखने के लिए पति को पत्नी के सामने कुछ सच्चाईयों को छिपाना पड़ता है । यहाँ तिवारिन जैसे औरतें हमारे समाज में है जो परंपरागत मूल्यों से चिपकी रहती है कभी-कभी हालात ऐसे होते हैं कि मृत्यु शैय्या पर पड़े ब्राह्मण को तुलसी जल देने के लिए उसका अपना नहीं बल्कि कुछ निचले वर्ग का आता है । यह हमारे समाज का एक जीवन्त सत्य है । कहने का तात्पर्य यह है कि बदलते हुए माहौल के साथ इन्सान को नयी जीवन दृष्टि और नये मूल्यों को अपनाने की ज़रूरत है ।

३.३.३ पति पत्नी के विचारों में आये परिवर्तित दृष्टिकोण

दांपत्य जीवन में परस्पर आदर्शपूर्ण प्रेम होने से प्रतिकूल परिस्थितियों में भी प्रेम बना रहता है । अन्यथा संबन्ध में तकरार उत्पन्न हो जाता है । 'अट्ठावनवाँ साल' में पति-पत्नी में परिवर्तित नये मूल्य देखने को मिलते हैं । बहुत लंबे समय तक अपनी पारिवारिक ज़िन्दगी को भूलकर नायक 'डी.के' अपना सारा यौवनकाल कंपनी की तरक्की में लगा देता है । कंपनी की बिक्री बढ़ाने में वह इस कदर डूबा रहता है कि पत्नी और बच्चों को भी अपना बहुमूल्य समय नहीं दे पाता । कंपनी की परंपरागत रीति के अनुसार अवकाश पत्र पाकर वह एकाएक निराशा या व्यर्थता बोध से ग्रस्त हो जाता है । उसकी आँखों में निराशा की एक महीन परत फैल जाती है । ऐसी दुरुस्त हालत में पत्नी का इत्मीनान और प्रेमपूर्ण व्यवहार उसे निराशा से उबारता है । पत्नी कहती है – "अच्छा

चलो मान लो सब मतलबी है, सब स्वार्थी । पर हम दोनों हैं ना ? सुषमा ने उनके माथे पर हाथ फेरते हुए कहा ।"[१०९] पत्नी का स्नेहिल व्यवहार से उसके मन में आशा की किरण फूटती है । उसे लगा कि अभी बहुत कुछ करने को बाकी है । दांपत्य जीवन का नया स्वरुप परिवर्तित नये विचारों से एक नयी दिशा की ओर बढ़ने लगता है ।

'अट्ठावनवाँ साल' शीर्षक कहानी प्रतीकात्मक है । जो सभी सरकारी कर्मचारियों के 'रिटयेड' होने का संकेत देती है । कुछ कर्मचारियों के लिए अवकाश प्राप्त होना बहुत दु:खदायी होता है । और कुछ लोग उसे स्वाभाविक रुप में ग्रहण करते हैं । अवकाश प्राप्ति का समय वास्तव में कर्मचारियों के जीवन में एक परिवर्तित नया मूल्य है । उस परिवर्तित नये स्वरूप से दु:खी हुए बगैर व्यावहारिक रुप में बेहिचक स्वीकार कर लेना है । क्योंकि ये सभी सरकारी कर्मचारियों के लिए एक अनिवार्य सत्य है ।

'काली साड़ी' जैसी कहानियों से भिन्न है 'फिर भी प्यार' की कथावस्तु । आकाश और वहनी पति-पत्नी हैं । आकाश आम पुरुषों की तरह यायावर वृत्ति का है । आम पुरुषों की तरह वह नहीं चाहता कोई उसकी यायावरी पर प्रश्न करें । दूसरी ओर वहनी स्वतंत्र विचारोंवाली, अस्तित्व पर विश्वास रखनेवाली स्त्री है । वह आम स्त्रियों से भिन्न स्वतंत्र रुप में जीवन सम्हालना चाहती है । आत्मनिर्भर होने के लिए वह नृत्य सीखती है और नृत्य का स्कूल भी संचालित करती है । पति आकाश के संकीर्ण विचारों से वह आहत होती है । कभी-कभार वह सोचती है क्यों आकाश परिवर्तन लाना नहीं चाहता ? क्यों उसे घर के खूँटे से बंधा रखा ? यहाँ लेखिका ने आम मध्यवर्गीय जीवन मूल्यों को उजागर किया है । हर मध्यवर्ग का पुरुष स्त्री को घर के खूँटे में बांधे रखना चाहता है । खुद कीचड में पाँव डालकर पानी देखने पर उसे साफ कर देता है, यह स्वतंत्रता वह पत्नी को कतई नहीं देता । यह हमारी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें पुरुष

को हर तरह की स्वतंत्रता है और स्त्री दायराबद्ध है । यहाँ वहनी दरअसल आधुनिक युग की युवतियों के लिए एक प्रेरणास्रोत है क्योंकि उसका व्यक्तित्व बर्हिमुखी है ।

आजकल के इस नवविकसित समाज में भी दांपत्य जीवन में परस्पर धारणा एवं विश्वास की कमी अत्यंत खौफनाक ढंग से प्रकट होती है । 'उत्तर अनुराग' की रेणु पति के प्रति शंकालु होने के कारण तनावग्रस्त रहती है। तनावग्रस्त रहना मानव की सबसे बड़ी कमज़ोरी है । इससे तन, मन बेचैन हो जाता है । रेणु भी कुण्ठित भावनाओं को लेकर तनवग्रस्त रहती है जिससे असमय उसकी मृत्यु हो जाती है । रेणु का पति खन्ना एक समर्पित पति है लेकिन रेणु पति के प्रेम को महसूस नहीं करती । रोगशैय्या में पति का हाथ पकड़कर वह कहती, "मैं मर जाऊँ तो दुखी मत होना । दूसरी शादी कर लेना तब खन्ना जी कहता है, "पागली मैं अब बेटों की शादी करूँगा कि अपनी ?"[११०] आम तौर पर दूसरी शादी की दिक्कत खन्ना को नहीं है लेकिन खन्ना दूसरी शादी को तैयार नहीं, वह अपनी पत्नी की तस्वीर को देखकर कहता है "सुनो सूज़ी को वापस कलक्कते भेज दिया है, अब तो तुम खुश हो ना ।"[१११] वह अपनी पुरानी आदतें छोड़ देता है जिसको लेकर रेणु नाराज़ होती थी । रेणु की मृत्यु के बाद एक आदर्श विधुर बन जाता है । उसकी सारी इच्छा की पूर्ति भी करता है । कभी-कभी परिस्थितियाँ इन्सान के जीवन में परिवर्तन लाती है । यहाँ खन्ना के जीवन में भी रेणु की असमय मृत्यु उसके व्यक्तित्व को परिवर्तित कर देता है ।

आज के आधुनिक समाज में विवाहेतर प्रेम संबन्ध में पति-पत्नी अपने अकेलापन की ऊब को दूर करने की कोशिश करते हैं । 'लगभग प्रेमिका' की सुजाता भी अकेलापन की व्यथा को मिटाने के लिए एक व्यक्ति से प्रेम करती है । सुजाता का प्रेम पति के अभाव में समय काटने का एक आधार मात्र है जिसमें स्थायित्व नहीं है । प्रेम की

स्थूलता तब स्पष्ट होती है जब दूर देश से पति का पत्र आता है । पति का पत्र आते ही सुजाता अपनी प्रेम संबन्ध को कच्चे तन्दु की तरह काटकर पतिदेव की ओर भागती है । वह कहती है, "अस्वाभाविक और अप्राकृतिक रिश्ते मुझे कभी अपील नहीं करते, चाहे वे कितने ही आधुनिक ढंग से प्रस्तुत किये जाये । मेरे सिर में दर्द होने लगा ।"[११२] सुजाता जैसी स्त्रियाँ अपने पति के प्रति जिम्मेदार होती है न परिवार के प्रति । चंचल मानसिकता इनकी कमज़ोरी होती है । हमारे समाज में सुजाता जैसी स्त्रियों की संख्या नये मूल्यों को लेकर बढ़ रही है । यह वास्तव में खतरे की निशानी है ।

प्रगतिशील समाज में समय के साथ साथ सामाजिक रीति रिवाज़ में बदलाव आता रहता है । 'जितना मैं तुम्हारा हूँ' का रघु परंपरागत मूल्यों को ठुकराकर घरवालों की इच्छा के विरुद्ध श्वेता से शादी करता है । यह नयी पीढ़ी के आत्मधैर्य की निशानी है । श्वेता को रघु के घरवाले अपने परिवार में स्वीकार कर लेते हैं । संयुक्त परिवार होने के कारण श्वेता को कुछ कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है । अपनी माँ को खुश करने के लिए रघु एक आदर्श बेटे का रोल अदा करता है । माँ के सामने श्वेता को डाँटता है बाद में अकेले में सतं की तरह श्वेता को धैर्य दिलाता है । श्वेता दांपत्य जीवन को दृढ़ करने के लिए ऐसे हल्के माहौल को भी स्वाभाविक रुप में लेती है । क्योंकि शादी हुए एक साल ही हुआ है । दांपत्य जीवन को दृढ़ और स्वस्थ बनाने के लिए परस्पर त्याग मनोभाव का होना अनिवार्य है । इसलिए श्वेता अपने आक्रोश के उबाल को नववधु की तरह ढक कर सौम्य बन जाती । परेशानियों में भी अपने आप को नियन्त्रित करती है । श्वेता जैसी व्यावहारिक बुद्धि रखनेवाली स्त्रियाँ नये दृष्टिकोण से जीवन मूल्य बनाने में सक्षम होती है ।

दांपत्य जीवन के सुनहरे भविष्य की ओर संकेत देनेवाली कहानी है 'लैला

मजनूँ'। आजकल सफल दांपत्य के लिए कुछ न कुछ त्याग करना ज़रुरी है । इस कहानी की शोभा विवाह के बाद अपने जिम्मेदारियों से भागती नहीं है । वैसे यह स्त्री का कर्तव्य बनता है विवाह के बाद परिवार को संभालें । विवाह के पश्चात् बच्चे होंगे, परिवार बढ़ेगा, समस्यायें होंगी, ऐसे संदर्भ में एक स्त्री किस प्रकार अपनी व्यावहारिक बुद्धि के बल पर परिवार को समेटती है, यह सोचने की बात है । स्त्री शक्ति का नारा लगाकर कुछ स्त्रियाँ अपने दायित्व से पलायन करती है, जो एक प्रकार की कायरता है । स्त्री शक्ति का यह अर्थ नहीं है कि वह अपने पति, बच्चे, परिवार से कटकर अपना निजी अस्तित्व बनाये रखें । परिवार से जुड़कर ही स्त्री का अस्तित्व बनता है । इस कहानी में शोभा ऐसी एक सार्थक स्त्री है जो तकलीफों के बीच भी समझौता कर परिवार की खुशी के लिए समय निकालती है । "वह अपने प्रथम कोटि के दिमाग को तृतीय कोटि के कामों में लगा, वह अपनी समस्त प्रतिभा मटर, पनीर में झोंककर सहनशक्ति का सलाद और रचनात्मकता का रायता परोस स्वयं को धन्य मानती । काम के कुचक्र में से फुरसत के क्षणांश में वह पंकज से प्रेमपूर्वक व्यवहार करने का प्रयत्न करती है ।"[११३] शोभा जैसी स्त्रियाँ स्त्री शक्ति के नाम पर उच्छृंखल हो रहे स्त्री वर्ग को नये मूल्यों का नया राह दिखाती है । ये नये मूल्य परिवार को तोड़ने का नहीं जोड़ने का काम करता है ।

विभिन्न मानवीय संबन्धों में से पति-पत्नी संबन्ध सर्वाधिक घनिष्ठ, दृढ़ एवं स्थायी होते हैं । प्रमुख आलोचक राजेन्द्र यादव के अनुसार, "व्यक्ति व्यक्ति के संबन्धों में सबसे अधिक जटिल, नाटकीय और अनिवार्य संबन्ध स्त्री-पुरुष का आपसी संबन्ध है । इसलिए वही लेखक को असाधारण रुप से आकर्षित भी करता है । मानवीय भावनाओं के तीव्रतम आलोड़न किसी हद तक खतरनाक उथल-पुथल इसी संबन्ध के आसपास बुने जाते हैं ।"[११४] स्त्री पुरुष दोनों परस्पर मिले तो पूर्ण है नहीं तो अपने आप में वे अपूर्ण

हैं । विवाह का अर्थ है कुछ लेना और देना । उसमें समर्पण भावना की ज़रुरत है । ममता कालिया की 'गुस्सा' कहानी में वृद्ध दंपति के जीवन की घटनाओं का वर्णन है । उनके दोनों बेटे अपने वृद्ध माँ-बाप के प्रति कोई चिन्ता न करके अपनी पत्नियों और नौकरियों में मशहूल रहते थे । बहुओं के संकुचित व्यवहार से माँ अत्यंत बेचैन होती है । माता-पिता के प्रति बेटे और बहुओं का व्यवहार असंतोषजनक होने के बावजूद भी वृद्ध पिता इन ज़्यादतियों को मुस्कराकर नज़रअन्दाज़ करता है । वह पुत्र के प्रति स्नेहिल संबन्ध रखना चाहता है । "पति को न बेटों से शिकायत थी, न बेटों की बीवियों से । वे अपने तरफ से हर महीने उन्हें चिट्ठी लिख दिया करते थे, बिना यह हिसाब किया कि पिछली चिट्ठी का जवाब आया या नहीं। वे बच्चों से कोई अपेक्षा नहीं रखते थे । बल्कि वे अब भी यही सोचते थे कि उन्हें बच्चों के लिए कुछ न कुछ करते रहना चाहिए ।"[११५] क्योंकि पिता एक समर्पण प्रधान व्यक्तित्व का मालिक है । साधारण तौर पर बच्चों को कुछ देने की चिन्ता पिता से भी अधिक माँ पर होती है लेकिन यहाँ बीमा का रकम देने में पिता तत्पर है, माँ घोर अतृप्ति प्रकट करती है । अंत में पति को पत्नी के गुस्सैल स्वभाव की वजह से घर छोड़ना पड़ता है। बहुत दिनों के बाद भी वापस न आने के कारण पत्नी की मानसिकता में कुछ परिवर्तन आता है । 'अर्थ' पर जमी रहनेवाली पत्नी को लगने लगता है पैसा उसके लिए अर्थहीन है । बेटों के साथ जाने के लिए भी वह तैयार नहीं । वह पति के प्रति इन्तज़ार करता है । उसे पूर्ण विश्वास है कि "जब भी उनका क्रोध शांत होगा वे इसी घर में आयेंगे ।"[११६] वह सोचती है आखिर मैं ने क्या गलती की ? इसलिए वह निरन्तर प्रतीक्षारत रहती है । माँ का दृष्टिकोण परिवर्तित हो जाता है । इस कहानी में माँ का दृष्टिकोण सशक्त है । आधुनिक समाज में यह देखा जाता है बच्चे बाँ-बाप से सबकुछ ऐंठकर उसे लावारिस वस्तु की तरह फेंक देते हैं । इस कहानी में माँ लावारिस

बनना नहीं चाहती । वह दुनियादारी से वाकिफ है । नये समाज के नये मूल्यों से परिचित होने की वजह से ही माँ अपने निर्णय पर अडिग रहती है । इसका यह अर्थ नहीं है कि उसे अपनी संतानों से प्यार नहीं है ।

सफल दांपत्य जीवन के लिए आवश्यक मुद्दों को लेकर डॉ. मधु संधु कहता है, "नये मूल्य किसी नियतिगत अथवा सांसारिक क्रूरताओं के प्रति कुंठित होने के लिए मनुष्य को अकेला नहीं छोड़ते ।"[११७] 'दांपत्य' कहानी में आलोक और सुनिता किसी न किसी तरह दांपत्य के बीस साल गुजारते हैं । हर बात पर फायदे नुकसान का हिसाब करनेवाली पत्नी के साथ आलोक वैवाहिक जीवन में कुछ परिवर्तन लाना चाहता है । "उसको लगा उसका दांपत्य जीवन बहुत गलत चल रहा है । इसे सुधारने के लिए उसे एक नया बीस सूत्र कार्यक्रम तैयार करना होगा । फिर उसने सोचा अपने बीस साल पुराने दांपत्य जीवन पर इतनी माथापच्ची उसे गंवार न हुई । बहरलाल सहमति, सहयोग, संजीदगी और सहनशक्ति जैसे कुछ शाश्वत सूत्र सोचते हुए वह सो गया।"[११८] अनेक तरह की असहमति होने के बावजूद भी आलोक अपने दांपत्य जीवन को सुचारु रुप से चलाने की कोशिश करता है । दरअसल दांपत्य जीवन की सुरक्षा एवं परिरक्षा के लिए पति-पत्नी के बीच परस्पर प्यार और दृढ़विश्वास का होना ज़रुरी है । आज के युग में पति-पत्नी के बीच ऐसी स्थिर भावना नहीं है । इसी कारण दांपत्य जीवन के पुराने मूल्य बिख्रर रहे है और नये मूल्य स्थायित्व को प्राप्त कर पाने में असमर्थ सिद्ध हो रहे है ।

नारी में आये बदलाव का उत्तम दृष्टान्त 'इरादा' कहानी में दृष्टव्य है । 'इरादा' कहानी में ममता कालिया ने दोहरी मानसिकता को ली हुई स्त्री का चित्रण किया है । शांति का व्यक्तित्व दोहरा है । कभी वह अपने परिवारवालों के प्रति समर्पित होती है जो स्वाभाविक भी है । परिवारवालों के प्रति ऐसे समर्पण को देख्रकर पति और सास

सोचते हैं कि उसके घर में उसे किसी और से नाजायद संबन्ध है । एक बार शांति की माँ के बीमार पड़ने पर वह माँ को देखने जाना चाहती है । पति के मना करने पर उसे दुःख होता है । उसे लगता है पति के यहाँ भी उसे अपनी जिम्मेदारी है । सास को देखना, पति की सेवा करना, घर को संभालना आदि आदि । वह एक आदर्श भारतीय नारी का लबादा ओढ़कर पति से कहती है, "तुम नहीं चाहते मैं घर जाऊँ, लो मैं नहीं जाती । अब तो खुश हो ।"[११९] लेकिन दूसरे ही पल उसका अन्तरमन विद्रोह कर उठता है । वह सोचती है मैं अबला नहीं हूँ सबला हूँ । मेरा भी अपना अधिकार है । उस अधिकार बोध के साथ वह अपने मन को परिवर्तित कर देती है । वह अधिकार बोध उसके अंदर नारी चेतना को जागृत करता है । वह निस्पन्द खड़े होकर पति से कहती है – "रात मैं ने सोचा था, मैं नहीं जाऊँगी पर अब मेरा इरादा बदल गया है । मैं अगली गाड़ी से जा रही हूँ अब तुम्हारा दिमाग एकदम ठीक हो जाएगा तभी वापस आऊँगी ।"[१२०] शांति के विचारों से स्पष्ट होता है कि उसके मन के किसी कोने में पति के प्रति असीम प्यार है और यह स्वाभाविक सत्य भी है । पति पत्नी के बीच जाने अनजाने उलझनों की कुछ स्थितियाँ उभरती हैं । बावजूद इसके उनके मन में अनदेखा चाह भी रहता है । यही चाह शांति में देखा जाता है ।

३.४ अविवाहित नौकरीपेशा स्त्रियों का नया मूल्य बोध

आज अधिकांश लेखिकाओं की कलम अविवाहित नौकरी पेशा स्त्रियों की ज़िन्दगी पर ही फोकस करती है । ममता कालिया की कहानियों में भी ऐसी स्त्रियों का चित्रण बहुत हुआ है । आज के विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों से गुज़रते वक्त विवाहित या अविवाहित स्त्रियों को अनेक तकलीफों का सामना करना पड़ता है । लेकिन ऐसी हालत में भी अपने में जो मूल्य का अमूर्त भाव है उसे बनाये रखने का प्रयत्न भी वे करती

रहती हैं । ममता कालिया ने अपनी कुछ कहानियों में अविवाहित नौकरी पेशा स्त्रियों में जागृत नये मूल्यों का चित्रण बारीकी से किया है ।

३.४.१ पुरुषों के प्रति भिन्न दृष्टिकोण

'ज़िन्दगी सात घंटे बाद की' कहानी की आत्मीया सेन एक अविवाहित नौकरी पेशा स्त्री है । वह दिन के सात घंटों को महत्वपूर्ण मानती है । क्योंकि दफ्तर में बिताये जानेवाले इन सात घंटों में वह अपने आपको वहाँ के जिम्मेदारियों के प्रति 'equipped' रखती है । एक अविवाहित स्त्री का इतनी आत्मीयता के साथ दायित्व को निभाना उसके व्यक्तित्व में निहित नया मूल्य बोध है । लेकिन इन सात घंटों के बाद उसे अकेलापन सताने लगता है । ऊब, शून्यताबोध, अकेलापन जैसे विकृत भाव से उसका व्यक्तित्व कुण्ठित होने लगता है । यह स्वाभाविक भी है । अविवाहित नौकरीपेशा स्त्रियों की ज़िन्दगी में इस तरह की शून्यता उनके व्यक्तित्व को कुण्ठित कर देती है । लेकिन परिवर्तित मूल्य बोध उसके व्यक्तित्व को शोभायित करती है । साथ ही उसके व्यक्तित्व में यौन कुण्ठा की स्थिति नहीं है । "सेक्स आत्मीया की प्रॉब्लम नहीं थी, इसने उसे कभी आक्रान्त नहीं किया । लोगों से काम लेते-लेते, आर्डर देते, मेमो 'इशु' करते करते, पुरुष जो उसके लिए महज़ वर्कर रह गया था । यह पता होते हुए भी ब्लाउज़ से निकली कमर और 'नैक' के नीचे का कसाव परख गुप्ता और चन्दन उम्र का अन्दाज़ लगाया करते हैं । उसे कोई जिज्ञासा या वितृष्णा नहीं होती थी ।"[१२१] यहाँ ममता कालिया ने आम नौकरी पेशा स्त्रियों की समस्याओं को उजागर किया है । आत्मीया सेन की वैयक्तिक समस्याओं का अपना एक मनोवैज्ञानिक आधार है ।

आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई 'सीट नं छह' में एक अविवाहित कॉलेज प्राध्यापिका की रेल यात्रा में पुरुषों के प्रति पूर्वधारणा में आये परिवर्तन को चित्रित किया

गया है । यात्रा के बीच एक दंपति डिब्बे में घुस आती है । पत्नी की स्थूलकाया है, उसका पूरा शरीर प्राध्यापिका के पैरों पर छा जाता है । प्राध्यापिका को उसके इस बर्ताव से गुस्सा आता है । लेकिन मोटी औरत के पति के विनयपूर्ण बातों से उसे कुछ तसल्ली होती है । सुबह के समय बिस्तर बाँधे वक्त वह आदमी प्राध्यापिका से पूछता है – "क्या मैं आपकी मदद कर सकता हूँ ।"[१२२] उसी समय अचानक प्राध्यापिका का पैर कहीं फिसल जाता है मोटी औरत का पति उसे संभाल लेता है और उसकी कलई पर आये खरोंच पर रुमाल भिगोकर पोंछता है । इस तरह एक अनजान पुरुष की आत्मीयता को देखकर प्राध्यापिका का पुरुषों के प्रति पूर्वधारणा बदल जाती है । वैसे किसी के प्रति इस तरह की पूर्वधारणा रखना ठीक नहीं है । लेकिन साधारणतः यह देखा जाता है अविवाहित स्त्रियाँ पुरुषों को लेकर इस तरह की पूर्वधारणा से ग्रस्त रहती है, यह स्वाभाविक भी है ।

स्त्री के यथार्थ रुप को अभिव्यक्त करने में ममता कालिया सिद्धहस्त है । प्रगतिशील आधुनिक युग में प्रत्येक मानव नवीन और पुरातन के मध्य संघर्षरत है । 'फर्क नहीं' कहानी की नायिका घर में पिताजी, माँ और बाबा के साथ एक बन्दनयुक्त जीवन बिता रही है । घर के घुटन भरे वातावरण से तंग आकर वह अपने घर में किराये में रहनेवाली प्रमीला अरोड़ा के पास पहुँचती है । वह हिन्दी निदेशालय में रिसर्च असिस्टेण्ड है । उसके साथ कुछ क्षण तक बैठना उसको अच्छा लगता है । क्योंकि "प्रमीला की आत्मनिर्भरता मुझे प्रभावित करती । उसका उजला चेहरा, बढ़िया साडी, कमरे की पीली रोशनी में एक खूबसूरत विरोधाभास बन जाती । हम लोग ट्रांजिस्टर पर विज्ञापनों का आनन्द लेते, फिर घूमने निकल जाते ।"[१२३] यहाँ प्रमीला के स्वतंत्र व्यक्तित्व और अस्तित्व को देखकर नायिका अपने व्यक्तित्व को नये सिरे से ढालना चाहती है । अपने अन्दर्निहित

जड़ता को तोड़ना चाहती है । आत्मनिर्भर होकर अपने व्यक्तित्व को दृढ़ करने की कोशिश भी करती है । वैसे नौकरीपेशा स्त्रियों में एक अस्तित्व बोध होता है । उनकी ज़िन्दगी, रहन-सहन, व्यवहार आदि में एक आत्मविश्वास की भावना होती है । जीवन में आत्मविश्वास का होना आवश्यक है । क्योंकि यह जीवन के नकारात्मक मूल्यों को तोड़ने में सक्षम है ।

३.४.२ वैवाहिक जीवन के प्रति अलग सोच

विकास के उत्तुंग शिखर की ओर अग्रसर होनेवाले इस युग में स्त्री भी संघर्ष कर आगे बढ़ना चाहती है । 'प्रतिप्रश्न' कहानी में महिमा नामक अविवाहित नौकरी पेशा स्त्री के वैचारिक मानसिक संघर्ष प्रस्तुत किया गया है । 'महागौरी' पत्रिका में काम करने वाली महिमा को अपने सहेलियों की वैवाहिक जीवन की समस्याओं को देखकर अपना अविवाहित जीवन काफी नफीस एवं श्रेष्ठ लगता है । उसे लगता है - "अविवाहित रहने की अपनी स्थिति वरदान स्वरुप लगती । वैसे भी वह एक अदद पुरुष की सेवा में अपने जीवन का संपूर्ण समर्पण सोच भी नहीं सकती थी । उसे विवाह की संरचना सामंती दिखाई देती जिसमें पति-पत्नी का रिश्ता स्वामी सेविका का था ।"[१२४] यहाँ लेखिका ने मध्यवर्गीय स्त्रियों की वैवाहिक सोच को प्रस्तुत किया है । आज भी हमारे समाज में मध्यवर्ग की स्त्रियाँ अपनी परंपरा की रूढ़ मान्यताओं में गिरफ्त है । पति को स्वामी मानकर उसके अनैतिक अन्यायों को सहनेवाली स्त्रियों की कमी नहीं । पति के विरुद्ध आवाज़ उठाना भारतीय स्त्री का 'culture' नहीं है । परंपरा ने हमें यह सीख दी है । आज की इक्कीसवीं सदी में भी प्राय: सभी स्त्रियाँ इसी सीख को आत्मसात् कर कुण्ठित होकर अपना जीवन यापन करती है । ऐसी स्त्रियों की ज़िन्दगी को देखकर महिमा को अपना स्वतंत्र उन्मुख जीवन आराम देह लगता है ।

३.५ आर्थिक मूल्यों में हुए परिवर्तन

अर्थ आज के युग की रीढ़ की हड्डी है । पुरुष हो या स्त्री दोनों में आर्थिक स्वावलंबन की अवश्यकता है । आज के उत्तराधुनिक युग में मानव के चतुर्दिक् विकास का मुख्य रूप अर्थ में निहित है । अर्थ का उपयोग मानव अपने इच्छानुसार करता है । अर्थ का सदुपयोग समाज में भलाई का माहौल प्रदान करता है । ममता कालिया की कहानियों में अर्थ के महत्व को जाननेवाले पात्रों का वर्णन हुआ है ।

३.५.१ आत्मनिर्भरता का भिन्न रूप

आज की इक्कीसवीं सदी में लड़के दहेज पर 'pressure' देते हैं । अपवाद के रूप में कुछ लड़के ऐसे होते हैं जो दहेज के बिना अपने बलबूत्ते पर शादी कर अपने पुरुषत्व की पहचान देने की कोशिश करता है । 'मुखौटा' कहानी में इस तरह के कुछ पात्र हैं जो एम.बी.ए के बाद विभिन्न कंपनियों में कार्यरत है । अपने विवाह के प्रति उनका अलग दृष्टिकोण है । ये लड़के अपने स्तर की ज़िन्दगी जीना चाहते हैं । किसी के मन में दहेज की ललक नहीं । अपने बूते पर जीना इन्हें आता है । आधुनिक समाज में ऐसे खुले विचारवाले लडकों की कमी है । लेकिन ममता कालिया ने अपवाद के रूप में ऐसे नये विचार वाले, मूल्यपरक चिन्तन करनेवाले लड़कों को भी चित्रित किया है ।

स्त्री हो या पुरुष अर्थ की आवश्यकता दोनों को होती है । आर्थिक तौर पर अपने को सुरक्षित रखने की चिन्ता में 'उत्तर अनुराग' की रेणु कुछ हाथ खींचकर खर्च करने लगती है । क्योंकि बिसिनज़ में पति खन्ना साहब का सबकुछ गंवाने की चिन्ता उसमें बनी रहती है । इसलिए "वे हर महीने काफी पैसा बचा लेतीं । उन्होंने डाकघर में अपने नाम से खाता खोल दिया और उसमें रकम डालने लगी ।"[१२५] आधुनिक परिवर्तित स्त्री की तरह अपने को आर्थिक तौर पर आत्मनिर्भर बनने का प्रयत्न रेणु करती है । वास्तव

में यह एक अस्तित्व संपन्न स्त्री की व्यावहारिक सोच है ।

आज के वैश्वीकृत एवं उपभोक्तृ संस्कृति में जीने के लिए आर्थिक संपन्नता का होना अनिवार्य है । अन्यथा जीवन नरकतुल्य हो जाता है । 'प्रिया पाक्षिक' कहानी का प्रत्यूष बेरोज़गारी की तिक्तानुभव को भली-भाँति समझता है । इसलिए जब महिला पत्रिका में उसे नौकरी मिलती है वह सहर्ष उसे स्वीकार कर लेता है । बेरोज़गारी की बदहालत को झेलने के बावजूद भी प्रत्यूष की नौकरी के प्रति हँसी उड़ाते हुए उसके दोस्त कहते है, "तुम्हें तो प्रिया एक रोग की तरह लग गयी है। प्रत्यूष ! नष्ट हो जाओगे तुम।"[१२६] प्रत्यूष अपने दोस्तों के विचारों को हँसते हुए, झेंपते हुए सुन लेता है, लेकिन अपने आप को संभालने में सक्षम होता है क्योंकि यह नौकरी उसकी रोज़ी रोटी का सवाल है। वह सोचने लगता है कि यह पद बौद्धिक स्तर पर भले ही उसकी प्रगति न करे लेकिन जीविका तो निकल जायेगी । आज के युग में बौद्धिक विकास व ज्ञान की संपदा को दर्शाने से बेहत्तर है दो वक्त की रोटी जुगाड़कर जीवन को आगे बढ़ाना । यहाँ प्रत्यूष के लिए अपनी ज़िन्दगी को सुचारु ढंग से चलाने के लिए पैसे की ज़रुरत है । और उसे पैसे किसी भी नैतिक माध्यम से मिले इसमें कोई एतराज़ नहीं । यहाँ पुरुष में निहित पूर्वधारणा की संकीर्णता को लेखिका ने प्रस्तुत किया है । कुछ पुरुष महिलाओं के साथ काम करना, महिला पत्रिका में या महिला संस्था में काम करना ओछा मानते हैं । जो बहुत ही अव्यावहारिक एवं संकीर्ण सोच का परिणाम है । कहीं कहीं स्त्रियाँ पुरुषों से भी अधिक व्यावहारिक बुद्धि संपन्न एवं सचेत होती हैं । इस कहानी में लेखिका ने पुरुषों में आये परिवर्तन को चित्रित किया है ।

३.५.२ धन के प्रति अलग दृष्टिकोण

ममता कालिया की एक छोटी कहानी है 'पहली' जिसका कथ्य पहली

तारीख को मिलनेवाले तनख्वाह से जुड़ी हुई है । सब के लिए पहली तारीख खुशी का दिन होता है । संपन्न वर्ग इसे अपने तरीके से आस्वादन करता है और छोटे स्तर के लोग अपनी आवश्यकताओं को परे रखकर बच्चों की खातिर कुछ 'sweets' के लिए थोड़ा पैसा देकर पहली तारीख का आनंद मनाते हैं । इस कहानी में आज के उपभोक्तृ समाज में बडों से ज़्यादा महत्व बच्चों का है । यहाँ बच्चे अपने पिता से पूछते हैं, "पापा याद है न आपने कहा था पहली को रसगुल्ला खिलायेंगे ।"[१२७] तनख्वाह से दो रुपये बच्चों को दे देता है । तब बच्चे पूछते हैं - अम्मा पापा को चाहिए न ? वास्तव में माता-पिता बच्चों की खातिर अपनी इच्छाओं को कुरबान करते हैं । इस कहानी में लेखिका ने एक निम्न मध्यवर्ग के परिवार की आर्थिक तंगी को उकेरा है । आर्थिक तंगी में भी इस परिवार का पिता अपने बच्चों की खुशियों को महत्व देता है । पहली तारीख में बच्चों के लिए उनके प्रिय रसगुल्ला खरीदने को पैसा देता है । माता-पिता बच्चों की आवश्यकताओं के सामने अपनी इच्छाओं एवं रुचियों को अनदेखा करते हैं । इस तरह बच्चों की खुशियों को महत्व देनेवाले अनेक माता-पिता आज के उपभोक्तृ समाज में विद्यमान है । बच्चों की खुशियों के लिए उन्हें बहुत त्याग सहना पड़ता है ।

'दल्ली' कहानी में लेखिका दिल्ली शहर में दिन-ब-दिन घटनेवाले व्यावसायिक, आर्थिक, सामाजिक विषमताओं एवं जटिलताओं की ओर इशारा करती है । इसमें भारत दर्शन के लिए निकले मदान दंपति को कई नकारात्मक स्थितियों से गुज़रना पड़ता है । भारतीयता के अनुसार 'अतिथि देवो भवः' है लेकिन यहाँ इसके विपरीत कार्य होता है । आज धन सबको प्रिय है । धनार्जन करने का जो भी मौका आता है अधिकांश लोग उसे छोडते नहीं । भारत दर्शन के लिए जो विदेशी सैलानी आते हैं यहाँ के टैक्सी, ओटोवाले उनको लूटने के लिए तैयार खड़े होते हैं । इस कहानी में भी एक विदेशी को

टैक्सीवाला लूटने लगता है तो अनुराग मदान इसका विरोध करते हुए पूछता है – इतनी सी दूरी के साढ़े तीन सौ कैसे हो गये ? इस पर ड्राईवर गुस्सा हो जाता है और मदान पर झपटता है । लेकिन सैलानी के हाथ से दो सौ रुपये मिलते ही वह चंपत हो जाता है । ड्राइवरों की इस तरह की नीयत सही नहीं है । लेकिन हर जगह ऐसे लोग विदेशियों को और स्वदेशियों को लूटने के लिए तत्पर रहते हैं । पैसे के प्रति इतना जुनून लोगों में फैल गया है कि वे मर्यादाओं का उल्लंघन करने में तत्पर हो जाते हैं । ऐसे लोगों के विरुध्द कुछ पूछने के लिए अनुराग मदान के जैसे मूल्यवान लोगों की आवश्यकता है ।

अर्थ की महत्ता इतनी अधिक है कि कभी-कभी अर्थाभाव के कारण दूसरों के समक्ष अपना महत्व घटते देखकर इन्सान कमज़ोर हो जाता है । लेकिन 'सिकन्दर' कहानी में अपनी आर्थिक मज़बूरी को सुठई बेटा अच्छी तरह समझाता है । वह एक समर्थ खिलाड़ी है । सुठई की माँ स्वेटर बनाकर बेचने का काम करती है । एक दिन बची हुई ऊन से बनी स्वेटर पहनकर सुठई खेलने निकलता है । इस पर उसके दोस्त उसकी हँसी उड़ाते है । लेकिन सुठई आम बालकों की तरह आत्मविश्वास से कहता है, "इसमें बेकायदा क्या है । गेम देखों, गेम बेकायदा हो तो कहो । यह स्वेटर मेरी माँ के हाथ का बुना हुआ है । तुम सब के स्वेटर-कोट से ज़्यादा गरम है यह । है तुम में से किसी के पास ऐसा स्वेटर । मैं यही पहनकर खेलूँगा नहीं तो मैं यह चला ।"[१२८] छोटा होने पर भी वह अपने परिवार की आर्थिक अवस्था को जानता है । वह जानता है कि उसकी माँ कई मुश्किलों का सामना करते हुए स्वेटर बुनकर पिता के साथ परिवार की आर्थिक स्थिति सुधारती है । और बचे कुचे ऊनों का सदुपयोग भी करती है । नन्हे से बालक की 'maturity' यहाँ दिखाई गई है । अपनी पारिवारिक स्थितियों को समझने के लिए उसका बाल मन सक्षम है ।

३.६ नैतिक मूल्य का परिवर्तित स्वरुप

सामाजिक गतिविधियों को सुचारु ढंग से संचालित करने के लिए नैतिक मूल्यों का होना अनिवार्य है । जो हर युग के लिए प्रासंगिक है । नैतिक मूल्य शाश्वत, सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक है । आज के नवविकसित समाज के विभिन्न परिस्थितियों से गुज़रना उतना आसान कार्य नहीं है क्योंकि आज का मानव स्वकेन्द्रित है । आज की युवा पीढ़ी नैतिक मूल्यों को अनदेखा करती है । पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण कर हमारी नयी पीढ़ी नैतिक मूल्यों को नकारकर दिग्भ्रमित हो रही है । लेकिन हमें समझना चाहिए कि जीवन की सार्थकता नैतिक मूल्यों में ही निहित है । "नैतिक बनने की प्रेरणा मनुष्य के भीतर से ही आती है । किसी को ठोंक-पीटकर अच्छा नहीं बनाया जा सकता । लेकिन यह प्रेरणा तभी पूरी तरह प्रस्फुटित होगी तब मनुष्य की भौतिक परिस्थितियाँ उसके अनुकूल हो । नैतिकता वस्तुत: मनुष्य की सामाजिकता का ही उत्कर्ष है । अत: नैतिक मनुष्य को जन्म देने के लिए एक नैतिक समाज चाहिए । ऐसा समाज, जिसमें अनैतिकता न केवल भीतरी प्रतिरोध पैदा करती हो, बल्कि बाहरी प्रतिरोध भी । यह एक ऐसी व्यवस्था में ही संभव है जो मनुष्य को स्वाधीन करती हो और जिसमें विषमता के कम से कम अवसर हो ।"[१२९] आजकल नैतिक मूल्यों में निरन्तर परिवर्तन होने के कारण संवेदनात्मक नैतिकता भी परिवर्तित होती जा रही है । ममता कालिया ने बदलते परिवेश के साथ पुरानी संवेदना को त्यागकर उत्कर्ष, उन्मेष तथा जागृति उत्पन्न करने वाली नई संवेदनाओं को वाणी दी है । वे नैतिक मूल्यों के महत्व को समझती है इसलिए ही उन्होंने अपनी कहानियों में नैतिक मूल्यों को उभारकर दिखाया है ।

३.६.१ परिवर्तित नैतिक बोध

'किताबों में कैद आदमी' का प्रोफेसर अग्रवाल जी कर्कश एवं कंजूस

स्वभाववाला है । वह हमेशा ऐसी रिक्शा में यात्रा करना चाहता है जिसका चालक उसूलोंवाला हो । कॉलेज जाते वक्त पहले रिक्शावाले से रुपया तय करके ही रिक्शे में चढ़ता है । एक दिन रिक्शे में यात्रा करते वक्त उसे कुछ कठिन स्थितियों का सामना करना पड़ता है । छह रुपया तय करके वह रिक्शा पकड़ता है । लेकिन बीच बीच में रिक्शा रुक जाती है और समय का नष्ट होने की चिन्ता में रिक्शावाले का भाड़ा काटने को सोचता और कहता भी है । लेकिन बाद में उतरते वक्त वह उसे पूरा रुपया दे देता है । यहाँ अग्रवाल जैसे कर्कश स्वभाववाले की हृदय की विशालता को दर्शाया गया है । रिक्शा में बैठनेवाले रिक्शा चलाने वाले की पीड़ा नहीं जानते । कितनी तकलीफों को झेलकर रिक्शावाला यात्रियों को रिक्शा में बिठाकर रिक्शा चलाता है । अग्रवाल रिक्शावाले की इस दयनीय स्थिति को महसूस करता है और इसी वजह से वह रुपये में काट-छाँट करने के बदले उसे पूरी रकम दे देता है ।

३.६.२ स्त्री के नैतिक विचार

'बीमारी' कहानी की बीमार अविवाहित नौकरीपेशा स्त्री अपनी शारीरिक एवं मानसिक यातनाओं के बावजूद भी अपने घर में नौकर को रखना नहीं चाहती । इसलिए कि समाज की सन्देह भरी दृष्टि को वह भली-भाँति समझती है । घर में अकेली होने पर नौकर रखना उसे अनैतिक एवं अस्वाभाविक लगता है । उसके मन में इच्छा भी होती है नौकर रखने की, लेकिन समाज की दुतर्फा मानसिकता से वह परिचित है। वह कहती है, "उन्हें बताना मुश्किल था कि अकेली लड़की के घर नौकर के साथ क्या-क्या अफवाहें जुड़ जाती है । नौकरानियों से मेरी बहुत जल्द लड़ाई हो जाया करती थी । वे चोर होती थी और झूठी । डॉक्टर ने अब दवा भी खुद मँगवा कर दी थी।"[१३०] इस

तरह की स्थितियाँ हमारे समाज की एक सच्चाई है । अविवाहित स्त्रियाँ कुछ भी करें तो समाज उस पर ऊँगली उठाने में चूकता नहीं । इसी वजह से एक अच्छा नौकर मिल जाय तो उसे रखना मुश्किल हो जाता है । भले ही उसमें उम्र का फासला हो । यह हमारे समाज का एक नैतिक नियम है । उसका उल्लंघन हम नहीं कर सकते । यदि कोई कारणवश इसका उल्लंघन करे तो आरोपों का बौछार होने लगता है । बीमारी के आरंभिक दिनों में दफ्तर से कुछ लोग आते हैं, वे सब विवाहित हैं । उन्हें बैठने की जगह कमरे में नहीं है । इसलिए पलंग के किनारे उन्हें बिठाना भी उसे अनैतिक लगता है । वह कहती है, "मुझे बराबर बुरा लगता रहा था कि उन लोगों ने मेरी बीमारी की बाबत पर्याप्त पूछताछ नहीं की । वे आपस में ही बातचीत करते रहे थे । बिस्तर पर पड़े-पड़े और डॉक्टर के नुक्स को लेकर मुझे अपनी बीमारी खासी महत्वपूर्ण लगने लगी थी ।"[१३१] आजकल समाज में फैली इस नैतिकता संबन्धी दोहरे व्यवहार को देखकर अत्यंत खिन्न रह जाती है । साथ ही साथ उसकी चेतना नैतिक विचारों के तह तक जाकर गहनतम रुप में उसका छानबीन करना चाहती है।

'अपत्नी' कहानी की लीला स्वतंत्र विचारों वाली है । वह विवाहित प्रबोध की ओर आकर्षित होती है । प्रबोध अपनी पत्नी को छोड़कर लीला के साथ प्रेम करने लगता है । लीला प्रबोध के साथ खुले आम घूमती है । वक्त आने पर वह उसकी पत्नी का रोल भी अदा करती है । इस कहानी की दूसरी दंपति है हरी और उसकी पत्नी, जो समाज के मूल्यों के आधार पर जीवन निर्वाह करना चाहते हैं । मूल्यों को तोड़ना आसान होता है लेकिन बनाया रखना मुश्किल है । हरी की पत्नी दुनियादारी जानती है समाज में विद्यमान कानून से वाकिफ है । इसलिए जब हरी प्रबोध के कहने पर उसके साथ एक घर में रहने को कहता तब वह विरोध प्रकट करती है, "पर मैं घबरा गई थी । एक ही

कमरे में उसे रहना मुझे मंजूर नहीं था, चाहे उससे हमारे खर्च में काफी फर्क पड़ता । मैं दूसरों की उपस्थिति में पाँव भर भी ऊपर समेटकर नहीं बैठ सकती थी। मैं ने हरी से कहा था, मैं जल्दी नौकरी ढूँढ़ लूँगी, वह अलग मकान ही तलाश करे ।"[१३२] यहाँ हरी की पत्नी व्यावहारिक है । व्यावहारिक बुद्धि के कारण वह जीवन में आनेवाली विसंगतियों को समझकर उससे परे रहती है । इसके अन्दर एक नैतिक बोध है । ममता कालिया ने अपने आदर्श पात्रों के माध्यम से समाज में आवश्यक नैतिक विचारों एवं मूल्यों को बनाये रखने का प्रयत्न किया है ।

'मेला' कहानी में आज के विकासोन्मुख युग में भी धार्मिक जगहों पर साधु संतों एवं अन्य धर्म पालकों द्वारा घटित होनेवाले अनैतिक अत्याचारों का उल्लेख किया गया है । इसमें एक स्त्री की दु:खभरी गाथा है । जिसमें मौनसुन्दरी नाम की एक स्त्री जो ३१ साल की कम उम्र में ही जीवन के प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण सन्यास ग्रहण करती है । चारु नामक एक पढ़ी-लिखी टीचर जो अपनी चरनीमासी के साथ मकर संक्रान्ति के इस पुण्य जगह में आती है उसी से मौनसुन्दरी की मुलाकात होती है । मौन सुन्दरी अपनी जीवन के कटु अनुभव को चारु से कहती है। आज हमारे समाज में साधु सन्यासी की कोई कमी नहीं है । गेरुआ वस्त्र पहनने पर भी मन वासना से आक्रान्त रहता है । ऐसा एक स्वामी है यहाँ के रामानन्द जो देह का भूखा है । ऐसे पोंगा पण्डित साधु सन्यासियों की महत्ता को घटाते हैं, मूल्यों को बरबाद करते हैं । वास्तव में साधु शब्द का अर्थ है सादा जीवन और उच्च विचार रखनेवाला । आज हम देखते हैं कि सब उसके विरुद्ध है । मौनसुन्दरी को स्वामी से हुए तिक्तानुभवों को चारु से कहती है, "आय टैल यू, एक रात में उन्हें जे. कृष्णमूर्ति की फिलोसफी समझा रही थी । मुश्किल से नौ बजे थे, उन्होंने मेरे चोंगे में हाथ डाल दिया। बाय गॉड मैं ने प्रोटेस्ट किया तो बोले-कौन देखेगा।

किसी को पता भी नहीं चलेगा ।"[१३३] मौनसुन्दरी का एक नैतिक आदर्श है । वह अपने नैतिक मूल्यों को किसी भी मायने में त्यागना नहीं चाहती । वह कहती है, "मैं ने उन्हें कुछ कहा तब वे हँसे, कैंप में सब बुढ़िया भक्तिन है, खा-पीकर सोई है । मैं विरक्त हो गई । मेरा शरीर मेरा है । मैं इसका बद इस्तेमाल नहीं होने दूँगी ।"[१३४] नैतिकता को बनाये रखने का प्रयत्न करनेवाली एक विवश स्त्री की तस्वीर यहाँ लेखिका प्रस्तुत करती है । नैतिक मूल्यों को नकारनेवाले ऐसे साधु संत समाज पर एक कलंक है ।

३.७ सांस्कृतिक एवं धार्मिक क्षेत्र में हुए मूल्य परिवर्तन

संस्कृति या सभ्यता का संबन्ध मानव के मूल्यों से होता है । संस्कृति से संबन्धित डॉ. नगेन्द्र का मत है – "सामाजिक जीवन की आंतरिक मूल प्रवृत्तियों का संश्लिष्ट रुप ही संस्कृति है ।"[१३५] भारतीय संस्कृति अन्य संस्कृतियों से ज़्यादा महत्वपूर्ण है । इसलिए समूचे विश्व भर भारत की अलग ही पहचान है। डॉ. सुरेश चन्द्र के अनुसार, "भारतीय संस्कृति के प्रमुख जीवन मूल्य धार्मिकता, समन्वय की भावना, शांतिप्रियता, कर्मण्यता, सत्यवादिता, अहिंसा, विश्वबन्धुत्व की भावना, अपने से बडों के प्रति श्रद्धा और समर्पण आदि हैं ।"[१३६] भारतीय संस्कृति और धर्म दोनों परस्पर जुड़े रहते हैं । वास्तव में धर्म मानव के लिए जीवन जीने की एक संचालित पद्धति है । धर्म मानव को एक अनुशासनबद्ध जीवन जीने का तरीका प्रदान करता है । भारत के पुराने धार्मिक मूल्य आध्यात्मिकता पर अधिष्ठित है लेकिन स्वतंत्रता के बाद इन सबमें परिवर्तन आ गया । ममता कालिया की कुछ कहानियों में धार्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों में आये परिवर्तित मूल्य बोध का चित्रण मिलता है ।

३.७.१ ग्रामीण स्त्रियों का सांस्कृतिक अवबोध

'परदेश' कहानी में बेटे के ख्वाहिश पर विदेश पहुँचे दो घरेलू, ग्रामीण

माताओं के बदलते स्वरूप का चित्रण है । वहाँ जाकर वे अपनी जन्मभूमि के महत्व को पहचानती हैं । गाँव में घरेलू ज़िन्दगी बितानेवाली मातायें विदेश जाकर अंग्रेज़ी सीखकर बड़े ही आत्मविश्वास के साथ बाज़ार में खरीदारी करने जाती हैं, बाहर घूमने जाती हैं इसे देखकर बेटे अत्यंत प्रसन्न होकर कहते – "बेबे, बीजी अगली बार जब तुम इमिग्रेंट वीज़ा पर आओगे तब तक तो गिटपिट चंगी तरह सीख जाओगे ।"[१३७] अशिक्षित, गंवार मातायें समय और संदर्भ के अनुसार अपने मूल्यों एवं रीति रिवाज़ों को आधुनिकता में परिवर्तित करने में संकोच नहीं करती । बावजूद इसके जन्मभूमि के सुकून को वे विस्मृत नहीं करती । वहाँ जो हिन्दुस्तानी रहते उन्हीं से पारिवारिकता का सुख न मिलने के बावजूद भी भाषागत सुख मिलता है । क्योंकि विदेशों में रहनेवाले हिन्दुस्तानी वहाँ की ज़मीन से जुड़े हुए हैं । पारिवारिक उत्सवों को, पर्वों को मनाने में उनमें कोई दिलचस्पी नहीं । भारतवर्ष उत्सवों का देश है । ये महिलायें विदेश में जाकर इस अवस्था को पहचानती हैं । और वे सोचती हैं - "अपनी मिट्टी अपनी ही होती है । क्योंकि वे कहते एत्थे तो कोई किसी की परवाह नहीं करता । कल को दम निकल जाय तो किरियाकरम में चार पडोसी इकट्ठे नहीं होंगे । उधर देखा है, सबेरे से घर में आनेवालों की डार बंधी रहती है ।"[१३८] संस्कृति को महत्व देनेवाले, अपनी संस्कृति की महानता को पहचान सकते हैं । कुछ लोग ऐसे हैं जो विदेशों में जाकर वहाँ के आबोहवा में धुलमिल जाते हैं। वह अपनी संस्कृति सभ्यता से, अपनी ज़मीन से हट जाते हैं । जो अपने अन्दर संस्कृति सभ्यता, पर्व, उत्सव आदि के प्रति एक अटूट आकर्षण रखते हैं वे कहीं भी जाये इन गुणों को भूल नहीं पाते ।

३.७.२ ईश्वर पर आस्था

'खिड़की' एक प्रतीकात्मक कहानी है । इसके पिता शिवचरण बाबू ईश्वर

और धार्मिक ग्रन्थों पर विश्वास रखनेवाला एक आम अफसर है । आधुनिक समाज में ईश्वर के अलावा अन्य जो शक्ति है ऐसे विचार रखनेवाले मानव के बीच बाबू जी अपवाद हैं । रोज़ वे 'रामचरितमानस' का पाठ करते हैं, अपने जीवन के सवालों के जवाब 'मानस' से ही ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं । आज के नूतन जीवन रीतियों और व्यस्त जीवन शैलियों के बीच मानव के पास ईश्वर स्तुति का समय कहाँ मिलता है ? इस कहानी में लेखिका धार्मिक मूल्यों से और धार्मिक रीति रिवाज़ों से घटनेवाली अवस्था का चित्रण प्रस्तुत करती है । कुछ लोग रोज़मर्या की ज़िन्दगी में इतने व्यस्त हो जाते हैं कि भगवान का नाम लेना भूल जाते हैं । और कुछ लोग व्यस्तता के बीच भी समय निकालकर भगवान का पाठ पढते हैं । यह इन्सान की अपनी रीति होती है । इस कहानी का शिवचरण बाबू भगवान के प्रति आस्था रखनेवालों का उत्तम संस्कार से संपन्न आदमी है ।

'पर्याय नहीं' कहानी की डॉ. नीना अपने ज्ञान के अहंकार से ग्रस्त एक स्त्री है । जो अपनी ज्ञान गरिमा के सामने ईश्वर की सत्ता को भी अकिंचन मानती है । एक बार उसकी बेटी बुखार से बेहाल होकर वह डॉ. अग्रवाल के पास पहुँचती है । वहाँ डॉ. अग्रवाल उसे समझाती है, "प्रतिदिन ईश्वर को दो मिनिट का समय दो क्योंकि सबसे बड़ा डॉक्टर वही है ।"[१३९] आज के युग में इन्सान अपनी बौद्धिक क्षमता और आर्थिक बल के अहंकार पर ईश्वरीय सत्ता को नकारने को हिचकते नहीं । इनमें से अपवाद स्वरुप कुछ ऐसे इन्सान होते हैं जो अपनी बौद्धिक क्षमता, आर्थिक समृद्धि, संपन्नता, कार्यक्षमता सब भगवान की देन मानते हैं। ऐसा एक इन्सान है डॉ. नीना का पति डॉ. सुनिल । वह अपनी मेहनत का आधा श्रेय भगवान को देना चाहता है । कहानी के अंत में डॉ. सुनिल का कहना अत्यत हृदयस्पर्शी है कि "डॉक्टर ईश्वर का प्रतिनिधि बन जाता है, पर्याय नहीं । ऐसा है हमारे समाज से भगवान और इन्सान का रिश्ता कभी खत्म नहीं हो सकता ।"[१४०]

इस कहानी में ममता कालिया यह बताती है इन्सान कितने भी ऊँचे शिखर पर पहुँच जाये तो भी ईश्वर नाम की सत्ता को महत्व देना ही है । ईश्वर की सत्ता को नकारने से वह कहीं का नहीं रहता ।

ईश्वर एक अद्धितीय शक्ति है । वही अदृश्य शक्ति मानव के साथ हमेशा वास करती है । 'बाल-बाल बचनेवाले' कहानी में ईश्वर के प्रति आस्था रखनेवालों को जो भलाई या कृपा का अनुभव होता है इसका जीवन्त चित्रण इस कहानी में मिलता है । एक कॉलेज प्राचार्या ट्राइवर के साथ अपने छोटे बेटे को साथ लेकर विश्वविद्यालय जा रही होती है । अचानक एक लड़का साइकिल से कार पर आ टकराता है । भीड़ जमा हो जाती है, वारदात शुरू हो जाती है इतने में लड़का इधर उधर गायब हो जाता है । अंत में लड़के को ढूँढते ढूँढते सब परेशान हो जाते हैं ऐन वक्त छोटा बेटा देखता है कि लड़का गाड़ी के ऊपर बैठा हुआ है । यह ईश्वर कृपा नहीं तो और क्या है । तब मिसिज़ सिंह कहती है, "खैर मनाइये । लड़का बाल-बाल बच गया । जाकर मन्दिर में प्रसाद चढ़ाइये, हम भी मन्दिर जा रहे हैं ।"[१४१] साथ ही लड़के को तीन सौ रुपये साइकिल ठीक करने को देता है । कभी-कभी ऐसे हादसे हो जाते हैं जिसमें भगवान की कृपा से हम झंझट से मुक्त हो जाते । इसलिए हमेशा ईश्वर पर आस्था रखना, बिनती करना एक उत्तम मूल्य भावना है।

३.७.३ अनुष्ठानों का महत्व

आधुनिक युग में परंपरागत पर्व, त्योहार का महत्व घटता जा रहा है । ये सब केवल जोश मात्र के लिए है । आज के अनेक सुख सुविधाओं और वैज्ञानिक प्रगति के पीछे भागते वक्त युवापीढ़ी व्रत, उपवास जैसे धार्मिक अनुष्ठानों को भूल जाते हैं । लेकिन उनको यह जानना चाहिए कि अपने जीवन को मूल्यों के साथ श्रेष्ठ बनाने के लिए अपनी

परंपरागत अनुष्ठानों की अनिवार्यता है । 'मनोविज्ञान' कहानी में नीलम रस्तोगी 'हरतालिका' व्रत निर्जला व्रत रखती है । वर्तमान के जीवनसाथी को अगले जन्म में प्राप्त करने के लिए इस तरह का व्रत रखा जाता है। यह भारतीय धर्म के सबसे कठिन उपवास माना जाता है । पति-पत्नी संबन्धों का स्वर्णिम इतिहास इस एक व्रत के आधार पर लिखा जा सकता है ।

इसी तरह 'मेला' कहानी में धार्मिक अनुष्ठानों के महत्व और विश्वास को चित्रित किया गया है । गंगा स्नान से जुड़ी हुई बातों को देखकर चारु को लगता है इन सब में भी एक अद्‌भुत 'सह अस्तित्व' की भावना है । भारतीय परंपरा का दृढ़विश्वास है मौनी अमावस्या पर एक डुबकी लगाने से जीवन के सारे संकट दूर हो जायेंगे और एक नया जीवन मिल सकता है ।

३.७.४ अनुष्ठानों के प्रति दृढ़चित्त भाव

'बांगडू' कहानी के सत्यदेव को अपनी मालकिन के बदले 'करवा चौथ' का व्रत लेना पड़ता है । मालकिन करुणा व्रत लेने की अपनी विवशता प्रकट करती है और बांगडू को व्रत लेने की रीति विस्तार से बताती है । "मेरी तबीयत ठीक नहीं है तुम उपवास कर लो, हम पूजा कर लेंगे।"[१४२] सत्यदेव कुछ न जानने पर भी ठीक ढंग से व्रत का दिन पूरा कर लेता है और अपना काम भी साधारण दिन की तरह पूरा कर लेता है । इस कहानी में लेखिका ने एक जंगली जाति के लड़के के दैनिक व्यवहार में परिवर्तन लाकर यह दर्शाया है कि परिस्थितियों के अनुसार इन्सान परिवर्तित होता है । यहाँ भी एक जंगली लड़का व्रत की पवित्रता, शुद्धता और महत्व के बारे में अनजान है लेकिन मालकिन की सहायता करते हुए व्रत की अनुष्ठानात्मक कार्य पूर्ण करता है । व्रत के अंत भोजन सब

खाते वक्त निष्कलंक भाव से पूछता है, "एक बात बोलें, सत्यदेव ने थाली माँजते हुए करुणा से कहा । उपास हम कर ली न पुन्न भी हमहि के मिले का चाही । आपन तो इनो जून खाय ले हली न । करुणा कहती, हट जैसा नहीं होता । जिसके नाम का व्रत है पुण्य उसी को मिलता है । सत्यदेव की सोच भी बदल गयी । भगवान भी बेईमान हो गएल ह ।"[१४३] वास्तव में व्रत, पूजा आदि दूसरों के दबाव से होता नहीं । उसमें एक तन्मयता, तल्लीनता की भावना होनी चाहिए । लेकिन इसमें सत्यदेव का अपनी मालकिन के प्रति समर्पण भाव दिखाया गया । धार्मिक कार्यों पर आस्था न होने पर भी कुछ पाने की ख्वाहिश इसके अंदर है ।

आज के उत्तराधुनिक युग में भी धार्मिक अनुष्ठानों को महत्व देनेवाली स्त्रियाँ हमारे समाज में है । 'बाथरूम' कहानी की बिचली भाभी बुखार की वजह से नहा नहीं पाती । उसकी चिन्ता है कि नहाये बिना भगवान की पूजा कैसे की जाय । भारतीय संस्कारों के अनुसार पूजा कर्म के पहले स्नान अवश्य करना पड़ता है । बिचली भाभी किसी भी रूप में अपनी पूजा कर्म में विघ्न उत्पन्न करना नहीं चाहती । घर की छोटी बहू उसकी इस समस्या सुलझा देती है । वह उसे 'sponch bath' कराकर भगवान की डोलची बिस्तर के आगे रख देती है और भाभी को पूजा करने को कहती है । इस तरह की परिपाटी इस घर में पहले नहीं हुई थी । छोटी बहू जो शिक्षित है, उसके इस नये विचार और प्रवृत्ति को देखकर बिचली भाभी को यह एक क्रान्तिकारी अनुभव सा लगता । परिवार में हुए नये परिवर्तन से वह प्रभावित हो जाती । पूजा में विघ्न न आने के कारण वह बेहद संतुष्ट रहती है । नयी पीढ़ी के नये युगबोध को वह सहर्ष स्वीकार कर लेती है।

३.८ शिक्षा और साहित्य में परिवर्तित मूल्यों का चित्रण

बच्चन सिंह ने साहित्य को समाज के निकट बताया है उन्होंने कहा है

"जिस तरह समाज शास्त्र में सामाजिक संस्थाओं और मनुष्यों की अंतर्क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है उसी तरह साहित्य को एक सामाजिक संस्था के रूप में अध्ययन का विषय बनाया है ।"[१४४] ममता कालिया स्वयं शिक्षित एवं साहित्यिक अभिरुचि रखनेवाली एक सशक्त व्यक्तित्व की लेखिका है । इसलिए उनकी कहानियों में शिक्षा और साहित्य का महत्व सर्वत्र दिखाया गया है । आधुनिक समाज में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है । शिक्षा के अभाव में एक अच्छी नौकरी मिलना मुश्किल है । समाज में पढ़े-लिखे शिक्षित व्यक्ति को भी अच्छा स्थान प्राप्त नहीं होता । यह एक सार्वकालिक सत्य भी है । इसलिए ऊँचा स्थान प्राप्त करने के लिए उच्च शिक्षा भी अनिवार्य है ।

३.८.१ मेहनत के बिना शिक्षा अधूरी है

'उसका यौवन' कहानी में एक बेरोज़गार युवक की मानसिकता का चित्रण है । अपने सारे परिवारवाले बडे बडे पद पर विराजित है । वह भी बड़ा बनना चाहता है । लेकिन लक्ष्य तक पहुँचने के लिए वह प्रयत्न नहीं करता । इस कहानी के माध्यम से शिक्षा के महत्व को उजागर कर दिखाना ममता कालिया का उद्देश्य है । सही शिक्षा से ही सही मूल्य मिलते हैं । सही मूल्य से ही व्यक्ति और समाज का उद्धार होता है । इसका नायक विराम बी.ए में पढ़ता है । शिक्षा को पूरी तरह निभाने के लिए समय समय पर टाइमटेबुल बनाता रहता है । आधुनिक वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी की इस युग में नौकरी की होड़ ही चलती है । ऐसी विशेष हालत में नौकरी मिलना कोई आसान कार्य नहीं । पढे-लिखे विद्यार्थी भी आज कुक्कुरमुत्ते की तरह उगते रहते हैं ऐसी अवस्था में अनपढ़ और कम पढे-लिखे की क्या अवस्था होती है ? इसलिए आज की विशेष माहौल में सही शिक्षा हासिल करना अनिवार्य है । सफेद कोलर नौकरी की इच्छा रखनेवाले विराम जैसे युवकों के लिए यह अनिवार्य है कि वह मेहनत कर पढ़े और सही मायने में जीवन को सुरक्षित

रखे । भविष्य संपन्न बनाने के लिए मेहनत करना पड़ता है, शिक्षित होना पड़ता है, ईमानदार होना पड़ता है ।

३.८.२ पुस्तकों का महत्व

आज के सूचना प्रौद्योगिकी एवं वैज्ञानिक युग के विकास में त्रस्त मानव, किताबी अध्ययन को महत्व नहीं देते । 'किताबों में कैद आदमी' कहानी में प्रो. अग्रवाल जिसने अपनी कारपोर्च भी पुस्तकों से भर दिया है । कोई भी गैरेज में स्कूटर रखने की अनुमति माँगे तो वे कहते हैं मेरी लाइब्रेरी में किताबों के सिवा कुछ नहीं रखा जा सकता । पत्नी के सिफारिश करने पर वे उनको 'चार्ल्सलैंब' का उद्धरण सुनाते हैं । "लाइब्रेरी वह जगह है जहाँ विद्वता की सुगन्ध आती है । तुम चाहती हो सुबह सुबह उठकर मैं पेट्रोल की बू सूघूँ ।"[१४५] अग्रवाल साब का व्यक्तित्व बौद्धिक विचारों से आलोडित रहता है । शिक्षा के महत्व को समझनेवाले प्रोफेसर कभी-कभी अपने पुराने विद्यार्थियों के सामने वेड्सवर्थ, हेमलेट का वर्णन प्रकट करने को तनिक भी हिचकते नहीं है । यह देखकर छात्र उनकी स्मरण शक्ति की सराहना करते हैं ।

यहाँ लेखिका ने आज के प्रौद्योगिकी युग में घटते हुए किताबों के महत्व को उजागर किया है । आज ज्ञानार्जन करने के लिए कंप्यूटर पर एक ऊँगली की ज़रूरत मात्र है । जितनी सामग्रियाँ किताबों में हैं वे सब 'screen' पर उपलब्ध हो जाते हैं । इससे विद्यार्थी बहुत कुछ तो अर्जित करते । लेकिन कई आपत्तियाँ भी इससे जुड़ी हुई है । इस तरह के 'modern' ज्ञानार्जन से किताबों के साथ, विद्यार्थी या पाठक का संबन्ध घट सा जाता है । किताबों में लेखक, प्रकाशक, प्रकाशन वर्ष इन सबसे वे अनजान रहते । यह वास्तव में एक संकटपूर्ण स्थिति भी है । इन आधुनिक सुविधाओं के कारण पुस्तकालयों

में भीड़ नहीं के बराबर है । ये वास्तव में समाज के लिए एक खतरनाक स्थिति है । ऐसी हालत में अग्रवाल जैसे पुस्तक प्रेमियों का महत्व बढ़ता रहता है ।

'उत्तर अनुराग' कहानी में रेणु और खन्ना को सारी सुख सुविधायें है । बावजूद इसके उसमें एक अपूर्णता है । दूसरी ओर इस कहानी के अग्रवाल दंपति अपनी छोटी सी ज़िन्दगी खुशहाली से बिताते हैं । इस पर खन्ना उससे कहते हैं – "मुझे आपकी फैमिली लाइफ से रश्क होता है । आपके घर में अभी जोश और रौनक है, जबकि हमारे घर में उल्लू भी नहीं बोलते । रात में यह बीच का दरवाज़ा बन्द होते ही जैसे ज़िन्दगी ठहर जाती है हमारी ।"[१४६] तब अग्रवाल साहब अपनी ज़िन्दगी के खुशहाली का रहस्य पर्दाफाश करते हैं और कहते हैं उनकी खुशियों का रहस्य पुस्तकों से मिलनेवाला सुख चैन है और उनको एक आदेश भी देते हैं - "आपके पास इतना कुछ है । किताबों खरीद करो, पत्रिकाएँ मँगाओ । इन सबसे दिमाग की खिड़कियाँ खुलती हैं ।"[१४७]

लेखिका ने इस कहानी के द्वारा शिक्षा और अध्ययन के महत्व पर प्रकाश डाला है । पठन पाठन से ज्ञानवर्धन होता है । मन की संकीर्णतायें दूर हो जाती हैं, मन स्वच्छ एवं शांत हो जाता है, इसके विपरीत जो किताबों को खरीदकर अलमारी में सजाकर रखते हैं, पठन पाठन नहीं करते हैं उनकी मानसिकता संकीर्णता से भरी होती है । उनका मन दूसरों पर वार करने में उत्सुक रहता है । अत: मानसिक स्वच्छता एवं बौद्धिक विकास के लिए किताबें बहुत ही सहायक है ।

भाषा मनुष्य की बड़ी शक्ति है । अपनी मातृभाषा के अलावा आजकल जीवन की उन्नति के लिए उंग्रेज़ी को भी जानना पड़ता है । 'लकी' कहानी में अपने बेटे से पिता कहते हैं - "जितना वक्त तुम ज्योतिष विद्या में बर्बाद करते हो उससे आधा भी

अंग्रेज़ी सीखने में लगाओं तो तुम्हारी फर्राटे से तरक्की हो जाये ।"[१४८] यहाँ लेखिका ने जीवन के एक यथार्थ को प्रस्तुत किया है । ऐसा कहा जाता है, 'जैसा देश वैसा वेश' । "भूमण्डलीकरण ने जीवन के हर पहलू को प्रभावित किया है । ऐसे में भाषा का प्रश्न इससे अछूता कैसे रह सकता है ? हम जितना भूमण्डलीकृत होते जा रहे हैं, अपनी भाषा से उतना ही पल्लू झाडते नज़र आ रहे हैं । आज अंग्रेज़ी ग्लोबल लैंग्वेज के रूप में स्वीकृत भाषा है । नौबत यहाँ तक आ गयी है कि विश्व बाज़ार में अपने पैर फैलाने के लिए हमें अंग्रेज़ी सीखना ज़रुरी हो गया है ।"[१४९] क्योंकि आज के युग में अंग्रेज़ी सीखे बगैर कोई काम नहीं चल सकता । कंप्यूटर की भाषा हिन्दी भी है । हिन्दी होते हुए भी अंग्रेज़ी का प्रयोग करने के आदि है । नौकरी के लिए अंग्रेज़ी की ज़रुरत है । आजकल हिन्दी और मलयालम भी अंग्रेज़ी के माध्यम से पढ़ाने की रीति 'English Medium' स्कूलों में चलती है । अंग्रेज़ों का गये 'पैसठ' साल से अधिक हो गये हैं बावजूद इसके उनकी भाषा की गरिमा समाप्त नहीं हुई है । आज के कंप्यूटर युग में अंग्रेज़ी की अनिवार्यता अधिक है । क्योंकि आज हर कहीं अमरिकीकरण हो रहा है । इस सत्य को 'लकी' का पिता व्यक्त करते हैं ।

३.८.३ अक्षर ज्ञान का महत्व

'चोट्टिन' कहानी की सुखिया को अक्षर ज्ञान है । आर्थिक तंगी के कारण उसे पढ़ने का अवसर नहीं मिलता । जिस कारण तीसरी कक्षा में माँ उसका नाम कटवा देती है । सुखिया को अक्षर ज्ञान होने के कारण दूसरे के घरों में काम करने को जाते वक्त फाटक पर लिखे 'कुत्तों से सावधान' वाली चेतावनी पढ़कर उसे हँसी आ जाती है । उसने सोचा इस घर में सिर्फ कुत्ते रहते हैं और कोई नहीं । फिर कुत्ता तो घर में सिर्फ एक नहीं है, लिखा है कुत्तों से सावधान । सुखिया अधिक शिक्षित नहीं, फिर भी पढ़ने की क्षमता

उसमें है । ज्ञानार्जन की क्षमता है सोचने की भी क्षमता है । सुखिया जैसे लोग हमारे समाज में है जो पैसे के अभाव में ज्ञानार्जन नहीं करते । वास्तव में कई ऐसे लोग बुद्धिसंपन्न और व्यावहारिक होते हैं । मौका आने पर ये लोग योग्य स्थान पर विराजमान भी होते हैं । यह वास्तव में नियति का खेल है । नियति ऐसी है कि जिसके पास क्षमता होती है उसे मौका नहीं देती और जिसके पास क्षमता नहीं होते उसके सामने ढेर सारे अवसरों को व्याप्त कर देती है ।

३.८.४ साहित्य के प्रति नया सोच

'कवि मोहन' कहानी में एक पिता है जो दूकानदारी करता है । एक बेटा है जो साहित्य सृजन में लगा रहता है । पिता को साहित्य से नाम मात्र का ही संबन्ध है और बेटा है कि दूकानदारी से तनिक भी लगाव नहीं रखता । अपने घर का माहौल अनुकूल न होने के बावजूद भी वह सबेरे से शाम तक कॉपी, पेंनसिल लेकर सौताल चला जाता है और दिन ढलते ही लौटकर आता है । उसे कविता रचने की विशेष रुचि है । अपनी सृजनात्मक क्षमता को दूकानदारी कर नष्ट करना वह नहीं चाहता। साहित्यिक अभिरुचि उसे अपने प्राध्यापक से प्राप्त है । वह अपनी कविता के माध्यम से समाज में व्याप्त गन्दगी को दूर करना चाहता है । मोहन आधुनिक विचारों से लैस व्यक्ति है । अपने को अमूलचूल परिवर्तन करके पिता के इच्छानुसार जीना नहीं चाहता । वह स्वयं अपना जीवन बनाना और जीना चाहता है । इसमें ममता कालिया ने परिवर्तन पर इच्छा रखने वाले एक साहित्य प्रेमी नवयुवक का चित्रण अत्यंत प्रभावात्मक ढंग से किया है ।

'सीमा' कहानी की बेटी बिल्ली दसवीं में पढ़ती है । वह आधुनिक प्रगतिशील लड़की है । सीमा को अपनी बेटी के कमरे में जो ग्रीडिंग कार्ड मिली, उसे

देखकर खुश होती है । उसमें लिखा –

"ऐसा करेंगे एक दिन / लेटे नहीं घर की तरफ
निकलने कहीं दूर दूर / ऐसा करेंगे एक दिन ।"[१५०]

इसमें किसी का पता नहीं । अपनी बेटी के जीवन में अनुभूतियाँ और अभिव्यक्ति की सृजनात्मकता को देखकर सीमा अत्यंत उत्साहित हो उठती है । क्योंकि ऐसे साहित्यक रुचि रखनेवाले लड़कियाँ आज विरले ही मिलती है । यहाँ साहित्य के महत्व को बनाने का प्रयत्न ममता कालिया ने किया है । साथ ही साहित्य के प्रति जो बुरी हालत आज समाज में विद्यमान है उसे दूर करने की कोशिश यहाँ लेखिका ने की है ।

नयी चेतना एवं विचारों से संपन्न एक कहानी है 'नई दुनिया' । आज के उत्तराधुनिक, वैज्ञानिक, उपनिवेशवादी, सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में हर माता-पिता अपने बच्चे को किसी अच्छे ओहदे पर विराजित होकर देखना चाहते हैं । यह एक आम आदमी की लालसा है । लेकिन 'नई दुनिया' की पूर्वा पढ़ाई लिखाई के बदले साहित्यिक विचारों में मग्न रहती है । पूर्वा जैसी लड़कियों के ज़रिये साहित्य के महत्व को ऊपर उठाने का प्रयत्न लेखिका करती है । शिक्षा में साहित्य का भी परम स्थान है क्योंकि साहित्य जीवन का एक अंग है । पढ़ाई के वक्त केवल शास्त्रीय ज्ञान, गणित, भूमिशास्त्र, इतिहास जैसे विषयों के साथ साहित्य को भी महत्व देना अवश्य है । आजकल छात्रों के पास कुछ 'extra reading' का समय नहीं है । सब 'entrance' की परीक्षा के लिए जी-तोड़ लगाकर पढ़ते हैं । सब इंजिनीयर, डॉक्टर, वैज्ञानिक बनना चाहते हैं । इसकी दौड़ में वे साहित्य को भूल जाते हैं । 'नई दुनिया' की पूर्वा इससे भिन्न होकर साहित्य को महत्व देती है । पूर्वा अन्य साहित्यकारों के साथ गोष्ठियों, सम्मेलनों में भाग लेती है तब उसको लगता है – "उन्होंने बेझिझक पूर्वा को अपनी बिरादरी में शामिल कर लिया । उनकी समस्त

खूबियों खामियों समेत ।"[१५१] ममता कालिया अपनी कुछ कहानियों द्वारा साहित्यिक मूल्य को प्रस्तुत करती है ।

३.९ राजनैतिक मूल्यों का चित्रण

राजनीति आज का एक जीवन्त विषय है । एक देश के विकास के लिए राजनीति का स्वच्छ और साफ होना अनिवार्य होता है ।लेकिन आज राजनीति को जूते की तरह लाठी में लटकाकर खेलनेवाले लोग हैं । आज राजनीति अर्थार्जन करने का एक सरल मार्ग है ।इस कारण ऐरु गैरु व्यक्ति राजनीति की ओर आकर्षित होते हैं । इसलिए कहा भी जाता है कि जो 'कुछ नहीं' बनता 'नेता' बन जाता । वर्तमान राजनीति अवसरवादिता का पर्याय बन गयी है ।जिसमें हर तरह के मुद्दे है, सांप्रदायिकता है, गुण्डागर्दी है, राष्ट्रवाद है, बेईमानी है । जब राजनेता ही बेईमान हो जाता है तो देश की अवस्था क्या हो जाती है ? यह देखने की बात है ।

ममता कालिया की 'नायक' और 'सुलेमान' कहानियों में राजनैतिक कुप्रभाव से बचने का संकेत किया गया है ।आधुनिक युग प्रगति का युग है । यहाँ सबको अपनी अपनी भलाई की चिंता लगी रहती है । 'नायक' कहानी में नये आये प्रोफेसर 'एम.डी' के जोशभरी बातों से प्रभावित एम.ए का छात्र अमित कुछ बनने की इच्छा से अपने परिवारवालों को नकारकर उनके साथ दिल्ली आता है ।वहाँ एम.डी के दोस्त शर्मा द्वारा अमित को कुछ दिनों के अंदर उसके यथार्थ का पता चलता है । यानि राजनैतिक क्षेत्र में उनके अनैतिक हस्तक्षेप का ज्ञान उसे प्राप्त हो जाता है । यहाँ लेखिका यह स्पष्ट करती है कि इस तरह के लोगों की रणनीति का पर्दाफाश करने के लिए किसी तीसरे का होना अनिवार्य है । क्योंकि हमारे समाज में राजनीति से खिलवाड़ करनेवाले लोगों की

कमी नहीं है ।

यहाँ शर्मा जी और उसकी पत्नी के स्नेहपूर्ण व्यवहार से अकेलापन से पीड़ित अमित के जीवन में एक पारिवारिक माहौल का आनन्द होने लगता । पहली बारिश के दिन अपने घर की तरह सब चीज़ें वहाँ मिसिज़ शर्मा बनाती है । तब उसको परिवार की चिन्ता होती है । उसको लगता है कि यह मिसिज़ शर्मा नहीं उसकी अपनी माँ है । वह परदेश में नहीं देश में है, अपने घर में है । ऐसी एक पारिवारिक माहौल मिलने के बावजूद भी अमित का मन एम.डी के स्वार्थपरक कार्यों से व्याकुल हो उठता है । वह दिल्ली में टिकना नहीं चाहता । जब रात के वक्त शर्माजी खाने को बुलाया जाता है तब अमित हड़बड़ाकर उठ बैठता है । घड़ी देखता और कहता है – "नहीं सर, मेरी नौ पन्द्रह की गाड़ी छूट जायेगी । खाना घर पहुँचकर खाऊँगा ।"[१५२] अमित जैसे कितने युवक एम.डी जैसे अध्यापक नेताओं और अन्य नेताओं के कुप्रभाव में पड़कर जीवन नष्ट कर देते है । यहाँ अमित को अपने जीवन में शर्माजी के द्वारा एक नयी सोच मिलती है । उसके जीवन के चिन्तनों में परिवर्तन आ जाता है । जीवन के ऊबड़खाबड़ भूमि से उसे मुक्ति मिल जाती है ।

आधुनिक समाज अनेक जटिलताओं से भरा हुआ है । व्यक्ति को समझना और परखना इस उत्तराधुनिक युग में कठिन कार्य है । मानव को किसी एक व्यक्ति पर पूरा विश्वास सौंपने का अनोखा दृश्य 'सुलेमान' कहानी में देख सकते हैं । इसका नायक सुलेमान इंटरमीडियट कॉलेज की नौकरी छोड़कर लखनऊ चला जाता है । एकाएक एक दिन जब वह शहर में प्रकट होता है उसके व्यवहार और हावभाव में पूरा परिवर्तन नज़र आता है । अब वह समाज का एक हितैषी नेता है । वह सबको समझता है, सबके प्रश्नों को सुनता है, उत्तर देते वक्त उपदेश भी देता है । वह कहता है, "मैं ने तय कर लिया है

कि अब ज़िन्दगी में तीन काम बिल्कुल नहीं करने हैं । नौकरी कतई नहीं करनी है । वक्त नहीं गंवाना है, कभी किसी को दुश्मन नहीं समझना है ।"[१५३] वे सबको उनके आवश्यकतानुसार कुछ न कुछ देते रहते हैं । अपने दोस्तों को वे प्यार करते हैं । वे भी उनको प्यार करते हैं । सुलेमान को ये सब अजीब थे । "ये उसके जीते जागते सपने थे । लखनाऊ में उसने देखा था सत्ता पशुओं का यथार्थ और उनकी जड़ता । तब हर पल उसे ये दोस्त याद आते थे । उन्हीं उपलब्धि के शुभलाभ में लगाकर वह अपने सुन्दर सपने तोड़ना नहीं चाहता था । ये दोस्त उसके फेफडे थे ।"[१५४] दरअसल सुलेमान में खास कुछ नहीं है । दोस्तों के सामने वह इस सत्य का पर्दाफाश भी करना नहीं चाहता क्योंकि वह एक राजनैतिक नेता से भी ऊँचे स्थान पर है । आधुनिक समाज में ऐशोआराम से जीने की इच्छा उसमें है । एक अलग व्यक्तित्व का परिवर्तित विचारों का उल्लेख ममता कालिया यहाँ करती है । आज के युग में इस तरह के मीठे वचन कहनेवालों की कमी है । अवसर अनवसर पर चिंघाडने वाले लोग ज़्यादा हैं । इसलिए ममता कालिया ने सुलेमान जैसे पात्र की सृष्टि कर समाज में सुख, चैन, प्रेम आदि मूल्यों के महत्व को स्पष्ट किया है ।

३.१० श्रमिकों का मूल्य अवबोध

आज समाज मूल्यों से च्युत हो रहा है । कोई भी मूल्य को महत्व नहीं देता । मूल्य पर लंबा चौड़ा भाषण सभी देते हैं । लेकिन कोई उसे पूर्ण रुप से व्यावहारिक रुप नहीं देते विशेषकर आज के उच्चवर्ग के लोग । दूसरी ओर जो दलित पीड़ित हैं, कुचले गये हैं, दबाये गये हैं उनमें काफी मूल्य बोध विद्यमान हैं । आज के सभी निम्न वर्ग के लोग अपने अधिकार भाव के प्रति सचेत है ।

आधुनिक समाज में रहनेवाले गरीब, निम्न लोग भी समझ सकते हैं कि

अपने में अस्तित्व और व्यक्तित्व है । आजकल वे अपने मालिकों के सामने सब प्रकार की ज़्यादतियों को चुपचाप झेलकर जीना नहीं चाहते हैं । 'अनुभव' कहानी का नौकर रामू साहब के पूछने पर अपनी मेमसाहब के अनैतिक व्यवहार का जिक्र करता है । इससे नाराज़ होकर मेमसाहब उसे हिसाब के बिना घर से निकाल देती है । तब रामू प्रतिरोध करता है और कहता है - "हिसाब कीजिए मेरा, नहीं तो अच्छा न होगा । मैं भी साब को सब कुछ बता दूँगा । अभी तो बहुत बातें बाकी हैं ।"[१५५] यहाँ रामू का अपनी मेमसाहब से निड़र होकर सवाल करना परिवर्तित समाज के नये लोगों की मानसिकता है । आज वह ज़माना लद गया जब नौकर गदहों की तरह काम किया करते थे । आज स्थितियों में परिवर्तन आ गया है । निम्नवर्ग के लोग प्रतिरोध करने को हिचकते नहीं है । 'अनुभव' का पात्र ऐसा ही करता है । वास्तव में वह अपनी ज़िन्दगी को संवारने के लिए घर से निकलता है । लेकिन अब महानगर की दोहरी नीतियों को अनुभव कर वह सोचता है, "इससे ज़्यादा खुशी तो वह अपने उजड्ड शहर में रह लेना, कुछ नहीं तो सब्जी बेच लेना, पंक्चर लगा लेना या बोझा ढो लेता ।"[१५६]

मालिक के यहाँ से रामू अपनी मज़बूरियों को लेकर निकल पड़ता है । इसी बीच उसकी मुलाकात एक विवश स्त्री से होती है । वह रात के समय अपने बच्चे को ठंड से बचाने के लिए रामू से घिघियाते हुए याचना करता है - मुन्ना मर जायेगा बाबू, इसे अपने साथ सुला लो । उसकी याचना पर रामू उसकी रजाई में बच्चे को लिटाने की जगह दे देता । ठंड की कठोरता से ठिठुरती हुई औरत भी कुछ देर बाद विवशतावश बच्चे से चिपककर लेट जाती है । दूसरे दिन सुबह औरत अपनी गठरी लेकर भीख माँगने को निकल पड़ती है तब रामू उस औरत की विवशता,मज़बूरी और एकाकीपन को देखकर उसे अपनाने को तैयार हो जाता है । ममता कालिया ने निम्नवर्ग लोगों की मानसिक विशालता

को दर्शाया है । रामू जैसे लोग बहुत कम ही होते जो दूसरों की विवशता और मज़बूरी को देखकर सहायता के लिए आगे आते हैं । ऐसे लोगों की कथनी और करनी में एकरूपता भी होती है । यहाँ लेखिका उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के लोगों की मानसिकता की पहचान करती है ।

बारह साल की गरीब लड़की में भी नारी चेतना का परिवर्तित रुप देख सकते हैं । उसमें भी अपने अस्तित्व की परख होती है । 'चोट्टिन' कहानी की सुखिया अपनी माँ के साथ दूसरों के घरों में बर्तन माँजकर अपना पेट भरती है । सुखिया के लिए भोजन से ज़्यादा महत्व पहनने के लिए एक जाँघिया का है । जाँघिया के अभाव में वह नहाती भी नहीं । वह जानती है कि चोरी करना बुरी बात है लेकिन मज़बूरीवश एक खुली दूकान से मौका मिलते ही वह एक जाँघिया चुराती है । वहाँ से भागते वक्त सिपाही उसे पकड़ता है फिर उसकी दीन हीन दुर्बल शरीर देखकर उसे छोड़ देता है । घर पहुँचने के बाद नया जाँघिया पहनकर उसे सुरक्षा का अनुभव होता है ।

इस कहानी में लेखिका ने एक नन्ही सी बच्ची के द्वारा एक वर्ग की समस्या को उजागर किया है । हमारे समाज में दलितों और पीड़ितों की समस्या आजकल बढ़ती जाती है । संपन्न वर्ग संपन्नता की ओर जाता है, पीड़ित वर्ग अभावों की ओर । यहाँ सुखिया को एक दूकान से चोरी करनी पड़ती है । वास्तव में उसे चोर बनानेवाला अपना समाज है । यदि उसकी मज़बूरी, विवशता को देखकर कोई संपन्न वर्ग जाँघिया दे दिया होता तो वह कभी चोरी नहीं करती । पैसे के अभाव में इस तरह की हीन प्रवृत्तियाँ परिस्थितिवश करना पड़ता है । यहाँ सुखिया चोर नहीं है । उस नन्ही सी बच्ची के अंदर अपने स्त्रीत्व को, अपने शरीर को बचाने की चाह है । इसलिए वह जाँघिया चुराती है । शास्त्रों में भी कहा गया है अन्न से ज़्यादा महत्व वस्त्र को है । अन्न खाये बिना दो दिन

गुज़रना बडी बात नहीं है लेकिन नग्नता को छुपना कठिन काम है । वस्त्र के बिना दो पल तक वह रह नहीं सकता । स्त्रीत्व के प्रति सुखिया का विचार अत्यंत श्रेष्ठ है । अपने स्त्रीत्व की लाज बचाने के लिए ही वह श्रेष्ठ मूल्य "चोरी करना पाप है", इस सिद्धांत का खण्डन करती है ।

'शॉल' कहानी की नायिका ननकी को स्कूल की प्रधान अध्यापिका की कृपा एवं दूसरों की सहायता से जो शॉल मिलता है । वह अत्यंत संतुष्ट हो जाती है । ननकी गरीब है, निम्न श्रेणी की है, कच्ची नौकरी करनेवाली है फिर भी अपने में जो चेतना या अस्तित्व भाव है उसे वह अच्छी तरह समझती है । गरीब होने के बावजूद उसमें एक मूल्य बोध है । नया शॉल ओढ़कर दूसरे दिन काम पर आने पर मुख्य अध्यापिका के अतिरिक्त बाकी अध्यापिकायें बुरी तरह से उसकी हँसी उड़ाती है । एक एक बात पर उसे ताड़ने लगते है । तिवारी बहनजी पागल होकर कहती है – "ननकी तुमने तो हद ही कर दी । खुद नया शॉल क्या ओढ़ लिया ? दूसरों के कपडों को तुम टाट पट्टी समझने लगी । शरम नहीं आती । चाय गिरा दी । मेरा तीन सौ का शॉल खराब कर दिया, बदतमीज़ कहीं की ।"[१५७] वह शॉल मुख्य टीचर को वापस दे देती है और कहती है, "बहनजी, यह शॉल आप लेत जाएँ, हमका न चाही । सुबह से मार फबती सुन सुन हमार छाती फट गयी ।"[१५८] अपने अस्तित्व को दूसरों के सामने दबाना वह नहीं चाहती । शॉल लौटाकर ननकी किसी से कुछ लेने के भार से मुक्त हो जाती है । इसमें उसका अस्तित्व बोध झलकता है । निम्न जाति के होने के बावजूद भी उसका अपना एक चिन्तन है, सोच है, अस्तित्व बोध है । यहाँ लेखिका ने परिवर्तित हो रहे नये सामाजिक मूल्य को उजागर किया है । ये मूल्य बोध निम्न वर्गों में भी देख सकते हैं ।

'रोशनी की मार' कहानी की बिटिया निम्न जाति की है । बावजूद इसके

वह अपने अस्तित्व को महत्व देती है । दूसरों के घरों का लाट्रीन साफ करके वह अपनी जीविका चलाती है । उसमें साहस, आत्माभिमान और मानवीयता की झलक है । पुरुषों की दृष्टि से अपने स्त्रीत्व को बचाना वह अच्छी तरह जानती है । उसके हाथ में 'झाडू' है, जबान पर 'सरस्वती' है । दूसरों को अपमानित करनेवाले आज के युग में बिटिया जैसी जमादारिन की भूमिका महत्वपूर्ण है ।

हमारे समाज में बिटिया जैसी जमादारिनों का बडों के घरों में पहुँच नहीं होती । उनसे सभी दूर रहना चाहते हैं । उसे इन्सान तक नहीं माना जाता है । ऐसी एक अवस्था में घर की मालकिन तिवारिन बेहोश हो जाती है । जमादारिन परेशान हो जाती फिर भी वह आँगन के नल से चुल्लू भर पानी लेकर उसके मूँह पर छिड़क देती है । लेकिन कोई फायदा न मिलने पर वह अपनी व्यावहारिक बुद्धि से कॉलनी के एक डॉक्टर को बुलाकर उसकी जान बचाती है । बाद में डॉक्टर तिवारजी को बुलवाते है । इस कहानी में मालकिन की जान बचानेवाला डॉक्टर नहीं जमादारिन बिटिया है । डॉक्टर तिवारजी से कहता है, "असली इनाम का हकदार तो आपकी जमादारिन है । वही मुझे बुलाकर लाई । बिटिया ने जिस तरह इनके तलुवों की मालिश की, पानी गरमाया, सिरिंज उबाली, वह बहुत अच्छी नर्स बन सकती है तिवारजी ।"[१५९] लेकिन क्या मालकिन के अन्दर जमादारिन के प्रति कोई स्नेह भावना है । क्या वह जमादारिन के प्रति एहसानमन्द है ? इन सारी स्थितियों से वह अनजान है। उसके पति उससे सब छिपाता है । हो सकता है हकीकत के जानने पर मालकिन भवंडर खडा करे । यहाँ लेखिका संपन्न वर्गों की संकीर्ण मानसिकता को उजागर करने के साथ निम्न वर्गों की मानवीयता और मूल्य बोध को भी प्रकट करती है ।

निष्कर्ष

'मूल्य' जीवन की सार्थकता के लिए अनिवार्य है । क्योंकि जब तक इस सृष्टि पर सजग मनुष्य विद्यमान है, वह जीवन मूल्य को अपनाए बिना नहीं रह सकता । मूल्य संस्कृति के अंग है और इसलिए ही स्वयं संस्कृति भी चरम मूल्य है । साहित्य में मूल्यों की आस्था महत्वपूर्ण है । साहित्यकार युग के मूल्यों को ही आधार बनाता है । मूल्य काल-सापेक्ष होते हैं । मूल्यों में बदलाव आधुनिक युग की एक ज्वलंत समस्या है । व्यक्ति और समाज का जो पारस्परिक संबन्ध साहित्य में है उनसे निरपेक्ष होकर मूल्यों को नहीं समझा जा सकता ।

समाज को सुव्यवस्थित बनाये रखने के लिए सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, नैतिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में मूल्यों के महत्व को बनाये रखना अनिवार्य है । मानवीय जीवन की सारी क्षमता, ऊर्जा, प्रगति मूल्य ही है । एक आदर्श जीवन जीने के लिए मूल्य की ज़रूरत है । मूल्य द्वारा प्यार, ममता, विश्वास, विकास, इच्छाओं की पूर्ति, आत्मानुभूति, दायित्व बोध, आत्मविश्वास, आचार-विचार-व्यवहारों में संतुलन, आत्म नियंत्रण, निस्वार्थ भाव आदि आदि की प्राप्ति होती है ।

भारतीय संस्कृति में मूल्य सबसे श्रेष्ठ है। लेकिन आजकल मानव इतना व्यस्त होने के कारण न आत्मीयता है, न चैन है, न निर्मलता है । सबकुछ एक प्रकार का दिखावा मात्र है । अधिकांश मानव मुखौटा के बल पर जीवन जी रहा है । ऐसे अवमूल्यन या मूल्य परिवर्तन का कारण भूमण्डलीकरण, बाज़ारवाद, वैश्वीकरण, नव उपनिवेशवाद, विज्ञापन क्रान्ति, सूचना प्रौद्योगिकी आदि की व्याप्ति है । उत्तराधुनिक युग में इन सबके प्रभाव से परिवर्तन समाज के हर व्यक्ति में खूब प्रकट होता है ।

ममता कालिया की कहानियों में उन्होंने परिवर्तित मूल्यों को बहुत बारीकी से ग्रहण किया है । उपर्युक्त कहानियों के अध्ययन करने पर विभिन्न क्षेत्रों में आये मूल्य परिवर्तन को गहराई से समझने का मौका मिलता है । मूल्य परिवर्तन का प्रभाव सभी वर्गों में एक साथ होता है । लेकिन हर एक में हुए परिवर्तन के स्तर में अंतर है । सच कहे तो इस मूल्य परिवर्तन का सबसे ऋणात्मक प्रभाव मध्यवर्ग में पड़ा है । विशेषतः मध्यवर्ग की स्त्री इस परिवर्तन का शिकार बन गई है ।

ममता कालिया की सामाजिक कहानियों में 'छुटकारा', 'बेतरतीब', 'साथ' आदि कहानियों में प्रेम के परिवर्तित स्वरुप का वर्णन है । युवापीढ़ी की मानसिक दशा की नई अभिव्यक्ति 'लडके', 'वे' आदि कहानियों में है । 'वह मिली थी बस में', 'नमक' आदि में आत्मविश्वास का नया आयाम देखने को मिलता है । संयुक्त परिवार में हुए मूल्य परिवर्तन की झांकी 'इक्कीसवीं सदी', 'खानपान' में मिलती है । 'सेवा', 'एक दिन अचानक' में पीढ़ियों में आये परिवर्तित मूल्य का संकेत दिया गया है । स्त्री अस्मिता या लड़कियों के सोच विचार में आये परिवर्तित मूल्य का चित्रण मुन्नी, आशा, सुधा, पूर्वा, टुनिया आदि पात्रों के माध्यम से क्रमशः 'मुन्नी', 'तोहमत' (लड़कियाँ), 'नई दुनिया', 'आपकी छोटी लड़की' आदि कहानियों में उभर आते हैं ।

पारिवारिक माहौल में स्त्री की मूल्य संवेदना को उजागर करने वाली कहानियाँ हैं 'मनोविज्ञान', 'बिटिया', 'दर्पण', 'बोलनेवाली औरत' आदि । दांपत्य जीवन में परिवर्तित सोच 'एक अदद औरत', 'अपत्नी', 'मन्दिरा', 'काली साडी' आदि कहानियों में अभिव्यक्त किया गया है । 'राजू' बाल मनोविज्ञान पर आधारित कहानी है । माता-पिता और संतान के बीच परिवर्तित मूल्य चेतना 'राजू', 'जितना तुम्हारा हूँ', 'आज़ादी',

'दो ज़रूरी चेहरे' आदि कहानियों का मुख्य विषय है । पीढ़ियों के बीच का परिवर्तित मूल्य बोध का उत्तम मिसाल 'उड़ान', 'कवि मोहन' आदि कहानियों में हैं । अविवाहित नौकरीपेशा स्त्रियों के मूल्यबोध का चित्रण 'ज़िन्दगी सात घंटे बाद की', 'सीट नं छह', 'फर्क नहीं' के ज़रिये ममता कालिया व्यक्त करती है । आर्थिक मूल्यों में हुए परिवर्तन को 'प्रिया पाक्षिक', 'पहली', 'सिकन्दर' कहानियों में प्रस्तुत करती है ।

नैतिक मूल्यों का परिवर्तित चेहरा 'बीमारी', 'अपत्नी', 'मेला' जैसी कहानियों में प्रकट होता है । धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों में आये परिवर्तित मूल्य बोध 'परदेश', 'खिड़की', 'पर्याय नहीं', 'बाल-बाल बचनेवाले' में हैं । शिक्षा एवं साहित्य संबन्धी मूल्यों में आये परिवर्तित स्वरूप 'उसका यौवन', 'लकी', 'कवि मोहन' आदि में देख सकते हैं । 'नायक', 'सुलेमान' आदि कहानियों में राजनैतिक परिवर्तित मूल्य संवेदना देखने को मिलता है । 'अनुभव', 'चोट्टिन', 'शॉल', 'रोश्नी की मार' आदि कहानियों में श्रमिक वर्गों में आर्विभूत मूल्यबोध के परिवर्तित रुप खुलकर प्रकट होते हैं । इस प्रकार ममता कालिया की कहानियों के अध्ययन के ज़रिए निस्संकोच यह कह सकते हैं कि मूल्य परिवर्तन की विभिन्न तहतों पर उन्होंने विचार किया है । आज के इस उत्तराधुनिक युग के परिवर्तित मूल्य को एक हद तक अपनी कहानियों के मार्फत उकेरने में सक्षम हुई है ।

संदर्भ संकेत

१. डॉ. बच्चन सिंह – आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द – पृ. २८
२. मधुमति – मार्च २००६ – पृ. २०
३. समीक्षा – अक्तूबर-दिसंबर २००७ – पृ. २७
४. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. ५६
५. वही – पृ. ७३
६. वही – पृ. १६१
७. वही – पृ. ७०
८. डॉ. रामप्रसाद – साठोत्तरी कहानी में पात्र और चरित्र चित्रण – पृ. १६४
९. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. ३१९
१०. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. २००
११. वही – पृ. २७३
१२. वही – पृ. २७४
१३. वही – पृ. ३८२
१४. वही – पृ. ४०९
१५. वही – पृ. ४१०
१६. वही – पृ. ४६०
१७. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. १८१
१८. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. ३४८
१९. वही – पृ. ४५१
२०. वही – पृ. ४७
२१. वही – पृ. ४१८
२२. वही – पृ. ४१८
२३. वही – पृ. ३२७
२४. वही – पृ. ३२७
२५. वही – पृ. १८
२६. वही – पृ. ३९४

२७. वही – पृ. ३९५

२८. वही – पृ. ३९५

२९. वही – पृ. ३९५

३०. वही – पृ. १७८

३१. वही – पृ. १८०

३२. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. ३०१

३३. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. ३०४

३४. वही – पृ. ३०४

३५. वही – पृ. ३०४

३६. वही – पृ. ३०५

३७. वही – पृ. २७

३८. वही – पृ. २७

३९. वही – पृ. २१८

४०. वही – पृ. २१९

४१. डॉ. मीना खरात – उत्तर आधुनिकता और मनोहरश्याम जोशी का साहित्य विमर्श – पृ. ८५

४२. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. ४४३

४३. वही – पृ. ४४४

४४. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. २७७

४५. समीक्षा – अक्तूबर-दिसंबर १९८४ – पृ. २२

४६. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. ४३६

४७. वही – पृ. ४३९

४८. वही – पृ. ४३९

४९. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. ३१३

५०. वही – पृ. २५८

५१. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. ३१४

५२. दोआबा – दिसंबर २००७ – पृ. ६२-६३

५३. डॉ. विजया वारद – साठोत्तरी हिन्दी कहानी और महिला लेखिकाऐं – पृ. ८७

५४ प्रेमचन्द – गोदान – पृ. ४३३
५५. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. ३६
५६. डॉ. साधना अग्रवाल – वर्तमान हिन्दी महिला कथा लेखन और दांपत्य जीवन – प. २१७
५७. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. २०४
५८. वही – पृ. २०९
५९. ममता कालिया – ममता कालिया - पच्चीस साल की लड़की – पृ. २४
६०. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. ३४०
६१. वही – पृ. ३४०
६२. वही – पृ. ९८
६३. वही – पृ. १८९
६४. वही – पृ. ३६३
६५. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. २१६
६६. वही – पृ. २१६
६७. वही – पृ. ११६
६८. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. २९७
६९. वही – पृ. १४३
७०. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. २३०
७१. वही – पृ. २९८
७२. वही – पृ. २९९
७३. वही – पृ. ३०७
७४. वही – पृ. ८०
७५. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. १८३
७६. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. ६२
७७. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. १९४
७८. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. ८८
७९. ममता कालिया – पच्चीस साल की लड़की – पृ. २४
८०. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. ३४०

८१. वही – पृ. ३६२
८२. वही – पृ. ३६४
८३. वही – पृ. ३६७
८४. वही – पृ. ३९९
८५. वही – पृ. ३९९
८६. डॉ. रेणु गुप्ता – हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी – पृ. १०१
८७. वही – पृ. १३२
८८. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. ३८९
८९. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. १३२
९०. वही – पृ. १३३
९१. वही – पृ. १८२-१८३
९२. श्री मिलिन्द – दिसंबर २००९ – पृ. १२
९३. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. २५७
९४. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. २०९
९५. डॉ. मंजु शर्मा – साठोत्तरी महिला कहानीकार – पृ. १५६
९६. वागर्थ – जून १९९७ – पृ. १९
९७. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. २९
९८. वही – पृ. २२५
९९. वही – पृ. २३४
१००.वही – पृ. २३६
१०१. वही – पृ. २९२
१०२. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. २१०
१०३. वही – पृ. २११
१०४. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. ३५२
१०५. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. ४४
१०६. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. २१७
१०७. वही – पृ. २१८
१०८. वही – पृ. १८४

१०९. वही – पृ. ३६१
११०. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. २८३
१११. वही – पृ. २८४
११२. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. १३६
११३. वही – पृ. २८३
११४. राजेन्द्र यादव – कहानी स्वरुप और संवेदना – पृ. २११
११५. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. १५३
११६. वही – पृ. १५६
११७. डॉ. मधु संधु – कहानी का समाजशास्त्र – पृ. २५१
११८. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. ५७
११९. वही – पृ. १२२
१२०. वही – पृ. १२२
१२१. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. ६३
१२२. वही – पृ. ११९
१२३. वही – पृ. १२८
१२४. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. २६७
१२५. वही – पृ. २७८
१२६. वही – पृ. ६८
१२७. वही – पृ. ७९
१२८. वही – पृ. ४०२
१२९. राजकिशोर (संपादक) – नैतिकता के नये सवाल – पृ. ७८
१३०. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. ४४
१३१. वही – पृ. ४६
१३२. वही – पृ. ४९
१३३. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. १४२
१३४. वही – पृ. १४२
१३५. डॉ. सौमंगल कपिक्केरे (उद्धृत) – साठोत्तरी हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी – पृ. ७९

१३६. डॉ. सुरेश चन्द्र – बीसवीं सदी का रामकाव्य – पृ. १४६
१३७. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. २३१
१३८. वही – पृ. २३२
१३९. वही – पृ. २०१
१४०. वही – पृ. २०२
१४१. वही – पृ. २५४
१४२. वही – पृ. ३८८
१४३. वही – पृ. ३८८
१४४. डॉ. बच्चन सिंह – आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द – पृ. १२६
१४५. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. १८७
१४६. वही – पृ. २८१
१४७. वही – पृ. २८१
१४८. वही – पृ. १५१
१४९. वर्तमान साहित्य – सितंबर २०१० – पृ. ४९
१५०. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. ३००
१५१. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड १ – पृ. ३१४
१५२. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ - खंड २ – पृ. ९१
१५३. वही – पृ. ३५१
१५४. वही – पृ. ३५७
१५५. वही – पृ. ७३
१५६. वही – पृ. ७४
१५७. वही – पृ. ११४
१५८. वही – पृ. ११४-११५
१५९. वही – पृ. १७२

चौथा अध्याय

ममता कालिया की कहानियों में मूल्यच्युति से उत्पन्न समस्यायें

स्वतंत्रता प्राप्ति भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के चतुर्दिक दिशाओं में परिवर्तन की आहटें सुनाई पड़ने लगीं । साथ ही मूल्यों में क्रमातीत परिवर्तन दृष्टिगत होने लगा। मुख्यतः सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक क्षेत्रों में बड़ी तीव्रता से मूल्यच्युति होने लगी । बदलाव के नये माहौल में कई तरह की स्थितियाँ उभरने लगीं। समाज विकास की ओर अग्रसर होने लगा। जहाँ विकास होता है वहाँ नयी परिस्थितियों का होना स्वाभाविक है।

स्वातंत्र्योत्तर समाज में सबसे ज़्यादा बदलाव समाज में दृष्टिगत होने लगा। क्योंकि सारी महत्वपूर्ण समस्यायें समाज में उत्पन्न होती हैं । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद संयुक्त परिवार अणु परिवार में बदलने लगा। परिणामस्वरूप मानवीय सम्बन्ध शिथिल होने लगे। मानव के आचार व्यवहार में बदलाव आने लगा। एक प्रकार की स्वार्थयुक्त मानसिकता संबन्धों में घर करने लगी। इन सबके मूल में अर्थ का जुनून विद्यमान है। अर्थ के प्रति अनन्य आसक्ति के कारण सदस्यों के बीच प्यार, ममता, करुणा, आस्था, उदारता आदि मानव सुलभ भावनायें रिसने लगीं । इस सन्दर्भ में डॉ. विजय द्विवेदी का मन्तव्य है "स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारत वर्ष में एक नये परिवेश का उदय हुआ। बदले हुए परिवेश ने व्यक्ति और समाजगत सम्बन्धों में भी परिवर्तन उत्पन्न किया। सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षणिक सभी स्तरों पर हमारे जीवन मूल्यों में टूटन और विघटन की प्रक्रिया तेज़ हुई।"[१]

स्वातंत्र्योत्तर समाज की एक महान उपलब्धि स्त्री शिक्षा का फैलाव है। स्त्री घर की चार दीवारी से बाहर निकलकर शिक्षा ग्रहण करने लगी। शिक्षा ग्रहण कर वह आत्मनिर्भर होने लगी। आत्मनिर्भर स्त्री के व्यक्तित्व में अस्तित्वबोध का होना स्वाभाविक है।

स्त्री अपने अस्तित्व को चेतने लगी। यह पुरुष के बर्दाशत के बाहर की अवस्था रही । स्त्री पुरुष के बीच तकरार उत्पन्न होने का प्रमुख्र कारण स्त्री का अस्तित्व बोध है। परिवार में समस्याओं के उत्पन्न होने का प्रमुख्र कारण भी यही है । इसके साथ ही बदलती हुई नयी परिस्थितियों में मानव अपने आपको ढालने लगा । भूमंडलीकरण, नव उपनिवेशवाद, बाजारवाद, औद्योगीकरण, यांत्रीकरण, विज्ञापन क्रान्ति, सूचना प्रौधोगिकी आदि का प्रभाव हर तबके के मानव में दृष्टिगत होने लगा । ये सब विकास के नये सोपान हैं । जो मानव के अन्दर होड़ की भावना उत्पन्न करती हैं। इस होड़ भरे माहौल में मानव मानव के बीच स्पर्धा विकसित होने लगी । "वर्तमान परिदृश्य में विश्व सिकुडता जा रहा है संचार क्रान्ति और प्रौद्योगीकरण के साथ नैतिकता व शिक्षा में आमूल-चूल परिवर्तन की लहर के साथ साथ मानवीय मूल्यों में भी गहराई से परिवर्तन दिख्राई देता है। आधुनिकता जहाँ प्रगति की सूचक है, वहीं पारिवारिक व सामाजिक संस्कारों में बदलाव की सूचक भी है। आज प्रतिस्पर्धा का दौर है। आगे बढ़ने की होड़ ने मानवता एवं नैतिकता को भी ताक पर रख्र दिया है। इस अंधी दौड़ में शामिल होना जैसे सबकी नियति हो गयी है।"[२] इसका सीधा सम्बन्ध और किसी तत्वों से नहीं परिवार से है।

आज के विकासोन्मुख्र समाज में व्यवस्थित जिन्दगी जीना मानव केलिए दुष्कर हो गया है। क्योंकि उसके सामने कई तरह की ज़रूरतें हैं । ज़रूरतों के साथ साथ एक स्वार्थ युक्त होड़ की भावना भी उसे 'हॉंट' करती रहती हैं। परिस्थितिवश वह भी इस अवस्था का भागीदार बनने को विवश होता है। समाज में आये इस बदलाव को, परिवर्तित मूल्यों से उत्पन्न समस्याओं को साहित्यकार ग्रहण करता है। ममता कालिया एक संवेदनशील लेख्रिका होने के नाते समय और सन्दर्भ के अनुसार समाज की समस्याओं को उकेरने में सक्षम हुई हैं । उनकी प्रायः सभी कहानियों में समाज का यथार्थ बिम्बित है। वह यथार्थ उसके अनुभूत सत्य से उभरा

हुआ है। उनकी सभी कहानियों में विभिन्न तरह की समस्याओं का जीवन्त चित्रण हुआ है। उनमें प्रमुख है सामाजिक समस्याएँ ।

४.१ सामाजिक समस्याएँ

सामाजिक समस्याओं में समाज में व्याप्त अनाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, यान्त्रिकता, बेरोज़गारी, निराशा, अजनबीपन, अकेलापन आदि का खुला चित्रण होता है। इसमें अकेले एक व्यक्ति की समस्या नहीं होती बल्कि संपूर्ण समाज की सम्स्यायें प्रतिबिंबित होती हैं । आज समाज से परंपरागत सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। मूल्यच्युति के इस संघर्षपूर्ण अवस्था में इन्सान भटकने को विवश होता है। आज नैतिकता में मूल्य नही है । नैतिक मूल्यों को स्वीकारना एक तरह के 'unfashion' हो गया है। इस सन्दर्भ में डॉ. राहुल भारद्वाज के विचारों को उद्धृत करना समीचीन लगता है "व्यक्ति के नैतिक मानों में परिवर्तन न हो रहे हैं। जहाँ वह अनिवार्य और आवश्यक था, वहीं इसका दुःखद पक्ष यह भी सामने आया है कि आज मूल्यों में परिवर्तन उस दिशा में भी होने लगा है, जो मनुष्य को पतन और विकृतियों की ओर ले जाता है।"[३] इन बदलते मूल्यों की झलक हिन्दी कहानियों में भी देख सकते हैं। ममता कालिया इन समस्याओं पर अपनी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि डालती हैं ।

४.१.१ नैतिक मूल्यों पर आयी दरारें

सामाजिक समस्याओं में सबसे प्रमुख है नैतिक मूल्यों का पतन। दरअसल नैतिक बोध मानव केलिए परम आवश्यक है । नैतिकता समाज में शांति, चैन, सुख एवं नियन्त्रण स्थापित करने की एक उत्तम व्यवस्था है। लेकिन आज समाज से नैतिकता लुप्त होती जा रही है। आज मानव नैतिक संबन्धी विचारों में अलग दृष्टिकोण अपनाते हैं। जो नैतिक बोध

भारतीयता का अंश था वह आज कहीं गायब हो गया है। आज का युग भूमण्डलीकरण का युग है। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से ही आज नैतिक मूल्यच्युति हमारे समाज में व्याप्त है। नैतिक मूल्यों को बनाये रखने के बदले आज मानव जीवन के विभिन्न श्रेणियों में दरारें आ रही हैं। नैतिक मूल्यों का कोई माप-दण्ड नहीं है। आज स्त्री पुरुष संपर्क में कोई सीमा नहीं। कोई भी किसी के पास बिना हिचहिचाहट के साथ जाता है। वर्तमान युग में नवउपनिवेशवादी प्रवृत्तियों ने आधुनिक मानव को इतना प्रभावित किया है कि उसमें संबन्धों के मूल्य बहुत दूरी पर है। आज के आधुनिक समाज में नैतिक मूल्य रिसते जा रहे हैं। बडे बडे क्लबों में सम्पन्न लोग रात, के नशे में अपनी पत्नियों को बदलते हैं। आज ऐसे अवैध सम्बन्ध सब स्वीकार्य है। क्योंकि इसे लोग आधुनिकता के रूप में स्वीकार करते हैं। नैतिक पतन का उत्तम मिसाल है चित्रा मुद्गल की 'वाइफ स्वैपी'। हमें सोचना चाहिए कि कहाँ गई अपनी नैतिकता ? कहाँ गई अपनी भारतीय परंपरा का मूल्यबोध ? कहाँ गई अपनी मान मर्यादा? आज की इस खोखली आधुनिकता से जीवन सम्बन्धी सारी उत्तम, व्यवस्थित मान्यतायें आधारहीन हो गयी हैं । ममता कालिया ने अपनी कुछेक कहानियों में समाज में दृश्यगत कुछ अनैतिक सम्बन्ध का पर्दाफाश किया है । और अनैतिक संबन्ध से उत्पन्न समस्याओं को उकेरा है ।

अनैतिक संबन्ध का उत्तम उदाहरण है ममता कालिया की 'अपत्नी' कहानी। 'अपत्नी' कहानी की समस्या संबन्धों में पड़नेवाली दरार है । आज संबन्धों में कोई समर्पण भावना नहीं है । पत्नी के होते हुए भी पुरुष परस्त्री से संबन्ध जोड़ता है । पति के होते हुए भी स्त्री भी परपुरुष के हाथों की गुड़िया बनी रहना पसंद करती है । ऐसे संदर्भ में पति-पत्नी का शाश्वत संबन्ध डगमगाने लगता है । 'अपत्नी' कहानी में भी यही समस्या है । 'अपत्नी' का प्रबोध प्रेमिका लीला के साथ खुशी से जीवन व्यतीत करता है। पत्नी से तलाक उसके लिए कोई बडी बात नहीं है, तलाक के बिना भी दूसरी स्त्री के साथ प्रेम करता है। विख्यात

आलोचक मधुरेश के अनुसार "जो कायदे से न ही पत्नी है, न ही अविवाहित प्रेमिका, पहली पत्नी से अभी तलाक न मिलता लीला केलिए चिन्ता का पर्याप्त कारण था। हरीश और उसकी पत्नी टॉगें चौंडी करके बैठने की लीला की आदत से परेशानी का अनुभव करते हैं। बातों बात प्रबोध उन लोगों से बरती जानेवाली 'सावधानी'के बारे में पूछने लगते हैं। प्रबोध डॉक्टर के बढे हुए 'रेट' की बात भी बताता है कि पिछले हफ्ते ही उन्हें डेढ़ हज़ार देने पडे थे।"[४] यहाँ आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के साथ 'मेडिक्कल एथिक्स'की मूल्यहीनता की ओर कहानीकार संकेत करती है। आधुनिक समाज में नैतिकता का कोई महत्व नहीं है। विवाहरूपी पवित्र संस्था को नगण्य मानकर स्वतन्त्र रूप से सरेआम प्रबोध और लीला पति-पत्नी की तरह जीवन व्यतीत करते हैं। लीला मंगल सूत्र को लेकर कहती है "कभी किसी दोस्त के घर इनके साथ जाती हूँ तो पहन लेती हूँ।"[५] अनैतिक सम्बन्ध के साथ मानव जीवन के प्रति भी कठोर व्यवहार करते हैं। अर्थात् अवैध सम्बन्ध से उत्पन्न अवैध शिशु की हत्या बेरहम से होती है। आज के युवा लोग 'Abortion' को एक साधारण सी बात मानते हैं। यहाँ मानवता, दया, करुणा, आदर्श जैसे मूल्य का पतित रूप देखा जाता है। साथ ही स्वार्थ भावना का उग्र रूप विकसित होता है। प्रबोध और लीला अपनी सुख सुविधा में इस तरह तल्लीन है केवल नैतिक मूल्य को वे अनदेखा करते हैं।

इसी तरह की एक कहानी है 'साथ'। इसमें सुनन्दा एक विवाहित पुरुष के साथ बेहिचक जीवन यापन करती है। आज के उत्तराधुनिक माहौल में ये सब जायज है। कोई उसकी ओर विशेष ध्यान नहीं देता है। सुनन्दा अशोक के दफ्तर में काम करती है और शुरु शुरु में उसके साथ आती जाती है बाद में उसके साथ हम बिस्तर होती है। बेटी की अनैतिक व्यवहार की तहकीक देखकर पिता बिलकुल असावधानी से कहता है "इतनी देर में कोई दफ्तर नहीं छूटता और चाहे वह रात के नौ पर लौटे या दिन के नौ पर, उसके लिए कोई फर्क नहीं

पडेगा।"[६] आज के बुजुर्ग भी कमानेवाले सन्तानों के अनैतिक व्यवहार पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाते। सुनन्दा जानती है "वह बिस्तर के अलावा और कहीं अभी उसकी पत्नी नहीं थी। पहली बीवी से तलाक लिये बिना यह मुमकिन नहीं था। पर तलाक की बात से उसे उस रकम की याद आ जाती थी, जो हरजाने के रूप में उसे अपनी पहली बीवी को देनी पडेगी।"[७] अपने परिवार से जो स्वतंत्रता मिलती है इसे 'Misuse'कर लडकियाँ पथभ्रष्ट हो जाती है। अवैध सन्तानों को जन्म देती है। आत्महत्यायें हो रही हैं अर्थात् घर के बुजुर्ग ही उनके लिए अनैतिक माहौल प्रदान करते हैं। इस कहानी में लेखिका इस सत्य की ओर इशारा करती है। यह समस्या एक घर की या एक परिवार की समस्या नहीं है बल्कि संक्रामक रोग की भाँति संपूर्ण समाज को रोगग्रस्त कर देगी ।

आज के युग सब प्रकार की प्रगति एवं विकास का युग है ऐसा मानते हैं। लेकिन बाह्य प्रगति के साथ मानव के आन्तरिक नैतिक बोध का विकास अब तक नहीं हुआ है। समाज के स्थूल यथार्थ से उत्पन्न समस्याओं को उभारनेवाली कहानी है 'वे'। इस कहानी में समाज के सामने संकोचरहित होकर रात बितानेवाले युवजनों का नंगा चित्रण है। डॉ. फैमिदा बिजापुरे के अनुसार "आज के युग में एक लडकी एक लडके के साथ सोना इस तरह माना जाता है जैसे एक दोस्त का एक दोस्त के साथ सोना। नैतिकता के इस तरह के गिरते रूप का चित्रण इस कहानी में अरुणा और 'वह' इन दोनों के माध्यम से किया गया है। वे दोनों रात के वक्त वापस लौटते हैं तो अरुणा के भाई साहब इन्तज़ार कर लौट चुके हैं इसलिए अरुणा उसके कमरे में रात गुज़रती है। वह सुबह उसे दरवाज़े तक छोड़ने केलिए भी नहीं जाता है।"[८] आधुनिक समाज विविध रूप में विकास की ओर जा रहा है । लेकिन इस विकास में संस्कार नाम का शब्द नहीं है। युवा वर्ग की नयी पीढ़ी पाश्चात्य संस्कृति से आक्रान्त है।

पाश्चात्य जगत के स्थूल संस्कारों को जीवन में अपनाकर ये नयी पीढ़ी अपना नैतिक स्कलन कर रही है। एक अकेले युवक के साथ अविवाहित युवति का एक रात बिताना सामाजिक दृष्टिकोण से अनैतिक है। 'वे' कहानी में समाज में प्रकट होनेवाले इसी सत्य को उकेरा गया है।

अनैतिकता की ओर इशारा करनेवाली और एक कहानी है 'पिछले दिनों का अंधेरा'। वर्तमान समाज में शादी विवाह की पवित्रता नहीं के बराबर है। आज के आधुनिक युग में शादी के पहले ही प्रेमी प्रेमिका शारीरिक सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। वैवाहिक जीवन में प्रेम का सम्बन्ध नहीं काम का तीखापन अधिक है। इसी वजह से शादी ब्याह का संबन्ध केवल ताश के पत्तों की तरह डहडहाकर गिर जाते हैं। इसमें प्रेमी कपूर रुचि को अपने घर में बुलाता है। कपूर और रुचि प्रेमी प्रेमिका हैं। दोनों शादी के पहले एक दूसरे से मिलते हैं। एक दिन घर में ब्लाकआऊट होने पर दोनों इसका फायदा उठाते हैं। इस संबन्ध की दृढ़ता ब्लाकआऊट के समय मिलनेवाला वह काम सुख है। यह सुख की दीर्घता कहाँ तक हो सकती है वह सोचने की बात है। भारतीय परंपरा के नैतिक मूल्य बोध को वे इस ब्लाकआऊट की छाया में भूल जाते हैं।

'लगभग प्रेमिका' की सुजाता भी एक स्वतन्त्र चेता स्त्री है। आज के उत्तराधुनिक युग में अधिकांश लोग विवाह को केवल दिखावा मानते हैं। इस कहानी में सुजाता शादी के बाद पति से अलग दूसरे एक जगह होस्टल में रहकर नौकरी करती है। पति के अभाव में वह अपनी बोरियत् दूर करना चाहती है। इसके लिए पति का दोस्त कृष्ण कक्कड़ को चुन लेता है। इसके साथ खुल्लम खुल्ला धूमती फिरती है मानसिक उल्लास प्राप्त करती है। मन को संतुष्ट करती है। जब पति का खत आता है तो प्रेमी को त्यागकर पति के पास चली जाती

है। यही है उत्तराधुनिक प्रेम का स्वरुप। आज प्रेम मन बहलाव का या टाइमपास करने का एक साधन मात्र है। जिस में किसी प्रकार का दायित्व बोध या समर्पण भावना नहीं है। पति के अभाव में पति के दोस्त से काम चलाती है। इस प्रकार के हीन बर्तावों के परिणाम क्या है? इसके बारे में वे कभी नहीं सोचते। केवल अपने अकेलेपन के क्षणों का खूब फायदा उठाने का लक्ष्य रखनेवाली आधुनिक स्त्री की गिरती नैतिकता का खुल्लम खुल्ला चित्रण यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

इसी तरह नैतिक मूल्य का पतन ममता कालिया की 'बडे दिन की पूर्व सॉझ', 'मन्दिरा' आदि कहानियों में भी देख सकते हैं। 'बडे दिन की पूर्व सॉझ' में पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से क्लब,पार्टी आदि में शामिल होनेवाले दम्पतियों का चित्रण है। 'मन्दिरा' कहानी में एक स्नेही पति के होते हुए भी अड़तीस साल की मन्दिरा अपने विभाग के सुविमल की ओर आकृष्ट होती है । इस आकर्षण के पीछे का यथार्थ क्या है ? स्वाभाविकता क्या है ? कारण क्या है ? कोई नहीं जानता। या इसे आधुनिकता माने या नैतिक स्कलन ? लेकिन ऐसी स्थितियाँ आज के समाज में आम बात हो गयी है।

४.१.२ वैवाहिक समस्यायें

ममता कालिया ने वैवाहिक जीवन में उत्पन्न होने वाले अन्यान्य समस्याओं का चित्रण भी किया है। जैसे स्नेह, वात्सल्य, समर्पण, विश्वास आदि दाम्पत्य जीवन के आधार है। इन में से किसी एक तत्व के आभाव में कई तरह की समस्यायें उत्पन्न हो सकती है। आज के उत्तराधुनिक युग में स्नेह, प्रेम, समर्पण मात्र एक दिखावा सा हो गया है। इस कारण से परस्पर विश्वास की कमी दाम्पत्य जीवन में दिखाई देती है। विश्वास के अभाव में दाम्पत्य जीवन का आधार डगमगाने लगता है। इस सम्बन्ध में डॉ. ज्ञान अस्थाना का कहना सार्थक

लगता है "मूल्य संक्रमण की दिशा में सबसे तीव्र और भीषण परिवर्तन पति-पत्नी सम्बन्धों में आया है। पति-पत्नी का एक दूसरे से प्रेम करना, एक दूसरे केलिए प्रतिबद्ध रहना, त्याग करना आदि बातें आज थोथी भावुकता और रोमान्टिक बोध माना जाता है।"[९]

४.१.२.१ प्यार के अभाव में वैवाहिक जीवन में अतृप्ति

ममता कालिया की 'बातचीत बेकार' में प्यार के अभाव को उकेरा गया है। इसकी पत्नी अपनी यान्त्रिक जीवन से ऊब जाती है। आम स्त्रियों की तरह वह पति का प्यार चाहती है। जिसके अभाव में उसे घुटन का अनुभव होता है । विनीता विवाह के बाद जीवन में परिवर्तन चाहती है। लेकिन अपनी ऊबाहट के बारे में वह सोचती है "इन चार सालों में उसका कार्यक्षेत्र सिर्फ रसोई और प्रसूति गृह रहे हैं ।"[१०] परिवार को सम्हालेवाली विनीता पति के मुख से स्नेह का ढाई अक्षर केलिए तरसती है। यहाँ मध्यवर्गीय स्त्री की मानसिकता व्यक्त होती है। डॉ. विजयावारद् के अनुसार "पति का अहंकारी स्वभाव और पुरुषवृत्ति इसकेलिए कारणीभूत होती है। पत्नी को अपने इशारे पर चलाने में वे अपने को धन्य मानते हैं। पति के ऐसे आचरण से पत्नी में घुटन और अकेलापन की भावना उभरती है।"[११]

'एक जीनियज़ की प्रेमकथा' में लेखिका यह स्थापित करती है कि वैवाहिक जीवन में प्रेम का स्थान सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण है । विनीता की तरह कविता भी पति का प्यार, वात्सल्य आदि चाहती है। हर एक पत्नी अपने पति से हमेशा प्यार भरी बातें सुनना और अनुभव करना चाहती है। दरअसल यह एक स्त्री का, पत्नी का अधिकार है। जब वह अपने इन अधिकारों से वंचित होती है तब उसे बेहद दुःख होता है। इससे भी ज़्यादा दुःख तब होता है जब उसका पति उसे दूसरों के सामने अपमानित करता है। यह किसी भी स्त्री केलिए स्वीकार्य नहीं है। यह पुरुषों की कापुरुषता है जो अपनी पत्नी को दूसरों के सामने अपमानित

करता है। विख्यात आलोचक वेदप्रकाश अमिताभ के अनुसार "प्रस्तुत कहानी यह सिद्ध करती है कि पुरुष का निरंकुश एकाधिकार आज भी कम नहीं हुआ है। वह अब चाहे नारी मन को बुरी तरह छीलकर रख देता है। भौतिक सुखों की मौजूदगी के बावजूद कविता को पति द्वारा प्राप्त अपमान हमेशा तनाव, डर और आशंका से भरे रखता है। जहाँ नारी को अपने समानाधिकार की समझ है वहाँ प्रहार एक तरफ़ नहीं होते।"[१२] पुरुष अपने को महान समझते हैं और हमेशा स्त्रियों को अपने अधीन में रखने और नीचा दिखाने का प्रयत्न भी करते हैं। पुरुषसत्तात्मक समाज में प्राचीन काल से ही पुरुषों की आवाज़ उठती थी। स्त्रियाँ गूँगी गुडिया बनी रहती है। और इस गूँगेपन में ही स्त्री का सौन्दर्य निहित रहता है। ऐसा एक विश्वास भी समाज में स्थापित किया गया है। आज के उत्तराधुनिक समाज में भी पुरुष स्त्री का गूँगापन ही चाहता है। इस कहानी में सन्दीप अपनी पत्नी को प्यार भी करती है और दुःख भी देता है। स्त्री की मानसिकता ऐसी होती है कि पति से छोटी छोटी बातों पर भी वाहवाही सुनना चाहती है। इसमें कभी भी खलल उत्पन्न होती है तो स्त्री तनावग्रस्त हो जाती है। इस कहानी में लेखिका ने स्त्री मनोविज्ञान के यथार्थ को उकेरा है।

'राएवाली' कहानी का कथ्य भी इसी विषय से जुडा हुआ है। इस कहानी का पति एक मेधावी व्यक्ति है लेकिन पत्नी को देने केलिए उसके पास प्यार नहीं है। जिस कारण से पत्नी कालिन्दी बहुत दुःखी होती है। इन्सान कितना भी बुद्धि सम्पन्न, अर्थ सम्पन्न क्यों न हो यदि उसके अन्दर प्यार नाम की चीज़ नहीं तो उनका जीवन शून्यता में परिणत हो जाता है । आज के उत्तराधुनिक परिवेश इस तरह की स्थितियों को काफ़ी महत्व देते हैं। आज प्रगति की ओर दौड़नेवाले मानव वैवाहिक जीवन की सुस्थिति केलिए आवश्यक मूल्यों को ठुकराकर अपने अहंकार से दूसरों को दबाते हैं। 'राएवाली' की स्थिति इससे बिलकुल भिन्न नहीं है।

४.१.२.२ वैवाहिक जीवन में विरक्ति से उत्पन्न समस्यायें

दाम्पत्य जीवन में उत्पन्न दूसरे स्वरुप 'मन्दिरा' कहानी में देख सकते हैं। इसका पति वाजपेयी एक साधारण इनसान है। खुले दिलवाला नहीं है, अन्तर्मुखी है। इसके ठीक विपरीत पत्नी मन्दिरा रोमान्टिक है खुली दिलवाली है। वाजपेयी अपनी पत्नी को बेहद प्यार भी करता है लेकिन प्रकट करने में असमर्थ है। वह हमेशा मन्दिरा की सहायता करने केलिए उत्सुक रहता है और उसे ज्यादा आराम देने का प्रयत्न भी करता है। वह हमेशा मन्दिरा के सुख का ख्याल रखता है। लेकिन मन्दिरा वाजपेयी के यथार्थ स्नेह को समझने में असमर्थ रहती है। हमारे समाज में कुछ स्त्रियाँ ऐसी होती हैं जो दिखावे को महत्व देती हैं, मन्दिरा भी ऐसी है। उसके पति वाजपेयी मुखौटा धारी नहीं है। वाजपेयी की सेवाएँ मन्दिरा निर्विकार भाव से स्वीकार कर लेती है। घर में मन्दिरा को हँसी खुशी का अवसर नहीं मिलता यानी पति का सयानीपन उसे खलता है। पति के ऐसे बुजुर्ग एवं सयाने व्यक्तित्व के कारण मन्दिरा को एक प्रकार की विरक्ति एवं अपूर्णता का एहसास होता है। इसलिए मन्दिरा पति से नाखुश होकर विभाग के प्राध्यापक से आकर्षित होती है। घर पर निमन्त्रित भी करती है। सुविमल को देखने पर पति को अपना बेटा याद आता है। पति के इस वक्तव्य से मन्दिरा दंग रह जाती है।

ममता कालिया की 'मनहूसाबी' कहानी की उषा एक कामकाजी स्त्री है। जिसे सब मनहूसाबी नाम से पुकारते हैं । हर किसी को उसका अस्तित्व एक चलता-फिरता प्रश्न मात्र है। उसका जन्म ही संघर्षों के बीच हुआ है। "माँ ने उसे मिटाने केलिए सबकुछ किया, अपने पेट पर ज़ोर से धक्के मारे, मेथी उबालकर पी, कुनैन खाई, पर उसे कुछ न हुआ।"[१३] आर्थिक मुसीबतों के बीच भी किसी न किसी प्रकार एक आर्य समाजी लेक्चरर उससे शादी करने को तैयार हो जाता। उसकी उदारता के प्रति मनहूसाबी अपने साधारण

व्यक्तित्व में से एक असाधारण अस्त्र निकालती है अर्थात् सेवा, समर्पण और प्राणपण से पति के लायक बनने की कोशिश करती रहती। लेकिन जल्दी ही वह समझती है कि इस घर में उसकी वही जगह थी जो ताँगेवाले के घर में घोडी की है। इस आधुनिक युग में भी स्त्री केवल उपयोगिता की वस्तु है। स्त्री में स्त्री सहज गुण होते हैं । स्त्री वस्तु नहीं वह भी मनुष्य है। अमानवीय व्यवहार करने में पति के अंदर किसी प्रकार की हिचहिचाहट नहीं है। कामकाजी होने के नाते उसे बच्चे, पति, दफ्तर, बाज़ार सबसे संघर्ष करना पड़ता है। इसे समझने केलिए कोई तैयार नहीं है। पति भी उसे हमेशा वितृष्णा की दृष्टि से देखता है। इन सभी के कारण दाम्पत्य जीवन में उसे एक प्रकार की विरक्ति, अतृप्ति का अनुभव होता है। पति सदैव विरक्ति और वितृष्णा से बुझी नज़रों से उसकी ओर देखता है जैसे कोई सुबह उठकर घर में पडे मैले कपडों का अम्बार या जूठे बर्तनों का ढेर की ओर देखता है। पत्नी के प्रति पति का यह मनोभाव कितना वेदनाजनक है। पत्नी भी करुणा, दया, वात्सल्य, प्रेम, आदर सब चाहती है। लेकिन आजकल दाम्पत्य जीवन में ऐसी समस्या आम बात हो गयी है।

वर्तमान जगत में सम्बन्धों के बीच पुरानी आत्मीयता नहीं है। इसी कारण आज के आधुनिक युग में दाम्पत्य जीवन शादी के कुछ वर्षों बाद ऊबाहट से भर जाता है। पति-पत्नी दोनों एक दूसरे को ऊब भरी दृष्टि से देखने को विवश हो जाते हैं।

४.१.२.३ वैवाहिक जीवन में सन्देह से उत्पन्न समस्यायें

कभी कभी दाम्पत्य जीवन में छोटी सी बात पर भी सन्देह होना स्वाभाविक है। पति और पत्नी दोनों ओर से यह प्रकट होता है। सन्देह एक 'कैन्सर' की तरह है। वैवाहिक जीवन के परम पवित्र सम्बन्ध में यदि शक रूपी विषैला बीज प्रस्फुटित हो तो दाम्पत्य जीवन का सख्त नींव हिल सकता है। ममता कालिया ने अपनी कुछ कहानियों में दाम्पत्य जीवन में

प्रकट हुए सन्देह और उसके दुष्परिणामों की ओर संकेत किया है। हर स्त्री और पुरुष अपने साथी का प्रेम पाना चाहते हैं। प्रेम विवाह में यह देखा जाता है कि विवाह के बाद जब प्रेमी-प्रेमिका पति-पत्नी बन जाते हैं तो उनका प्रेम दायराबद्ध हो जाता है । 'पीठ' कहानी का प्रेमी विवाह के बाद एक सन्देही पति बन जाता है। जिससे वैवाहिक जीवन में दरारें उत्पन्न हो जाते। 'हर्ष' एक अच्छा चित्रकार है। वह अपने पेन्टिंग क्षेत्र में फ्रीलान्सर है। उसकी भेंट 'इन्दुजा' नामक कलाकार से होती है। दोनों प्रेम करते हैं और उनका प्रेम शादी में परिणत हो जाता है । इन्दुजा का सौन्दर्य दिन ब दिन उसे रस-सिक्त करता रहता है। इन्दुजा को भी हर्ष के संग एक मन, एक प्राण की अनुभूति होती है। गर्मियों की एक रात में इन्दुजा महीन मलमल का कुरता पहनती है। एक सफल चित्रकार होने के नाते कुछ क्षण निहारने के बाद हर्ष उसकी पीठ का सजग चित्र बनाता है। उनकी बहुत सारी तस्वीरें इसके पहले ही बिक चुकी थीं । 'पीठ' नामक यह 'मास्टरपीस' काफ़ी कीमत पर बिक जाती है। इससे उसके मित्र दर्शन कहता है – "हर्ष, इस मास्टरपीज़ का श्रेय तुम्हें नहीं, तुम्हारी मॉडल को जाता है। हम भी समझते हैं दोस्त यह इन्दुजा की पीठ है, शत प्रतिशत।"[१४] यह वाक्य बिलकुल हर्ष के मन को काँटे की तरह चुभता है। उसका मन सन्देहों से भर उठता है। वह इन्दुजा से झिंझोडकर पूछता है, "तुम्हें प्रदर्शन का चस्का लग गया। बताओ, दर्शन से तुम्हारा क्या रिश्ता है ? उसने कैसे जाना यह तुम्हारी पीठ की तस्वीर है।"[१५] अबकी इन्दुजा की मानसिक अभिव्यक्ति के बारे में डॉ. सानपशाम का मत है "कलाकार की 'कलात्मक' भूमिका का इन्दुजा को ज़ात हो चुका था। साथ ही अपने प्रेम विवाह की स्थिति का बोध भी।"[१६] छोटे छोटे शक दांपत्य जीवन में तनाव उत्पन्न करते हैं । जो वर्तमान की एक बड़ी समस्या है ।

हर्ष के शकी स्वभाव से उसका दाम्पत्य जीवन नयी राह की ओर जाता है। शक एक बीमारी है। यह रोग सम्बन्धों को दीमकों की तरह खाने लगता है। इन्दुजा और हर्ष के

जीवन में यही रोग समा जाता है। इन्दुजा कहती है "हर्ष तुम मनोरोगी की तरह बोल रहे हो। पागल हो, मैं क्या जानूँ दर्शन तुम्हारा दोस्त है। मैं क्या तुम्हारे दोस्तों को पीठ दिखाती फिरती हूँ।"[१७] इससे वह क्षुब्ध हो जाता है। उसकी रचनाओं को देखकर उसका साक्षात्कार लेने जो आता है उससे वह अपनी अन्य तस्वीरों के बारे में खूब बढ़ा- चढ़ाकर कहता है। लेकिन जो पुरस्कृत तस्वीर 'पीठ' है उसके बारे में कुछ भी कहने केलिए वह असमर्थ है।

दाम्पत्य जीवन में सन्देही दृष्टिकोण 'उत्तर अनुराग', 'इरादा', 'श्यामा', 'अर्द्धांगिनी' आदि कहानियों में भी देखने को मिलता है। 'उत्तर अनुराग' में पति—पत्नी के बीच सन्देह उत्पन्न होने का कारण तीसरे का आगमन है। मिसिज़ खन्ना को पति का बिसिनज़ पार्टनर ब्यूटी पार्लर चलानेवाली चीनी लड़की सूज़ी के प्रति सन्देह है। पति के स्वभाव में आये परिवर्तित बर्ताव से पत्नी मानसिक तौर पर परेशान होने लगती है। यह स्वाभीवक भी है। घर में भोजन खाते वक्त खन्ना साहब पूछता है "यह क्या टेढ़ी-मेढ़ी सब्जी काटी है। पता है चीन में कितने सलीके से सब्जी काटी जाती है।"[१८] कभी कभी खन्ना साहब किसी महिला के हेयर स्टाइल पर कमेन्ट कर देते तो मिसिज़ खन्ना कहती है। "जब से यह नाइन आयी है, उन्हें तो बाल के सिवा कुछ दिखता ही नहीं।"[१९] पति पत्नी के जीवन को सुचारु रुप से चलाने केलिए मूल्य का स्थान महत्वपूर्ण है। कुछ स्थाई मूल्य मानव में है जैसे प्यार, ममता, सहयोग, सह-अस्तित्व आदि। दाम्पत्य जीवन में जब इन मूल्यों का अभाव होता है तो वहाँ अनजाने ही तनाव का वातावरण उत्पन्न होता है।

'इरादा' और 'श्यामा' कहानियों में पत्नी के प्रति पति का दोषारोपण एवं शंकालू दृष्टिकोण का चित्रण मिलता है। 'इरादा' कहानी की शांति अकेली एवं रोगग्रस्त पीडित माँ को बीच बीच में देखने जाती है। पति इजाजत भी देता है। लेकिन एक बार अपनी

माँ की बात मानकर वह शांति से पूछता है "माँ का नाम लेकर तुम जिससे मिलने जा रही हो। मुझे खूब पता है।"[२०] वैवाहिक जीवन में जब बाहर से कोई दखलअन्दाज करता है तो वहाँ समस्यायें उत्पन्न होती हैं । आम भारतीय मध्यवर्गों में ये समस्यायें पायी जाती हैं । पति पत्नी के जीवन में या तो सास ससुर दखल देते हैं या देवर भाभी। सम्बन्धों के टूटने में समय नहीं लगता। लेकिन सम्बन्धों को दृढ़ता के साथ बनाये रखने में ही मानव की विजय हैं।

'श्यामा' कहानी की श्यामा विजिलेन्स इन्स्पेक्टर की पत्नी है। पति का अत्याचार पूर्ण व्यवहार से अपने बच्चे को संभालने केलिए उसके परिचित एक प्राचार्या के आदेशानुसार एक ट्यूशन ले लेती है। इसके साथ घर के ऊपरी भाग दो लडकों को किराए पर दे देती है। लेकिन दुरभिमानी पति उसे कुछ करने का अवसर नहीं देता। मनोब्यथा से वह प्राचार्य से कहती है "लडकों के नाम पर मेरे ऊपर गन्दे गन्दे लाँछन लगाते थे। बाहर खडे होकर गाली देते थे। घबराकर लडके तो भाग गये ट्यूशनवाले बच्चे के घर जाकर मना कर आये कि मेरी पत्नी पागल है।"[२१] आधुनिक, ज्ञान सम्पन्न, शिक्षित युग में भी ऐसी छोटी सी बात पर दाम्पत्य जीवन नरकतुल्य बन जाता है। विवेक से काम करने की अक्षमता, अपने सहभागी को समझने की असमर्थता, मानवीयता का अभाव, सभ्यताविहीन स्वभाव आदि के कारण दाम्पत्य जीवन में शंकाओं की एक श्रृंखला ही बनती है। आज कितने पति-पत्नी ऐसी शंकाभरी दशा से गुज़रते हैं।

उपर्युक्त कहानियों से बिलकुल भिन्न है 'अर्द्धांगिनी' कहानी की समस्या । वक्ष कैन्सर से पीडित रुपा को ऑपरेशन द्वारा एक वक्ष हटाया जाता है। यह अवस्था उसके अन्दर तनाव उत्पन्न करती है। क्योंकि स्त्री के जीवन में उसके शरीर का महत्वपूर्ण स्थान होता है। शरीर के कुछ अवयवों का कटना स्त्री जीवन में उसके अधूरेपन को बिम्बित करते है । रुपा के जीवन

में यह स्थिति देखी जाती है। अपने व्यक्तित्व की अपूर्णता उसके मन में सन्देह उत्पन्न करती है। घर में कोई स्त्री आती तो पहले रूपा की नज़र उसके वक्ष स्थल पर जाती है। तभी वह तनावग्रस्त हो जाती है। सतर्क दृष्टि से वह पति की ओर देखती रहती है। उसको ऐसा लगता है "पति मिलते, बोलते, चुप रहते, उठते, बैठते, चलते, विदा देते वक्त गुम-शब्दों से मेहमान की देह-यष्टि पर दृष्टि टिकाए हैं।"[२२] मेहमान जाने के बाद वह पति पर आरोप लगाती है, आनेवाली महिला को कोसती रहती और रोते रोते बेहोश हो जाती। यहाँ रूपा वास्तव में मानसिक रूप से रोगग्रस्त है। यह अवस्था मात्र रूपा की नहीं ऐसे रोगाग्रस्त आम स्त्रियों की है। रूपा का पति पर शंका करना स्वाभाविक है। क्योंकि पुरुष साधारणतः पत्नी पर ऐब देखने पर पराये सुख की ओर बढ़ने लगते हैं जो एक हद तक सत्य भी है।

४.१.३ शैक्षणिक समस्याएँ

प्राचीन भारतीय परंपरा में शिक्षा का महत्व अत्यन्त ऊँचा था। पुराने ज़माने में गुरुकुल शिक्षा पद्धति सर्वमान्य मानी जाती थी। आज स्थिति में बदलाव आ गया है। अर्थात् पहले गुरुजनों के प्रति आदर, प्यार, विनम्रता की भावना थी लेकिन आज यह आदर भाव रिसते जा रहे हैं। आज के अधुनातन समाज में शिक्षा क्षेत्रों में भी भ्रष्टाचार और अन्याय का बोलबाला है । विभिन्न माध्यमों के ज़रिए शिक्षाजगत की अनीतियों की वाक्फियत हमें मिलती हैं। जिस शिक्षक के ऊपर अगले पीढ़ी का निर्माण की जिम्मेदारी है वे आज कुपथ का वाहक बनते हैं। आज अध्यापक शिक्षा जगत की आड़ में व्यक्तिगत लाभेच्छा की चिन्ता में काम कर लेते हैं। इसी वजह से इस क्षेत्र में समस्यायें भी बढ़ जाती हैं ।

'नायक' कहानी में एक संस्कारहीन शिक्षक के विकृत विचारों का खुला चित्रण लेखिका प्रस्तुत करती है। शिक्षक का कर्तव्य होता है वह अपने छात्रों को सही दिशा

दिखाये। लेकिन यदि शिक्षक ही भ्रष्ट निकले तो छात्र की स्थिति क्या हो सकती है ? आज के परिवर्तित युग में 'नायक' कहानी के प्रो. मोहन दीक्षित् जैसे लोगों की कमी नहीं है। जो एक ओर शिक्षा की आड़ में अपने आभिजात्य को बनाये रखते हैं तो दूसरी ओर कई तरह के षड्यन्त्रों में फँसे रहते हैं। ऐसे प्रोफसरों की पदचिह्नों पर चलनेवाले छात्र भी उलझनों में उलझ जाते हैं। प्रोफसर की जो बातें हैं "जीवन का अर्थ है जीवन्तता ओर जीवन्तता का मतलब है जोखिम। जिसकी जिन्दगी में जोश हो, खतरा उठाने की तैयारी हो, कुछ नया कर गुज़रने की तड़प हो वही नौजवान है। बाकी सब तो कलपुर्ज है।"[२३] इनके विचारों के पीछे छिपे हुए मूल्य विहीन धारणाओं से छात्रगण अनभिज्ञ है। 'नायक' कहानी का अमित प्रो. एम.डी. के विचारों को श्रेष्ठ मानकर उसकी कूटनीति के षड़यन्त्र में तल्लीन हो जाते हैं। उसके दिशा निर्देश के अनुसार वरिष्ठ प्रोफसर नित्यानन्द का घेराव भी करते हैं। वास्तव में ऐसे प्रोफसर शिक्षा के क्षेत्र को, शिक्षा के मूल्यों को, शिक्षा के उसूलों को नकारकर नयी पीढ़ी को पथ भ्रष्ट करते हैं। इस कहानी का अमित एम.डी. के आदर्शों से प्रभावित होकर अपने भविष्य को अन्धकारमय कर देता है। जब यथार्थ का उसे पता चलता है तब देर हो गयी होती है।

बच्चों का व्यक्तित्व घर के अतिरिक्त शैक्षिक क्षेत्र में सुदृढ़ बनता है। 'फर्क नहीं' कहानी की लड़की का घर में सख्त माहौल है। घर का तीसरा नेत्र युवती पर टिका रहता है। ऐसे सख्त माहौल में घुटघुट कर वह जीती है। जीवन में कुछ सुकून प्राप्त करने केलिए वह प्यारीदेवी महाविद्यालय में बि.ए. केलिए निकल जाती है। लेकिन हालात ऐसे हैं कि कॉलेज में भी उसको वाँछित शिक्षा नहीं मिलती। शिक्षा जगत में आज अध्यापक केवल वेतन या पद की चिन्ता में काम करते हैं अर्थात् वहाँ के प्रोफसर लोग इतने आत्मकेन्द्रित रहे हैं कि विद्यार्थियों के प्रति अपने कर्तव्यों को भूल जाते हैं। इस कहानी में मिसिज़ ओझा भारत का इतिहास तो पढ़ाती है तो अपनी व्यक्तिगत गाथा सुनाती है। प्रिनसिपाल दिल का दौरा होने के नाते कक्षा

में मेहनत नहीं कर पाते। अपनी सेहत पर ध्यान रखते हुए बडी निष्प्राण आवाज़ में एक विद्यार्थी से कहते हैं "बारहवाँ चैप्टर पढो, तुम सब पोयन्टस बताना जाओ, पोयन्टस बताना बहुत ज़रूरी है।"[२४] यहाँ बच्चे अपने इच्छानुसार कुछ पढ़ने को विवश होते हैं। यह वास्तव में एक बहुत बडी समस्या है। भारत वर्ष के सभी प्रान्तों में यही स्थिति देखी जाती है। शिक्षा के क्षेत्र में इन समस्याओं से विद्यार्थियों को मुक्त कर सही दिशा प्रदान न करने पर उनकी अवस्था शोचनीय हो जायेंगी। इन समस्याओं के साथ लेखिका आज की लडकियों के आचार व्यवहार की विकृत रुप को भी उभारती है। आज कुछ लड़कियों में लड़कों को भी मात करने की क्षमता है। वे अध्यापकों का आदर नहीं करती हैं । ऐसी लड़कियाँ पढ़ाई के बहाने कॉलेज में केवल 'time pass' केलिए आती हैं । कुछ लड़कियाँ विवाह तक आती रहती है। ऐसी शोचनीय अवस्था के कारण वे अपने लक्ष्य को भूलकर भटक जाती हैं । इस प्रकार की अनेक छोटी-छोटी समस्याओं से शिक्षा जगत कलुषित है।

आज शिक्षा के क्षेत्र में धन का महत्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक युग में शिक्षा का भी बाज़ारीकरण हो रहा है । स्थिति ऐसी हो गयी है जिसके पास पैसा है वही उच्चशिक्षा ग्रहण करता है। 'चोट्टिन' कहानी की सुखिया को अर्थाभाव के कारण पढ़ाई दूसरी कक्षा से ही छोड़ना पड़ता है। पढ़ने में समर्थ होने के बावजूद भी अर्थ के सामने ऐसे गरीब को सबकुछ त्यागने को विवश होना पड़ता है । इसलिए कि सुखिया माँ के साथ दूसरों के घरों में काम करने केलिए निकल पडती है। यह आधुनिक युग में शिक्षा जगत की एक बडी समस्या है। गरीबों को भी शिक्षा जगत में पढ़ने केलिए सुविधा देना परम् अवश्य है।

इससे भिन्न है 'कवि मोहन' कहानी की समस्या । इसका पिता परंपरागत विचारों को रखनेवाला है । पिता चाहते हैं कि उसका बेटा उसके पुश्तैनी व्यापार को आगे

बढ़ाये । लेकिन बेटा चाहता है पढ़ाई कर आगे बढ़े । यहाँ एक तरह की पीढ़ी समस्या है । आर्थिक सुस्थिरता होने के बावजूद भी अपने बेटे को पढ़ाई से रोकनेवाला पिता इसका मुख्य पात्र है। फीस की मोटी रकम को देखकर पिता कहते हैं "अब इस महीने से फीस छह की जगह साढे सात रुपये जाया करेगा तो फौरन मुनादी कर दी। जाओ कह दो अपने प्रिनसिपल से, हमें नाय पढ़वाने अपनी छोरा। सारी उमर फीस भरेंगे हम और यह ससुरा बि.ए. पासकर कुर्सी तोड़ेंगे।"[२५] कवि मोहन के पिता के समान संकीर्ण सोच रखनेवाले पिता समाज में यत्र तत्र रहते हैं। वे अपनी दकियानूसी विचारों में फँसे रहते हैं। शिक्षा के महत्व से, बच्चों के भविष्य से, वे अनभिज्ञ हैं । उनका विश्वास है कि ज़िन्दगी जीने केलिए पुश्तैनी सम्पत्ति ही काफ़ी है। इस कहानी में ममता कालिया ने नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के शैक्षणिक विचारों में प्रकट हुए अन्तराल को उकेरा है।

४.१.४ साहित्य क्षेत्र की समस्यायें

साहित्य और समाज का सम्बन्ध चिरन्तन है। साहित्य समाज केलिए, मानव केलिए प्राण दायिनी अमोध औषधि के समान है। समाज साहित्य केलिए एक महत्तर प्रेरणा स्त्रोत एवं जीवन को आगे चलाने की एक जीवनदायिनी श्रोत भी है। प्रेमचन्द जी ने कहा "साहित्य का आधार जीवन है । इसी नींव पर साहित्य की दीवार खड़ी होती है । उसकी अटारियाँ, मीनार और गुम्बद बनते हैं ।"[२६] साहित्य वह कला है जो समाज में जागृति और स्फूर्ति लाए जो जीवन की यथार्थ समस्याओं पर प्रकाश डाले। समाज में साहित्य लिखनेवाले और उस पर रुचि रखनेवाले को भी महत्व देने की आवश्यकता है। उनको भी समाज के अन्य श्रेष्ठ पद के समान 'consider' करना हैं। लेकिन आज साहित्य क्षेत्र में भी स्थिति बेहाल है। सब जहाँ एक तरह की प्रतियोगिता का मनोभाव है। साहित्य तो जीवन का भाग होने पर भी

वहाँ भी अत्याचार, अनीति, भ्रष्टाचार, अरुचि की स्थिति है। ममता कालिया स्वयं एक साहित्यकार होने के नाते साहित्य एवं साहित्यकारों के जीवन में व्याप्त समस्याओं से भली भाँति परिचित है। साथ ही अपनी कहानियों में इन समस्याओं को बारीकी से उकेरती भी है।

साहित्यकारों की समस्याओं से सम्बन्धित ममता कालिया की एक श्रेष्ठ कहानी है 'सेमिनार'। 'सेमिनार' कहानी में वर्तमान साहित्यिक क्षेत्र में संगोष्ठियों की लज्जाजनक स्थितियों का यथार्थ चित्रण है । आजकल संगोष्ठियों की एक धारा प्रवाहित हो रही है। इसके लिए कुछ सहायता भी सरकार की ओर से मिलती है। नहीं तो अन्य 'publicity' के माध्यम से पैसा इक्कट्ठा करते हैं। 'पाखी' इस कहानी का मुख्य पात्र है। आयोजक का आवेदन भी अत्यन्त हृदयस्पर्शी है। उसका कहना है "आप अवश्य आयें आपके बिना यह सेमिनार अधूरा रहेगा, विचारोत्तेजक बहस का वातावरण आपके आने से बनेगा।"[२७] सेमिनार शिमला में घटित हुई। पाखी के अलावा चार लेखिकायें और होती है और अन्य युव लेखक भी वहाँ मौजूद है। इस कहानी में सेमिनार एक बहाना है। शिमला जैसे पहाड़ी क्षेत्र में मौज़ मस्ती करने, घूमने फिरने का। आजकल सरकारी व्यय में सेमिनार के प्रतियोगी विभिन्न प्रदेशों में घूमने और सैर-सपाट करने के बहाने निकलते हैं। डॉ. फैमिदा बिजापुरे के मतानुसार "कहानी की नायिका भी वहाँ सिर्फ इसलिए गयी है कि कुछ प्रकाशकों का पीछा छूट जाए। वहाँ सेमिनार में जाने के बाद उसे पछतावा होता है कि वह वहाँ क्यों गयी। क्योंकि कोई भी मौलिक बात उसे वहाँ दिखाई नहीं देती। वहाँ एक 'झाडू' को लेकर महिला लेखिकाएँ उसे सुन्दर कलाकृति मानकर बाज़ार से खरीदकर ड्राइंगरूम में आधुनिकता के नाम पर सजाने को सोचती हैं तो नायिका को उनसे घोर वितृष्णा होती है।"[२८]

दरअसल यहाँ साहित्यक संगोष्ठी के मूल्य का नष्ट करने का प्रयत्न कुछ उत्तराधुनिक, आधुनिक स्त्रियाँ करती हैं। किसी एक का मत है कि मेरे बेडरूम की एक दीवार

बडी सूनी और मनहूस है। मैं तो वहीं लगाऊँ। पाखी ऐसी चीज़ों को खरीदने के लिए इनकार करती हुई कहती है कि मैं इतनी जल्द कहानी से झाडू पर नहीं आ सकती। जो कहानियाँ वहाँ प्रस्तुत होती है उनके प्रति अध्यक्ष का मत है "एक अच्छी कहानी में न पात्र प्रमुख होता है, न विषय, न घटना। कहानी के कहानीपन का चौखटा तोडने केलिए ज़रूरी है कि आज की कहानी अपने आचार-शास्त्र को तोडे।"[२९] यहाँ साहित्यक क्षेत्र में, रचनाओं में आये मूल्यच्युति का चित्रण है। पाखी जब कहानी पढ़ते वक्त क्षमा माँगती हुई कहती है "मैं माफी चाहती हूँ आप सबसे । क्योंकि मेरी कहानी में हाड़ मॉस के लोग है, उनका एक निश्चित परिवेश है, घटना जैसी घटिया बात भी शायद इसमें है और यह कहानी अपने आचार शास्त्र को भी शायद नहीं तोडती।"[३०] विख्यात आलोचक मधुरेश के अनुसार "जीवन और कलावाद की शाश्वत बहस में ममता कालिया किसके साथ हैं इसे उनकी कहानी 'सेमिनार' से समझा जा सकता है। अपने रचनात्मक सरोकारों को लेकर पाखी के मन में कहीं कोई दुविधा नहीं है। कहानी में सीमित और सुरक्षित अनुभववाली जिन लेखिकाओं की कहानियों का उल्लेख हुआ है ममता कालिया उन्हें कलावाद से जोड़कर देखती हैं । सेमिनार में आई अधिकत्तर लेखिकाएँ और उनके समर्थक आलोचक ऐसी ही कहानियों को महत्व देते हैं। जब पाखी अपनी कहानी पढ़ने को खड़ी होती है, पढ़ी जा चुकी कहानियों के क्रम में अपनी कहानी उसे कुछ बेमेल-सी लगती है ।"[३१] आधुनिक प्रगतिशील वैज्ञानिक युग में साहित्य का महत्व घटता जा रहा है । आज अधिकांश रचनाओं में कोई मूल्य नहीं है। जो कुछ लिखा जाता है उसे उत्तराधुनिक शैली के रूप में स्वीकार किया जाता है जो मात्र एक दिखावा है। वास्तविकता को नकारात्मक दृष्टि से देखने की रीति उत्तराधुनिक साहित्य की एक विशेषता है। 'सेमिनार' कहानी में आज के युग की हावभाव पुर्ण रुप से प्रकट होते हैं। लेखिका समाज में योग्य साहित्यकार की कमी को उजागर

करने के साथ साहित्य जगत् में पाखी जैसे समर्थ साहित्यकार होने की आवश्यकता को स्पष्ट करती है।

साहित्य के प्रति रुचि रखनेवाली 'नई दुनिया' की पूर्वा की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। साहित्य के प्रति अनन्य अभिरुचि की वजह से जीवन में उसे तरह-तरह की मानसिक यातनाओं का सामना करना पड़ता है। परिवारवालों की मानवीय भाव, ममता, लगाव आदि की कमी एक हद तक इसमें दर्शनीय है। पूर्वा साहित्यक रचना के शुरु शुरु में अपने खानदान के कच्चे चिट्ठे लिखती रहती हैं। इससे एक एक कर सभी सम्बन्धी नाता तोडते हैं। जिस रफ्तार से कहानियाँ की गिनती रही थी उसी रफतार से रिश्तेदारों की गिनती घट रही थी। परिवार वालों को पूर्वा की इस प्रवृत्ति से आपत्ती है। साहित्य के द्वारा अपनी जिंदगी का पर्दाफाश करना उनको पसन्द नहीं है। पूर्वा की सोच हमेशा अलग है। स्कूली पढाई में वह इतनी कमज़ोर है कि उसकी माँ दुःख के साथ कहती है "शुरु की लद्द धोडा थी। तीन साल तक तो पैदल ही नहीं चली। जैसे ही खड़ा करते लद्द से गिर पड़ती। सब कहते इसे पोलियो है। पर एक दिन जब सब बच्चे इसे मालगाड़ी मालगाड़ी कहकर इसकी हँसी उड़ा रहे थे, यह अचानक उठी खम खम चल दी।"[३२] ऐसी पूर्वा शनै शनै आगे बढ़ती है फिर भी जो इनकार अपने आत्मजनों से मिलता है यह उसको अकेलापन के अलावा कुछ नहीं देता। इन कठिनाईयों एवं मानसिक व्यथाओं के बीच भी साहित्यक क्षेत्र में काफ़ी प्रगति वह हासिल करती है।

'झूठ' एक यथार्थवादी कहानी है । झूठ कहानी की समस्या वर्तमान विज्ञापन जगत् से जुड़ी हुई है । विज्ञापन शब्द का अर्थ ही 'दिखावा' करना, असलियत को छिपाना, बहुरंगे स्वरुप को दिखाना आदि है । इस कहानी के प्रमुख पात्र एक लेखिका है । स्त्री को हर कहीं अनगिनत समस्याओं का सामना करना पड़ता है । इसका ज्वलंत उदाहरण है यह कहानी । इसमें लेखिका कहानी लिखकर संपादक के पास भेजती है । अपने प्रभाव जमाने

केलिए असत्य को स्वीकार करना एक साधारण सी बात बन जाती है। आधुनिक मानव को ऐसे व्यवहार में किसी भी प्रकार का मानसिक हिचहिचाहट नहीं है। इस कहानी में भी एक प्राध्यापिका तेजस्विनी की क्रान्तिकारी कहानी पढ़कर संपादक लेखिका के प्रति मोहित हो उठता है । वह सोचता है कि लेखिका कोई यौवनयुक्ता है क्योंकि कहानी उतनी मसालेदार है । संपादक अनायास ही उस पर उत्तेजित हो जाता। उससे एक फोटो और जीवन परिचय भेजने का भी अनुरोध करता है। संपादक ने संपादकीय आलेख में अपनी एक पुरानी तस्वीर रखता है। आज की प्रतियोगिता से युक्त लेखकीय क्षेत्र में संपादक नयी लेखिकाओं को फंसाने केलिए क्या क्या करते हैं और अपनी रचनाएँ छापने केलिए लेखिकाएँ भी किस तरह अपनी तस्वीर भेजकर अपना स्वार्थ लाभ उठाना चाहती है, इसका चित्रण 'झूठ' कहानी में स्पष्ट तरीके से चित्रित करती है। यह वास्तव में एक समस्या भी है । इस तरह की स्थितियों से साहित्य की गरिमा नष्ट होती है । संपादक लेखिकाओं की खूबसूरती को देखकर उनके साधारण सी साधारण कहानी भी प्रकाशित करती है ।

४.१.५ भ्रष्टाचार एवं अत्याचार से उत्पन्न समस्यायें

आज की इक्कीसवीं सदी में भ्रष्टाचार एवं अत्याचार एक आम बात हो गई है। भ्रष्टाचार एवं अत्याचार आज भारतीयों के रीति रिवाज़ में एक हिस्सा बन गये हैं। क्योंकि आज भ्रष्टाचार जैसी बात को कोई भी व्यक्ति गलत या बुरा नहीं मानता। आज के उत्तराधुनिक युग में लोग जाने अनजाने ही भ्रष्टाचार की जाल में गिर पड़ते हैं। समाज से सत्य, नीति, न्याय का स्थान खत्म हो गया है। सब एक स्वार्थ लालसा से लेकर कार्यरत है। इसकेलिए सम्बन्धों को तोड़ने का संकोच भी वे नहीं करते। आज दफ्तरीय संस्कार इतना भ्रष्ट हो गया है कि छोटे-मोटे काम केलिए रिश्वत् चाहते हैं। अपेक्षार्थियों को कई बार दफ़तर की सीढ़ियों पर उतरना

चढ़ना पड़ता है और सरकारी अफसर सरकारी सुख सुविधाओं का पूरा फायदा उठाकर कर्म पथ से वंचित रहते हैं।

'जाँच अभी ज़ारी है' कहानी में भ्रष्टाचार का चित्रण है। बैंक में काम करनेवाली एक निष्कलंक लड़की अपर्णा का जीवन बैंक अधिकारियों के स्वार्थ पूर्ण व्यवहार से बेहाल हो जाता है। अपर्णा एक भोली-भाली लड़की है। वह वर्तमान के दोहरे संस्कार से अनभिज्ञ है। अधिकारियों का कहना न मानने के कारण वे अपर्णा को एक अनजान केस में फँसाते हैं। अपने पक्ष में न्याय है, सभी बातें ठीक है, जो विचार अपने में है उसको जड़ से उखाड़ने की शक्ति बड़े पद पर रखनेवालों में है। समाज की मूल्यहीनता हम यहाँ देख सकते हैं। एल.टी.सी के रकम पर आरोपित केस के चक्कर में अपर्णा अत्यन्त बेचैन और विवश हो जाती है। अपर्णा दिन ब दिन दुबली होती जाती० है और उसकी केस फाइल मोटी होती जाती है। केस की वजह से अपर्णा को जगह-जगह पुरुष मेधा समाज का सामना करना पड़ता है। एक एक दफ्तर में जाते वक्त तरह-तरह के आपमान सहना पड़ता है। वह तो अपनी केस को सुलझाने केलिए इधर उधर घूमती भागती चलती है। अपर्णा द्वारा एल.टी.सी के नाम पर ली गई एड़वान्स उचित जाँच के अभाव में बड़ी रकम बन जाती है। और इसके साथ ही अपर्णा का मानसिक तनाव बढ़ता जाता है । एक स्त्री के प्रति ऐसा अमानवीय व्यवहार कतई स्वीकार नहीं है । लेकिन आज समाज में यह स्थिति आम हो गई है । आजकल समाज में स्वार्थ भावना से किये जानेवाले भ्रष्टाचार का वास्तविक रुप 'जॉच अभी ज़ारी है' कहानी की अपर्णा की ज़िन्दगी में मौजूद है।

'श्यामा' कहानी में पति का अमानवीय व्यवहार से पीड़ित पत्नी का चित्रण है। नौकरी ढूँढते वक्त श्यामा की दयनीय स्थिति जानने का अवसर एक कॉलेज प्राचार्या को प्राप्त

होता है। प्राचार्या के निर्देशानुसार आजीविका चलाने केलिए श्यामा ट्यूशन कर अपने घर का ऊपरी हिस्सा किराये पर देने को तैयार हो जाती है। इस पर नाराज़ होकर पति उसे कमरे में बन्द कर देते है । जब प्राचार्या को इसकी जानकारी मिल जाती है तब अन्याय के विरुद्ध 'action' लेने केलिए वे थाने में पहुँचती हैं । वहाँ के अधिकारियों से उसे असहमति ही प्राप्त होती है। थाने के अधिकारी और प्राचार्या के बीच के संवाद इस प्रकार है "जिसके साथ ज़यादती हो रही है, वह खुद आये, आप कौन होती हैं ? अजब आदमी है आप। औरत ताले में है। वह कैसे आयेगी? 'मियाँ बीवी का झगड़ा है, आप इसमें क्यों पड़ रही हैं।"[३३] यहाँ नियमों के पालन करता या संरक्षक पुलिस समस्या को सुलझाने के बजाय समस्या से हाथ धो लेते हैं। बेचारी प्राचार्या कुछ करने में असमर्थ हो जाती है। श्यामा की दयनीय दशा के बारे में औरों के सामने भी बताती है । लेकिन कुछ दिन के बाद अखबार में खबर दिखाई पड़ती है "रमेशचन्द्र श्रीवास्तव की पत्नी श्यामा श्रीवास्तव सीढ़ी से गिरकर बेहोश हो गयीं। उपचार केलिए उन्हें अस्पताल ले जाया गया, जहाँ आज सबेरे उनका दम टूट गया।"[३४]

इस कहानी में पुलिस सारी बात जानने के बाद भी कुछ करने को तैयार नहीं होती। आज के अफसर लोगों की मूल्यहीन प्रवृत्तियों का यथार्थ रूप इसमें स्पष्ट है। एक निर्दोष स्त्री के जीवन बचाने के बदले उसे मृत्यु की ओर धकेल दिया जाता है। यह हमारे वर्तमान समाज का एक जीवन्त सत्य है। कुछ पुरुषों की घटिया राजनीति के कारण बेमौत मारी जाती हैं स्त्रियाँ। यहाँ श्यामा की मौत भी असमय अकाल में हुई है। इसके पीछे कोई दुरुहता अवश्य है। पति का क्रूर हाथ इस हादसे से जुडा हुआ है। ऐसा साफ़ ज़ाहिर होता है।

इसी तरह पुलिस लोगों के भ्रष्टाचार सम्बन्धी बातों का उल्लेख 'इक्कीसवीं सदी, वर्दी, चोट्टिन' आदि कहानियों में हैं।

'इक्कीसवीं सदी' कहानी में जो समस्या है आज भी हमारे आधुनिक प्रगतिशील समाज में दिन प्रतिदिन देखने को मिलती है। आज स्त्री कहीं सुरक्षित नहीं है। भारतीय परंपरा के अनुसार आज स्त्री को कहीं उचित स्थान नहीं मिलता है। उनके साथ कुछ आपत्ति उपस्थित हुए तो नियमपालक भी अनदेखा करते रहते हैं। 'इक्कीसवीं सदी' कहानी में विनोद जब अपनी पत्नी रेखा के साथ घूमने निकलते हैं तो बीच में बारिश की वजह से एक होटल में प्रवेश करना पड़ता है। सिर पोंछने केलिए रेखा बाथरूम चली जाती है । बहुत देर बाद भी रेखा के न आने पर विनोद के पूछने पर होटलवाले अनजान बने रहते हैं। विवश होकर शिकायत पेश करने विनोद थाने पहुँचता है। वहाँ कम से कम रिपोर्ट लिखवाने को भी थानेदार तैयार नहीं है। एक एक बहाना बनाकर वे इनकार करते हैं। उलटे वे विनोद से पूछते हैं क्या उनके बीच दहेज को लेकर कोई झगड़ा हुआ था या नहीं। उलटा चोर कोतवाल को डॉटेवाली स्थिति यहाँ घटित होती है। पुलिस की असावधानी की वजह से रेखा का खून हो जाता है और उसके मृतशरीर की गठरी रेल की पटरी पर पायी जाती है। उसकी सोने की अंगूठी हाथ में चमकती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि हत्यारे अपराधी है मगर चोर नहीं । किसी और वजह से उसने रेखा का खून किया होगा ।

आजकल सभी कहते हैं कि हमारा देश इक्कीसवीं सदी में प्रगति की ऊँचाई की ओर बढ़ता जा रहा है। लेकिन विकास के पथ पर मानव का मानवीय मूल्य गिरता जा रहा है। दफ्तरों में, पुलीस विभाग में, सभी ओर, कोने कोने में भ्रष्टाचार, व्यभिचार अन्याय का आधिक्य देखने को मिलता है। स्त्री ही नहीं, नन्हीं सी बच्ची की सुरक्षा भी आज मानव के सामने एक प्रश्न चिह्न के रूप में है। स्त्री के प्रति एक प्रकार की पाशविक मनोवृत्ति हर कहीं व्याप्त है। स्त्री देह के प्रति आसक्त एक समाज आज विकसित हो रहा है। आजकल की टी.वी., मीडिया, इन्टरनेट सभी वैज्ञानिक प्रगति के सामने मानव का मन अत्यन्त हीन प्रवृत्तियों की ओर

मुड़ने में हिचकता नहीं। अधिकारी लोग भी आम आदमी की तरह गिर जाय तो समाज की स्थिति कहाँ पहुँचेगी ?

पुलिस की ओर से होनेवाली अव्यवस्थित स्थितियों का फर्दाफाश लेखिका 'चोट्टिन', 'वर्दी' आदि कहानियों में भी उजागर करती है।

पत्रकारिता के क्षेत्र में घटित होनेवाले भ्रष्टाचार का चित्रण 'प्रिया पाक्षिक' कहानी में देखने को मिलता है। पत्रिका की बिक्री बढ़ाने केलिए किसी न किसी प्रकार का अत्याचार करने को संपादक तैयार है। दूसरों का लेख चुराकर, अनुवाद करके, मसाला जोडकर प्रकाशित करते हैं। स्त्री का मागज़िन होने पर भी स्त्री सम्बन्धी रोगों का निवारण संपादक स्वयं करता है। आजकल पत्रिकाएँ इतनी अधिक होने के कारण 'प्रिया' को कडी चुनौती का सामना करना पड़ता है। इसलिए कभी कभी किसी अंक को विशेषांक बनाया जाता है। इस प्रकार अपनी पत्रिका को जनसाधारण के बीच व्याप्त कराने केलिए संपादक कई तरह की चालें चलता है। यही आज आम पत्रकार करते हैं।

'निर्मोही' कहानी अत्याचार के जीवन तस्वीर को प्रस्तुत करती है। इसमें सन्देह एक समस्या के रूप में चित्रित करती है विशेषकर दाम्पत्य जीवन में। इसमें राजा को रानी पर जो सन्देह है फलस्वरूप उसे बन्दी बनाती है। रानी इसी अस्वतन्त्रता से स्वतन्त्र होकर कन्हाई के साथ उसकी झोंपडी में सुखपूर्वक जीवन बिताती है। वर्षों बाद राजा फिर उसे देखता है तब राजा का विरोध, वैर, अहंकार आदि और बढ़ जाता है। अपने सिपाहियों को आदेश देकर उन्हें और उनके बच्चों को मार डालता। यह स्थिति आज भी हमारे देश में सर्वव्याप्त है। आज मानव जीवन का कोई मूल्य नहीं है। छोटी सी बात को लेकर दंगा फसाद, पारिवारिक झगड़ा, मारपीट, हत्या आदि होना एक आम बात हो गयी है। आज अमानवीयता, सन्देह से

उत्पन्न विकृतियाँ, मूल्यरहित व्यवहार समाज में व्यापक हो गये हैं । 'निर्मोही' कहानी ऐसे अत्याचार के परिणाम स्वरुप अत्यन्त दारुण बन जाती है।

४.२ पारिवारिक समस्यायें

हर मानव केलिए सबसे प्रिय जगह परिवार है। भारतीय संस्कृति में परिवार का स्थान सबसे श्रेष्ठ है। मानव का विकास परिवार रुपी संस्था से ही आरंभ होता है। परिवार में सब मिलजुलकर रहते वक्त अतृप्त भावना, विरक्ति, गलतफहमी, मनमुटाव, घृणा, प्यार का अभाव, आर्थिक कठिनाई, भेदभाव, अन्धविश्वास जैसे अनेक तरह की समस्यायें उत्पन्न होती हैं । ममता कालिया ने आधुनिक समाज में रिसते हुए मूल्यों से उत्पन्न पारिवारिक समस्याओं को उकेरा है।

४.२.१ स्त्रियों की समस्यायें

स्त्री के नाम पर जो आप्त वाक्य है 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवता' यह वाक्य आज के आधुनिक युग में महत्वहीन हो चुका है । पुराने ज़माने से अपेक्षित स्त्री आज शिक्षित है, विभिन्न पदों पर विराजित है, स्त्री शाक्तीकरण का प्रयत्न हर कहीं है बावजूद इसके भी स्त्री की स्थिति समाज में अत्यन्त दयनीय है। सभी वर्ग की स्त्रियाँ यानी नन्हीं बच्ची से लेकर नब्बे तक की वृद्धा भी अनेक तरह की समस्याओं से गुज़रती है। महादेवी वर्मा लिखती हैं "इस युग में हिन्दु परिवारों में आदर्श रूप में पत्नी अर्धांगिनी, गृहस्वामिनी, सम्मानिता माननेवाली विचारधारा केवल सिद्धान्त मात्र रह गयी थी। व्यावहारिक रुप में परिवार में उसकी स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। परिवार में नारी का कोई स्थान नहीं था। माता, पत्नी, पुत्री सभी रूपों में वह पुरुष पर आश्रित थी। पुरुष ने अपने स्वामित्व की शक्ति से लाभ उठाकर उसे इतना अधिक परालंबी बना दिया था कि वह उसकी सहायता के बिना संसार पथ में एक पग भी आगे

नहीं बढ़ सकती थी।"[३५] भारतीय समाज में स्त्री का स्वतन्त्र अस्तित्व अब भी पूर्ण नहीं है। शिक्षित होने के बावजूद भी स्त्री को जीवन में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पुरुष मेधा समाज में स्त्रियाँ सदियों से मानसिक एवं शारीरिक रूप से पीड़ित एवं अपमानित होती हैं । आज भी वही स्थिति है। आज के इस अधुनातन युग में समाज विकास की ओर अग्रसर हो रहा है। लेकिन स्त्रियों की स्थिति दयनीय है। डॉ. निर्मला जैन के अनुसार "कड़वी सच्चाई यह है कि पुरुष प्रधान समाजों में सदियों से महिलाओं का दमन और शोषण होता आ रहा है। समाज में उनकी भूमिका और उनकी सामाजिक हैसियत का निर्धारण पुरुष के द्वारा हुआ है।"[३६] मूल्य जैसे महान भाव के अभाव से ही समाज में स्त्री के प्रति ऐसी बुरी चिन्तायें, विकृतियाँ उभर आती है। मूल्यों में जो परिवर्तन आते हैं इससे स्त्रियों के जीवन में भी अनेक समस्यायें उत्पन्न होती हैं। स्वातन्त्र्योत्तर समाज की एक महान उपलब्धि है स्त्रियों का नौकरी की ओर अग्रसर होना। अपनी आज़ादी और अधिकारों पर बल देने के बावजूद भी जगह-जगह स्त्री-शोषण की घटनाओं में वृद्धि होती रहती है। जिससे स्त्री की प्रगति का पथ अवरुद्ध हो जाता है और उसकी अस्मिता खतरे में पड़ जाती है। असुरक्षा एवं दबाव की स्थितियों में बदलाव आने की ज़रूरत है।

'चिरकुमारी' कहानी के बारे में ममता कालिया स्वयं लिखती है 'यह एक सनकी होती हुई 'Spinster' की कहानी है ।' दिशा एक प्राध्यापिका है। डाक्टरेट उपाधी भी प्राप्त है। लेकिन विवाह के प्रति उसका दृष्टिकोण अलग है। दिशा से लोग पूछते हैं "कैसे रह लेती हो अकेली, दिल नहीं घबराता तुम्हारा।"[३७] विवाहित लोगों के प्रति दिशा के मन में नकारात्मक दृष्टिकोण है। उसके मतानुसार पच्चीस साल के बाद भी स्त्रियों में असुरक्षा की भावना है। विवाह के बाद भी एकाकीपन का अनुभव करनेवाले अपने विवाहित सहयोगियों के

तकलीफ़ को वह पहचानती है। इसलिए शादी के नाम पर दिशा अपनी आज़ादी और अत्मनिर्भरता को दाँव पर लगाना नहीं चाहती। ममता कालिया अपनी चिट्ठी पर लिखती है "उसके तर्क ठीक है पर तेवर गलत। जो स्त्रियाँ तीस या पैंतीस वर्ष के बाद विवाह नहीं करती प्रायः अपने आचरण में 'rigid' हो जाती है।" बिलकुल यह एक वास्तविक चित्रण है। आजकल भी कुछ युवतियों के मन में ऐसी चिन्ताएँ हैं जो अपनी स्वतन्त्रता के बलि देना नहीं चाहती है। विवाह के कैद में रहना नहीं चाहती है । यह आजकल की स्त्रियों के वैचारिक मूल्य में आये दृष्टिकोण का अन्तर है।

दफ्तर में सलीके से काम करनेवाली अविवाहित युवतियों को भी समाज एक अलग दृष्टि से देखता है। हमेशा उनपर सन्देह भरी दृष्टि डाली जाती है। 'पच्चीस साल की लडकी' कहानी की नायिका अपने अफ्सर की पत्नी के सामने शंकालू पात्र के रूप में प्रस्तुत होती है। उसे अपनी पच्चीस साल का एहसास तब हुआ जब बाहर कुछ लोग उसे आंटी बुलाते हैं। जबकि वह खुद दूसरों को आंटी बुलाने की स्थिति में थी । मिसिज़ शर्मा उसे जल्दी शादी करने का उपदेश देती है। साथ ही अफ्सर से आवश्यक छुट्टी दिलाने केलिए सिफारिश करने को भी तैयार होती है। लेखिका ने स्त्री की मानसिकता को उकेरा है। स्त्री चाहे कितनी भी उदार विचारवाली हो, नौजवान लड़कियों को अपने पति के आसपास घूमती फिरती देखती है तो उसके मन में शंका होने लगती है जो एक हद तक स्वाभाविक है। ऐसी संकीर्ण मानसिकतावाली स्त्रियों की वजह से लडकियों का मानसिक चैन नष्ट हो जाता है।

'उमस' की रानी जीवन में अनेक प्रतिकूल परिस्थितियों से गुज़रती है। उसके जीवन में पति से भी अधिक सास की ज़्यादती रहती है। सास बहू का झगड़ा परंपरागत है। आज भी बरकरार है। रानी दिन रात काम करती है। दोपहर में थकावट की वजह से अनजाने ही उसकी आँख लग जाती है तो सास से ताने सुनने पडते हैं। और कहती है "बाल-

बच्चेवालियों कहीं दिन दोपहर इस तरह पैर फैलाकर सोती है, अरे थोडी देर सुई सलाई लेकर बैठ, कपडे पडे हैं इस्त्री फेर ले, शाम का काम अभी शुरू भी नहीं किया तूने।"[३८] घर का सारा काम वह अकेली करती है। वह सब काम धीरे-धीरे करती है इसलिए बेटा व्यंग्य से कहता है "माँ सारी दुनिया आज जेट रफ्तार से चल रही है और तुम आभी फैजाबाद पैंसेन्जर ही बनी हुई हो।"[३९]

सास के होते हुए रानी अपने को रसोई से मुक्त नहीं कर पाती, चाहकर भी क्रिकेट मैच नहीं देख पाती कभी कभी मैच सम्बन्धी कुछ असंगत बात कहती है तो बाप-बेटा सब उस पर शरबाण छेड़ने लगते हैं । घर की सुख्र अवस्था को बनाये रख्रने केलिए मौन रहकर सबकुछ सहती है। रसोई के बगल की बिस्तर पर लेट जाती है। लेटे-लेटे उसको लगता है "यह बिस्तर नहीं कब्र है जिसमें वह पड़ी है, निस्पन्द, निश्चेष्ट। उसके आसपास गहरा गाढ़ा अंधेरा है, कभी न खतम होनेवाली एक निरंतरता उसे मिल गई। उसमें न किसी डाँट है, न फटकर, न आरोप न ख्रंडन। यहाँ वह पूरी तरह स्वतन्त्र और स्वधर्मी है। वह अपने फैसले ख़ुद ले सकती है। अपनी गलतियाँ स्वयं कर सकती है। यह उसका साम्राज्य है।"[४०]

आज के उत्तराधुनिक युग में भी सिर्फ रसोई में काम कर जीवन बितानेवाली कितनी स्त्रियाँ होंगी। दरअसल रानी का घर में कोई स्थान नहीं है। वह किसी से बातें भी नहीं करती है। अपने बच्चे भी उसका तिरस्कार करते हैं । स्त्री के 'स्व' या 'अस्तित्व' को इस तरह समाप्त करना अमानवीयता है। रानी की इस अवस्था का जिम्मेदार वह ख़ुद है। अगर समय सन्दर्भ के अनुसार वह अपना प्रतिरोध करती तो उसका ऐसा अपमान नहीं होता।

'जन्म' दूसरी बार बेटी को जन्म देनेवाली एक उपेक्षित माँ की कहानी है। पहली बेटी के जन्म के समय सास कहती हैं, 'मेरे बेटे का पहला फल है।' लेकिन दुबारा

मनोरमा गर्भवती होती तब अनेक तरह की आशंकाओं से डरती है। स्त्री होने पर भी सास के मन में भी बेटी के प्रति विरोध की भावना है। सास बेटी को अपशकुन मानती है। यह भारतीय समाज का एक जीवन्त सत्य है। लडकियाँ हमेशा 'Second class citizen' होती हैं। और जन्म देनेवाली माताओं के प्रति उपेक्षा भरी दृष्टि डाली जाती है। इस कहानी की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है। दूसरी बेटी के होने पर सास अस्पताल में बहू को अकेला छोड़कर घर वापस आ जाती है। इससे दुःखी एवं अपमानित होकर मनोरमा मानवीय मूल्यों के विरुद्ध सोचने लगती है। "हाय यह लडका होती तो मेरे कितने ही दुःख दूर हो जाते। एक क्षण उसका मन हुआ कि वह बच्ची का गला घोंट दे।"[४१]

मनोरमा जैसी पीड़ित स्त्री आज भी हमारे समाज में है। लड़की के प्रति क्यों इतनी निष्क्रिय भाव समाज रखता है ? इतनी क्रूरता क्यों होती है ? लड़की के बिना मानव समाज की प्रगति कैसे संभव हो ? लड़की भी ईश्वर का दान है यह क्यों नहीं समझते ? 'जन्म' कहानी में ऐसी समस्याओं का एक लंबी कतार है। उसका कोई उत्तर नहीं मिलता है। लड़की को जन्म देने से माँ और बेटी पर क्रुद्ध होने से क्या फायदा है ? दुनिया में ऐसे जगह है जहाँ बेटी के जन्म होते ही उसे जान से मार दिया जाता है। दरअसल यह मानवीयता के प्रति, मानवीय मूल्य के प्रति क्रूरता के अलावा और कुछ नहीं है। आज के विकसित युग में भी यह स्थिति देखी जाती है।

श्रमिक वर्गों की स्थिति इस आधुनिक युग में अत्यन्त दर्दनाक है। ममता कालिया की 'रोशनी की मार' कहानी की बिटिया को मालकिन की ओर से कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। मालकिन तिवारिन उसे अछूत समझती है। इसकी वजह से बात बात पर तिवारिन उससे बिगड़ती रहती है। मानव को मानव की तरह न देखने की परंपरागत

रूढ़ मानसिकता तिवारिन के अन्दर है। तिवारिन के व्यवहार के प्रति बिटिया प्रतिरोध करती है ।

आज की इक्कीसवीं सदी में भी लोग साम्प्रदायिकता के गर्त से उठ नहीं पाये। जात-पांत की भावना आज भी बरकरार है। लेकिन विकास और नये नये नियमों की वजह से इस स्थिति को ज़्यादा उछालने की स्थिति लोगों में नहीं है। निम्न जाति के लोग भी इस अवस्था का फायदा उठाता है। आज जाति के नाम पर कोई किसी को बुलाता है तो उसे सलाकों के पीछे बैठना पड़ता है। इस सच्चाई से सब लोग वाकिफ है। इस में तिवारिन की संकीर्ण मानसिकता बिटिया पसन्द नहीं करती है। वह अपनी शक्ति को चेताने की कोशिश करती है।

'शॉल' कहानी की ननकी की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है। गरीबों एवं पीड़ितों के प्रति अमानवीय व्यवहार करना आज के उत्तराधुनिक युग की एक बड़ी समस्या है । आज मनुष्य की भावनाओं को कोई कद्र नहीं करता । उसकी भावनाओं को रौंधने के लिए वे तत्पर रहते हैं । 'शॉल' कहानी में भी यही समस्या है । इसकी ननकी गरीब स्त्री है । उसकी विवशता और कठिनाई को देखकर उसे प्रधान अध्यापिका दूसरी अध्यापिकाओं से पैसा इकट्ठाकर एक शॉल खरीदकर देता है । दूसरे दिन से इसी शॉल के नाम पर अध्यापिकाएँ उसकी हँसी उड़ाती है। गरीबों एवं श्रमिकों के प्रति ऐसा अमानवीय व्यवहार वास्तव में निन्दनीय है। मुफ्त में कुछ देकर फिर उस पर हिसाब करना सामन्ती मानसिकता का लक्षण है। निम्न स्तर के लोगों को उनकी बदत्तर स्थिति से सुधारना मानवता की निशानी है। निचली श्रेणी की कर्मचारी होने पर भी अन्य अध्यापिकाओं की सहकर्मी है वह। सहकर्मियों का अपमान करना नियम विरुद्ध है। आज ऐसी स्थिति आम दफ्तरों में देखी जाती है। दलित उद्दार केलिए भाषण देनेवाले ही पीठ पीछे उनकी हँसी उड़ाते हैं।

४.२.२ दहेज से उत्पन्न समस्याएँ

बेटी के विवाह के समय दहेज देने की स्थिति आज या कल की बात नहीं बल्कि यह प्रथा बहुत पुरानी है। दहेज के बिना शादी सम्पन्न नहीं होती। आज के वर्तमान युग में 'दहेज' एक बडी समस्या बन गई है। दरअसल दहेज एक 'ट्राक्कुला' के समान है। यह एक भयावह स्थिति है जो माता-पिता के रक्त चूस लेती हैं। इस दहेज प्रथा ने मध्यवर्गीय सामाजिक व्यवस्था को खोखला बना दिया है। लड़की शिक्षित हो या अशिक्षित, आज के माहौल में दहेज के बिना उसका विवाह असम्भव हो गया है। यह एक विकृत, विकराल महामारी बनकर भारतीय समाज में चिरकाल से चिरन्तन समस्या के रूप में व्याप्त है। इससे पीडित कन्यापक्ष की यातनापूर्ण जीवन का चित्रण समकालीन साहित्यकारों ने अपनी कृतियों में प्रभावशाली ढंग से किया है। आजकल अखबारों एवं मीडिया में दहेज के लिए जिन्दा जला देना, मार देना, तलाक देना जैसी घटनाएँ देखने को मिल जाती है। दहेज सम्बन्धी विरोधी बातें हर कहीं गूँजती है लेकिन व्यावहारिक रूप में इसकी समाप्ति नहीं होती। यह दरअसल समाज को लगी हुई एक भीषण बीमारी है जिससे कन्यापक्ष मुक्त नहीं हो सकते। ममता कालिया ने अपनी कुछ कहानियों में इस समस्या का संकेत किया है।

'बिटिया' कहानी में अपनी बेटी की खुशहाली केलिए वरपक्ष के सभी 'Demands' को पूरा करने में प्रयत्न करनेवाले एक परिवार का चित्रण है। 'बिटिया' की मधुरिमा केलिए एक योग्य वर की ओर से शादी का प्रस्ताव आता है। योग्य वर होने के नाते मधुरिमा के घरवाले दहेज में देनेवाले चीज़ों का एक लिस्ट भेजते हैं । वरपक्ष काफी संतुष्ट होते हैं। इसके बाद वे और भी बडी-बडी चीज़ों का माँग करते हुए एक दूसरी लिस्ट कन्या पक्ष की ओर भेजते हैं । मधुरिमा का पिता परेशान हो जाता है। लेकिन बेटी की खुशी केलिए कहीं न

कहीं कर्ज लेकर विवाह सम्पन्न करना चाहता है। क्योंकि वह जानता है योग्य पुरुष केलिए दहेज देना अनिवार्य है। कई परेशानियों को झेलकर पिता दहेज का इन्तज़ाम करते हैं। अंत में वरपक्ष की दृष्टि उनके स्कूटर पर पड़ती है। जिसे मधुरिमा के पिता घर के एक सदस्य के रूप में मानते हैं। "स्कूटर केलिए वचनबद्ध हो जाना बिटिया केलिए वचनबद्ध हो जाने जैसी ही जिम्मेदारी लग रही थी। जीवन भर की आपाधापी में अगर कोई चीज़ सकून देती थी तो बस स्कूटर।"[४२] वरपक्ष की डिमान्ट कभी पूरी नहीं होती भले ही दहेज के रूप में ढेर सारी चीज़ें उन्हें दें तो भी। पिता को लगता है "अगले महीने की बीस तारीख को कोई लुटेरा बैण्ड बजाता, पटाखे छोडता, मशालें थाम, अपने दल बल समेत उन्हें लूटने आयेगा। एफ.आई.आर लिखानी तो दूर, वे उसकी खूब खातिरदारी करेंगे। उस लुटेरे केलिए वे शामियाना गड़वाऐंगे, कनात लगाएँगे, हलवाई बुलाएँगे, शहनाई बजवाएँगे फिर अपने हाथ पैर जोड़कर उससे कहेंगे, तुम मेरी बीवी के गहने ले लो, मेरा ईश्चोरेंस ले लो, मेरे बैंक की पासबुक ले लो, मेरा प्रॉविडेन्ट फण्ड ले लो, मेरी हँसी ले लो, मेरी खुशी ले लो, मेरा स्कूटर ले लो, मेरी बेटी भी ले लो, बस तुम प्रसन्न होकर जाओ, मेरी इज़्ज़त का झुनझुना मन बजवाओं।"[४३] वरपक्ष के लोग शादी ब्याह के समय दहेज को लेकर बहुत सारी चीज़ों का आग्रह वधुपक्ष के सामने रखते हैं। यह स्थिति उनकेलिए एक 'अवसर' है। और वे उस अवसर का फायदा उठाते हैं। दहेज की यह शोचनीय स्थिति हर मध्यवर्ग और निम्नवर्ग के घरों में देखी जा सकते हैं।

माता पिता के रहने पर दहेज देने में असमर्थ मधुरिमा से भी बुरी हालत है 'रिश्तों की बुनियाद' की प्रीति की। प्रीति के पिता की मृत्यु हो जाती है बाद में माँ की भी। प्रीति अब भाई और भाभी के आश्रय में रहने लगती है; उनकी ज़िम्मेदारी बढ़ जाती है। जब कुमारी लड़की माता-पिता के अभाव में किसी दूसरे पर बोझ बन जाती है तो उसका जीवन नरकतुल्य बन जाता है। चाहे वह भैया हो या दीदी, मामा हो या चाचा। कोई भी दूसरों की

ज़िम्मेदारियों को स्वीकारना नहीं चाहता। यहाँ भाभी कहती है "औरों के सास ससुर मरते हैं तो भरा घर छोड़ जाते हैं। यहाँ हमारे मात्थे छोड़ गए हैं वह पचास हज़ार की बिल्टी।"[४४] ऐसे हृदय विदारक व्यंग्य प्रीति को हमेशा सुनना पड़ता है। पिता की मृत्यु के बाद परंपरागत रिवाज़ के अनुसार माँ भाई के साथ रह लेती है। मौके का फायदा उठाकर भाई माँ से बहुत सारा पैसा ले लेता है साथ ही घर की कीमती चीज़ों को बेचकर नई चीज़ों मँगवाते हैं। प्रीती को पता है "मकान की बिक्री के दस हज़ार भैया को दफ्तर में तरक्की दिलाने में बतौर घूस दे दिए गए, पुराने पीतल के बर्तन बेचकर भामी नये स्टील के बर्तन ले आई। पुराने रजाइयाँ बदलकर नये भरवा ली गई। इसी तरह घर की सारी चीज़ों की उलट-पुलट हो गई। एक सिर्फ प्रीति बची थी। जिसकी उलट-पुलट नहीं की जा सकी।"[४५]

बेटा घर की पुरानी चीज़ों को बेचकर नई चीज़ों को एकत्रित करता है। माँ को लगता है वह भी उन नई पुरानी चीज़ों में से एक है। यहाँ एक बेटे का स्वार्थ बिम्बित है। अपनी बहिन की शादी केलिए रखा गया पाँच तोला सोना भी वह ले लेता है। यहाँ ममता कालिया ने सम्बन्धों के बीच पनपते स्वार्थ को उकेरा है। एक भाई है जिसका लक्ष्य होता है बहिन की देखभाल करना। हाथ में राखी बँधवाते समय वह बहिन की लाज रखने की कसम खाता है। वही भाई बहिन को कंकाल करने से चूकता नहीं। यह वर्तमान का सत्य है। भाई बहन में वह पुराने स्नेह समर्पण का भाव नहीं है। सम्बन्धों में आत्मीयता कहीं रिस गयी है। आज हर कहीं स्वार्थ और अर्थ के प्रति एक जुनून है। यहाँ भाई में वही जुनून देख सकते हैं ।

४.२.३ स्वतन्त्र चेता स्त्री का नया आत्मबोध और उससे उत्पन्न समस्यायें

आजकल कुछ स्त्रियाँ बच्चों को जन्म देने में विमुखता दिखाती है। यह एक तरह से राडिक्कल नारीवादी दृष्टिकोण है। राडिक्कल नारीवादियों के अनुसार गर्भधारण

करना, बच्चे को जन्म देना, इस तरह की स्थितियाँ स्त्री के जीवन में बाधा उत्पन्न करती हैं । अतः इन स्थितियों से स्त्री को मुक्त होना है। यह पाश्चात्य दृष्टिकोण भारतीय स्त्री भी अपना रही है। ममता कालिया की 'अनावश्यक' कहानी में अनेक बातों के बारे में अनावश्यक रुप में सोचनेवाली एक अस्थिर रोगग्रस्त मानसिकतावाली स्त्री का चित्रण है। बच्चे के जन्म के बाद स्त्री की मानसिक स्थिति विचलित हो जाती है। वह चीखने-चिंघाड़ने लगती है। यहाँ नायिका की विचित्र मानसिकता प्रतीत होती है। वैसे हर भारतीय स्त्री के अन्दर माँ बनने का सपना होता है। लेकिन इस कहानी की नायिका बच्चे के प्रति घृणा भाव रखती है। वह अपने स्वतन्त्र जीवन का आस्वादन करना चाहती है। बच्चा उसकी स्वतन्त्रता में खलल उत्पन्न करनेवाला है। कभी वह ऐसा सोचती है । स्त्री की ऐसी मानसिकता वास्तव में मानसिक रोग की ओर इशारा करती है। खुद वह फिर सोचती है उसमें कोई नैसर्गिक कमी है? क्यों वह ममता की भावना लुटा नहीं पाती? क्यों वह अपनी सन्तान के प्रति वात्सल्य भावना दर्शा नहीं पाती? उसकी इस तरह की विचारधारा वास्तव में सोचने की बात है। एक माँ का अपनी सन्तान के प्रति ऐसा अलगाववादी चिन्तन या तो पाश्चात्य संस्कार का प्रभाव हो सकता है या कोई असन्तुलित परिस्थितियों का परिणाम।

आज के आधुनिक युग में माता-पिता होते हुए भी युवापीढ़ी दिशाहीन है। ऐसी अवस्था में माँ-बाप से रहितों की क्या दशा होगी यह सोचने की बात है। 'कौए और कोलकत्ता' कहानी में दो बहिनों की अलग अलग ज़िन्दगी दिखाई गयी है। बड़ी बहिन मिस बहार स्वतन्त्र रूप में जीवन जीकर विज्ञापन जगत् की 'मॉडल' बन जाती है। और छोटी बहिन हेमा जोशी दिल्ली में कॉलेज की प्राध्यापिका है। मिस बहार विज्ञापन जगत में होनेवाले समस्त अवाछिंत परिस्थितियों से गुज़रती है। आधुनिक नशीले पदार्थों का उपयोग करती है। श्रृंगार प्रसाधनों और नये-नये वेषभूषों में अपने आपको सजाती है। इस तरह जीवन की तड़क-भड़क

से वह प्रभावित है। ज्ञान विज्ञान के प्रति उसकी कोई रुचि नहीं। स्वतन्त्र चेता होने के कारण वह अपनी समझदार प्राध्यापिका, छोटी बहिन के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण रखती। एक बार मिस बहार की छोटी बहिन हेमा उसे मिलने आती है वहाँ नहाते वक्त कौआ उसके वक्षस्थल पर चोंच मारता है। हेमा दर्द के मारे कराहने लगती है लेकिन बडी बहिन निश्चिन्त होकर बैठी रहती है। छोटी बहिन का दर्द से कराहना उसकेलिए कोई मायने नहीं रखता।

'वसन्त सिर्फ एक तारीख' में ममता कालिया ने शिक्षित बेरोज़गार स्त्रियों की समस्याओं के आकलन के साथ नौकरी पेशा स्त्रियों की परेशानियों को भी मुखरित किया है। इसके केन्द्र में चन्दा चौधरी है जो दो बच्चों की माँ है, घर संभालती है, सालों तक घरघुस्सु रही है। लेकिन रोज़गार हासिल करने की तमन्ना से जीती है। वह समाज के परिवर्तनों से अनभिज्ञ रहती है। वसन्त के मौसम में गाँधी कॉलेज की प्राचार्या को मिलने केलिए वह जाती है। वे पहले उसकी प्राध्यापिका थी अब प्राचार्या। उनकी चापलूसी करने के लिए वह कह उठती है। "मैं आपकी भूतपूर्व छात्रा चन्दा चौधरी, कुछ याद आया?"[४६] प्राचार्या पूछती है कि किस काम के वास्ते आयी हो? तुरन्त उत्तर देती है काम तो कुछ नहीं लेकिन आपका लिखा एक गीत याद आया तो आपसे मिलने आयी। कुछ समय वहाँ बैठने से मिसेज़ सक्सेना का यथार्थरूप चन्दा समझती है। स्त्री होते हुए भी उसमें स्त्री सहज गुणों की कमी हैं। पदोन्नती के साथ उसकी मानसिकता भी बदल जाती है। गर्भावस्था के अन्तिम चरण में छुट्टी माँगने आयी गर्भवती अध्यापिका के प्रति उसका बर्ताव स्त्री जाति केलिए ही कलंक की बात है। स्त्री ही अपनी सहयोगी के प्रति ऐसा क्रूर व्यवहार करें तो वर्तमान पुरुष मेधा समाज में स्त्री की हालत कैसे सुधर सकती है। वास्तव में स्त्री क्षमा, ममता, वात्सल्य इत्यादि श्रेष्ठ मूल्यों का मूर्तरूप हैं। लेकिन शांता सक्सेना इन सभी भावों का विलोम रूप है।

इस कहानी के ज़रिए ममता कालिया समाज के व्यस्ततापूर्ण जीवन की आलोचना भी करती है। लोगों के पास दूसरों को मिलने या बातें करने की फुर्सत ही नहीं है। सब अपने में सीमित हैं । दूसरों के बारे में सोचते तक नहीं। सब एक प्रकार के यान्त्रिक जीवन बिताते हैं। यों सुहावना मौसम वसन्त की सिर्फ एक तारीख बनकर रह जाता है, क्योंकि मुसीबतों से भरे जीवन में सुखद अनुभूतियाँ कहाँ शामिल होती है? हर महीना जब समाप्त होता है तो व्यक्ति को एक हल्का आश्चर्य या गहरी खुशी होती है कि अंततोगत्वा वे "भूख, महँगाई, बीमारी, दुर्घटनाओं को चकमा देते हुए एक और महीने ज़िन्दा रह लिये।"[४७] लेखिका ने इस कहानी के माध्यम से संवेदना विहीन मानव समाज को प्रस्तुत करते हुए स्त्री में जो स्त्रीयोजित गुण की आवश्यकता है, दूसरों के प्रति ममता दिखाने की अनिवार्यता है इन सभी की ओर संकेत भी किया है।

४.२.४ बच्चों की संक्रान्त मानसिकता से उत्पन्न समस्यायें

बच्चे परिवार एवं समाज का सबसे महत्वपूर्ण एवं श्रद्धेय पात्र हैं। सभी बच्चों को पसन्द करते हैं। जब उम्र बढ़ती है तब उनके मन में अनेक तरह की चिन्तायें जन्म लेती हैं । विभिन्न पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश में अपने मन को नियन्त्रित करने में वे नाकामयाब हो जाते हैं। आधुनिक समाज की गतिविधियों ने मानव सम्बन्धों को जड़ बना दिया है। पहले परिवार वालों के बीच आपसी प्रेम, परस्पर सोच विचार, निस्वार्थ सेवाभाव आदि का सम्बन्ध दृढ़ थे। लेकिन आज दुनिया के सर्वोन्नति के बीच यह सम्बन्ध स्वार्थ, दुरभिमान के नीचे दब गया है। आज के विशेष माहौल में कोई अपना नहीं है। सभी स्वार्थ रूपी जाल में फँसे हुए हैं। यह केवल समाज की स्थिति नहीं बल्कि अपने ही घर में मानव अजनबी बनकर, अकेलेपन झेलकर, गम सहकर, मानसिक बेचैनी के साथ जी रहा है। ममता कालिया की

कहानियों में कुछ बच्चे ऐसी बेचैनी या संकुचित स्थिति से गुज़रते हैं। आज भारत का अधिकांश परिवार संयुक्त परिवार की जड़ उखाड़कर अणु परिवार में बदल रहे हैं। माता-पिता जीवन निर्वाह केलिए नौकरी करने निकल पड़ते हैं। आज के इस ज़माने में बच्चों के दिशाहीन हो जाने में एक हद तक माँ-बाप ही ज़िम्मेदार है। नौकरी पेशा होने के कारण माँ-बाप इतने व्यस्त रहते हैं कि बच्चों के प्रति वे तनिक भी ध्यान नहीं रखते। कभी-कभी बच्चे माता-पिता के कुछ रूढ़ विचार धाराओं से पीड़ित होते हैं, अपमानित होते हैं, विह्वल होते हैं। उनके नन्हें मन में दर्द के कसक उठने लगते हैं। परिणाम स्वरूप कभी कभी बच्चे सेक्स राकट में पड़ जाते हैं। माफिया संघ में पड़कर पैसा कमाकर आड़ंबरपूर्ण जीवन बिताने की लालसा रखते हैं। इस तरह अनैतिक परिस्थितियों में उलझकर वे अपनी बचपन की निष्कलंक, पवित्र, अवस्था को कहीं खो देते हैं । कभी बच्चे अपने ही घर में 'Unwanted' होते हैं। इन समस्याओं से पीड़ित कुछ बच्चों का चित्रण ममता कालिया ने अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है।

बच्चों की समस्याओं पर आधारित कहानियों में 'राजू' कहानी का कथ्य हृदयविदारक है। एक बालक को अपने जीवन में रिश्तेदारों और अपनी ही माँ के द्वारा अपमान सहना पड़ता है। राजू की एक आँख माँ की असावधानी की वजह से नष्ट हो जाती है। उसके जन्म के तुरंत बाद पिता की मृत्यु हो जाती है। इस कारण सबकी नज़रों में वह 'अपशकुनिया' है। एक बार माँ और बेटा कठिनाईयों के बीच भी मामा की शादी में जाते हैं। वहाँ उन्हें दूसरों के ताने सुनना पड़ता है। अपाहिज व्यक्ति समूह में अपशकुन माना जाता है। शुभ अवसरों पर इनकी उपस्थिति कोई पसन्द नहीं करता। इस कहानी में यही स्थिति है। एक बूढ़ी स्त्री पूछती है "भगो, ये कजहा कपूत तू घर में छोड आती तो एक दिन में तेरा दूध न सूख जाता, बियाह के घर लाकर खड़ाकर दिया सामने।"[४८] दूसरों के आक्षेप सुनकर नानी दोनों को एक अलग कोठरी में बिठाती है। नन्हा राजू कोठरी में बन्द होने से विवश है। उसका बाल मन दूसरे बच्चों

के साथ बाहर बारात में जाना चाहता है। वह माँ से जिद्दकर कहता है "अम्मा हम बाहर जायें, हमें तो मामा की बारात में जाना है। अम्मा मैंने अपने कपड़े तक गन्दे नहीं किये फिर तुम क्यों रोक रही हो।"[४९] माँ अपने को संभालने में असमर्थ हो जाती है और तडाक-तडाक उसके गालों पर चाँटें मारती हुई कहती है "निकलकर देख तू कोठरी से बाहर, तेरी हड्डी पसली न तोड़ दूँ। मरता भी नहीं अपशकुनिया कहीं का।"[५०] माँ के इस कथन से वह व्यथित होता है और घर जाने को तैयार हो जाता है।

यहाँ एक निष्कलंक बालक की मानसिकता को रौंधकर उसे अपमानित कर दायराबद्ध करना वास्तव में मानवता का हनन है। भारतीय समाज में आज भी लोग इस तरह के अन्धविश्वासों से पीड़ित है। ऐसे अन्धविश्वास लोगों की मानसिकता में गहरे रुप में घाव करते हैं। यहाँ नन्हा बालक राजू आम बच्चों की तरह अच्छे कपड़े पहनकर शादी ब्याह का आनन्द लूटना चाहता है लेकिन समाज की रूढ़ धारणा एवं विश्वासों के कारण वह सबके सामने जा नहीं पाता। क्योंकि सबके नज़रों में वह अपशकुनिया है।

'श्यामा' कहानी में पिताजी के क्रूर व्यवहार से बच्चे भयचकित रहते हैं। बच्चे अपने पिता से प्यार, ममता, वात्सल्य की चाह रखते हैं। लेकिन पिता नौकरी पेशा होने के कारण अपनी ज़िम्मेदारियों से दूर रहते हैं। एक दिन नये बस्ते की जिद्द करने पर पिता बच्चे को बालकनी से उठाकर नीचे फेंक देते है। बच्चा पिता के इस क्रूर व्यवहार से उचट जाता है। इस तरह की क्रूर मानसिकता बच्चों में कई विकृतियों को जन्म देती है। माता-पिता के प्रति उनके मन में स्नेह की भावना समाप्त हो जाती हैं। ऐसे लोगों को वे शत्रु के समान देखने को विवश हो जाते हैं।

'वर्दी' कहानी की समस्या पिता और संतान के बीच की अन्तराल पर आधारित है । इसमें भी एक पीड़ित बेटे के चित्र को लेखिका ने उकेरा है। 'वर्दी' एक

प्रतीकात्मक कहानी है। इसमें पुलिस अफसर पिता रमाशंकर की सख्तियत कहानी में हर कहीं गूँजती है। एक बार होली के दिन राजू माँ की इजाजत से रंग खरीद लाता है। पिता इससे नाराज़ होते हैं । इसे अनावश्यक खर्च मानकर बेटे को खूब पीटता है। उसके गिर पड़ने पर बूट से ठोकर मारकर किनारे कर देता है और कहता है "पड़ा रह साला अपनी माँ को रोता। खबरदार जो यहाँ से उठा।"[५१] राजू का मन विह्वल हो उठता है। उसके मन में अनेक प्रश्न जाग उठते हैं । क्यों पिता इतने मारते हैं ? पीटते हैं ? क्यों बात बात पर हाथ उठाते हैं ? उसको लगता है "ज़रूर इस वर्दी में ही कुछ ऐसी खासियत है कि इसे पहनते ही उसके पापा पापा नहीं रहते, जालिम सिपाही बन जाते हैं। उसके सभी दोस्तों के पापा इन्सानों वाले रंग पहनते हैं। सिर्फ उसका पापा यह हैवानोंवाला रगं पहनते हैं। इसे पहनकर खुद भी हैवान बन जाते हैं।"[५२] एक छोटा बच्चा होने पर भी अपने पिता की आततायी मानसिकता सह नहीं पाता। वह भी अपने दोस्तों की तरह परिवार में स्वतन्त्रता, प्यार, ममता सब चाहता है।

राजू समाज की परंपरागत धारणा पर विश्वास रखता है जैसे होलिका में सभी बुराइयों को जला दी जाती है। वह पिता की वर्दी को भी होलिका की लपटों में फेंक देता है। ताकि पिता के क्रूर स्वभाव की समाप्ति हो जाय। इस तरह करने पर उसे कुछ तसल्ली मिलती है।

'मुन्नी' कहानी की समस्या घरों और स्कूलों में होनेवाले बच्चों का अपमान है । प्राय: यह देखा जाता है बच्चों की छोटी छोटी गलतियों पर पहाड़ बनाकर उनपर आतंक किया जाता है । जिससे उनका बाल मन कुंठित हो जाता है, रोगग्रस्त हो जाता है । 'मुन्नी' कहानी में भी एक छोटी लड़की का संक्रान्त मन का चित्रण हुआ है। वह अपने ही परिवार में उपेक्षित है। "मुन्नी दिन भर में कई बार मार खा जाती, कभी माँ से, कभी ताई से तो कभी

बडी बहन से। और तो और दादी भी उससे चिढ़ने लगती।"[५३] स्कूल में भी उसकी हालत शोचनीय है। मुन्नी अपना प्रतिरोध समय समय पर प्रकट करती है। वह पढ़ाई में तेज़ है । लेकिन कोई उसे सराहता नहीं । स्कूल की लड़कियाँ हमेशा उसकी हँसी उडाती है। इसपर क्रोधित होकर वह लडकियों को डस्टर से मारती है। स्कूल के अधिकारी वर्ग भी मुन्नी की उपेक्षा करते हैं । संपन्न वर्गों के सामने चुप्पी साधने की विवशता यहाँ दिखाई गई है। मुन्नी की खासियत को, उसकी खूबियों को सभी नज़र-अन्दाज़ करते हैं। मुन्नी का नन्हा मन इस अन्यायपूर्ण व्यवहार से खींज उठता है। वह स्कूल छोडने को तैयार हो जाती है । मुन्नी जैसी अनेक बच्चियाँ हमारे समाज में हैं जो अधिकारी वर्ग द्वारा हाशिएकृत रहती है। इस कहानी में लेखिका यही सन्देश देती है कि बच्चों के अन्दर की खूबियों को पहचानकर उन्हें सही दिशा की ओर अग्रसर करना। बच्चों को अवहेलित करना उसके निष्कलंक मन को अपमानित करना है। वास्तव में यह एक राष्ट्र को अपमानित करने के समान है।

मुन्नी की तरह है 'आपकी छोटी लडकी' कहानी की टुनिया की अवस्था। यहाँ बडी बहिन सब बातों में होशियार एवं समर्थ है तो दूसरी उसकी अपेक्षा कम होशियार है। माता-पिता बडी बहिन की खूबियों की तारीफ करते रहते हैं। टुनिया स्वयं अपने को समझती है, अपनी कमियों को जानती है। साथ ही बहिन की सेवा भी करती है। घर का काम संभालने में, बाज़ार जाने में, माँ को डॉक्टर के पास ले जाने में टुनिया ही काम आती है। फिर भी घरवालों के मन में वह 'good for nothing' के समान है। अपनी शोचनीय अवस्था के बारे में सोचकर कभी कभी उसे दुःख होता है। लेकिन एक दिन टुनिया की क्षमता को एक साहित्यकार पहचानता है, और उसके अन्दर आत्मविश्वास जाग्रत करता है। मुक्तिदूत जैसे नामी साहित्यकार जब उसकी क्षमता को पहचानता है तब तक घरवालों की उपेक्षाभरी दृष्टि

उसे झेलनी पडती है । परिवार में बच्चों के प्रति इस तरह का दोहरा चिन्तन बच्चों में तनाव उत्पन्न करता है। यह उसके व्यक्तित्व को कुण्ठित करता है।

४.२.५ आधुनिक युग में वृद्धजनों की उपेक्षा और उससे उत्पन्न समस्यायें

ममता कालिया की कुछ कहानियों में वृद्धजनों की कठिनाई को चित्रित किया गया है। पुराने ज़माने में वृद्धजन या वृद्ध माता-पिता परिवार में एक दीपक माने जाते थे। लेकिन आज उसी दीपक को बुझाकर किसी कोने में खदेड़ दिया जाता है। आज की सन्तान माता-पिता के साथ रहना नहीं चाहतीं । वृद्ध माँ-बाप उनकेलिए भार स्वरूप है। इसी वजह से आज समाज में वृद्ध सदनों की भरमार है। जीवन के हर मोड़ पर परंपरागत मूल्य क्षीण होते जा रहे हैं। सम्बन्धों का यह ठंडापन इसका उत्तम मिसाल है। कमलेश्वर के अनुसार "जीवन व्यवस्था में पिता और पुत्र, पति और पत्नी, सम्बन्धी और नातेदार अब पुरानी मान्यताओं के सहारे नहीं चल पा रहे हैं। पुत्र अब परलोक केलिए नहीं इस लोक केलिए ज़रुरी हो गया है क्योंकि वृद्धावस्था की कोई सुरक्षा आज के वृद्ध के पास नहीं है।"[५४] वृद्धों की यह उपेक्षा पाश्चात्य संस्कृति से आयातित है। पाश्चात्य जगत में माता-पिता एक उम्र के बाद वृद्ध सदनों में रहने को विवश हो जाते हैं। यहीं स्थिति आज भारत में देखी जाती है।

आज की नयी पीढ़ी नौकरी कर पैसा कमाना मात्र चाहती है। खूब पैसा कमाकर ऐशो-आराम की ज़िन्दगी जीना चाहते हैं। इस बीच उनके वृद्ध माता-पिता उनकी स्वतन्त्रता में बाधा उत्पन्न करते हैं। इसलिए वे अपने माता-पिता को अपनी स्वतन्त्र ज़िन्दगी से दूर रखना बेहत्तर मानते हैं। समाज में यह स्थिति स्वतन्त्रता के बाद से शुरु होती है। आज की इक्कीसवीं सदी में भी यह स्थिति चोटी पर है। समकालीन साहित्यकारों ने समाज की इस नकारात्मक स्थिति में अपनी सूक्ष्मदृष्टि डाली है।

ममता कालिया की 'नया त्रिकोण' पारिवारिक माहौल पर केन्द्रित है। वृद्धों की समस्या का एक भिन्न रूप इसमें है। इसमें बूढ़ी जीजी के बर्ताव से पीड़ित पुत्रों और वधुओं के मानसिक संघर्ष को उभारा गया है। कुछ वृद्ध माता-पिता अपने हठ पर स्थिर है। सन्तानों के बारे में वे सोचते तक नहीं। इसकी माता की देखभाल पुत्र एक हद तक अपनी क्षमता के अनुसर करते हैं। बावजूद इसके भी माँ सन्तुष्ट नहीं क्योंकि पति की मृत्यु तक उसको वह अपने आदेशों की छड़ी पर नचाती थी। पुरुषमेधा समाज में यह एक अपवाद है। यानी यहाँ की माँ सभी को अपने अधीन में बाँधकर रखना चाहती है। लेकिन पिता की मृत्यु के बाद बहू बेटे इस अधीनस्थ मनोभाव को स्वीकार नहीं करते। फलस्वरूप बेटे भी माँ के सामने शत्रु बन जाते हैं। जब पिता की मृत्यु के बाद सभी बहू बेटे वापस चले जाते हैं तब माँ को कुछ उपदेश और कुछ डॉलर भी दे जाते हैं। आज के उत्तराधुनिक युग में मानवीय सम्बन्ध मात्र औपचारिक बन कर रह गये हैं । आज हमारे भारतीय संस्कारों पर पश्चिमी सभ्यता का आवरण फैला हुआ है। इस कहानी के बेटे अपने मूल्यों, आदर्शों एवं सम्मान को वृद्ध माता के प्रति केवल डॉलर और उपदेशों में सीमित रखते हैं। माता भी अपने रीति-रिवाज़ या जिद्दी स्वभाव से तनिक भी बदलने को तैयार नहीं होती। दोनों ओर मानवीयता के बदलते परिवेश में उत्पन्न समस्यायें उभर आयी हैं ।

अर्थ आज के युग की एक ज्वलंत समस्या है । अर्थ के लिए लोग अपने उसूलों से च्युत होते हैं । अपना ईमान बेचते हैं । अपना अस्तित्व खोते हैं । आज के युग में यह सब स्वीकार्य है क्योंकि अर्थ इन सबसे ऊपर है । 'गुस्सा' कहानी के वृद्ध माता-पिता के बीच अनैक्य का कारण अर्थ ही है। अर्थ की अधिकता इस परिवार में मूल्य विघटन का कारण बन जाती है। इस कहानी में माता-पिता अकेले रहते हैं। दोनों बेटे अपने अपने परिवारों में मशगूल हैं। वे कभी कभी मणिआर्डर द्वारा अपना स्नेह सौंपते हैं। वृद्ध माता-पिता कैसे समय काटते

हैं इसके प्रति वे अनभिज्ञ हैं । फिर भी पिता अपने बेटों के प्रति उदार है। अपनी बीमा की रकम उन्हें देना चाहते हैं तो पत्नी भडक उठती है और कहती है "अच्छा यहाँ सदाव्रत खुला है, जो बाँट देंगे, लुटा देंगे। उनकी मेमें एक घंटे में बाजार जाकर उजाड़ देंगी। मैं जानती हूँ कैसे मैं ने पाइ-पाइ जोडकर घर बनाया है। हर तिमाही बीमें केलिए रुपये तो मैं ही देती थी। बस जो है बच्चों में लुटा दो। कभी मेरा भी सोचा है। तुम्हारे बाद मेरा क्या होगा।"[५५] इसमें पारिवारिक मूल्यच्युति की समस्याओं के साथ बहुओं के संकुचित व्यवहार से संत्रस्त पीडित वृद्ध माता के मानसिक द्वन्द्धों को भी उजागर किया गया है। माता के गुस्सैल स्वभाव के फलस्वरुप पिता एक दिन घर छोड़कर कहीं गायब हो जाते हैं। बेटे के साथ जाने केलिए वह तैयार भी नहीं। बेटे अपनी नौकरी छोड़कर माँ के साथ रहने को भी तैयार नहीं है। इस युग में जीने केलिए नौकरी अनिवार्य है केवल माता-पिता की देखभाल में अपना समय गँवाना वे नहीं चाहते। अकेलेपन और पश्चात्ताप से पीड़ित पत्नी पति की प्रतीक्षा करके अकेले घर में जीवन बिताती है। माँ अपने बेटों को पढ़ा-लिखाकर अपने पैरों पर खडे रहने केलिए बहुत कष्ट उठाती है। इसलिए माँ भी सोचती है बेटे उसका आदर करें, उपदेश पूछें, सलाह माँगें, लेकिन बेटा माँ से कुछ भी पूछने को तैयार नहीं होता। यहाँ अकेली माँ के प्रति संवेदनापूर्ण व्यवहार का अभाव चित्रित है। आज के युग में रिश्ते नातों के बीच सम्बन्धों की कोई अहमियत नहीं है। संबन्ध सिर्फ 'अर्थ' के कच्चे दागे पर टिका हुआ है। अर्थ की समस्या वर्तमान समाज को किस तरह खोखला कर रही है यह इस कहानी में स्पष्ट है ।

'एक दिन अचानक' कहानी निस्सहाय माँ-बाप के जीवन समस्याओं पर 'focus' करती है । माँ-बाप के लिए संतान हमेशा सबसे प्रिय है । सन्तान के लिए वे मर मिटने को तैयार होते हैं । लेकिन सन्तान की ओर से माँ-बाप के प्रति यह आत्मीयता नहीं के

बराबर है । इस कहानी में एक कोमाग्रस्त बेटा है । जो माँ-बाप के लिए एक जिम्मेदारी है । वृद्ध माँ-बाप अपनी वृद्धावस्था में भी रोगग्रस्त बेटे की सेवा में लगे रहते हैं । यह नियति बहुत शापग्रस्त रहती है । कहीं कहीं ऐसी शापग्रस्त नियति से युक्त माँ-बाप देखे जाते हैं । इस कहानी में ऐसे शापग्रस्त माँ-बाप हैं । इसमें एक बेटा है जो दिखावे की आड़ में जीने वाला है । अपने जिम्मेदारियों से मुँह मोड़कर वृद्ध माँ-बाप पर सारी जिम्मेदारी थोपकर नाम के वास्ते फोन पर माँ-बाप और भाई का हालचाल पूछता रहता है । यह नयी पीढ़ी का दिखावा मात्र है । छोटे की हालत जानकर बडे बेटे फोण पर कहता है “पापा अब दफ्तर का चक्कर नहीं रहा। बब्बू को ‘किसी’ अस्पताल में भरती कर आप और ममी मेरे पास आकर रहो। दो-एक महीने में ‘प्रेश’ हो जाओ। तो वापस चले जाना। इतने वर्षों से आप एक बार भी मेरे घर नहीं आये।”[५६] यह सुनकर वे नाराज़ हो जाते हैं। उनको लगता है खून के रिश्तों से बढ़कर है माता-पिता का सम्बन्ध। लेकिन दुर्भाग्यवश उनका प्रयत्न विफल हो जाता है। और उनके भगवान जैसे बेटे की मृत्यु हो जाती है। बडे बेटे की प्रतीक्षा में अत्येष्टि सूर्यास्त के बाद करना पड़ता है। बेटे की मृत्यु से पीड़ित माँ-बाप को आश्वास देने के बदले उसकी सेवा शुश्रूषा पर व्यंग्य से बडे बेटा अमल कहता है “क्या फायदा हुआ, आप एक ज़िन्दा लाश को ढोते रहे ढाई साल न वह आपको देख सकता था न आप उसकी पीड़ा जान सकता था । ही वाज़ जस्ट ए कैबेज़।”[५७] साथ ही वह जल्दी वापस जाना भी चाहता है। तब माँ व्यथित होकर कहती है “सो तो हम जानते हैं, तेरा लछमन जैसा भैया चला गया। तेरी आँख तक गीली नहीं हुई। यही बताने हमें आया था तो जा। हम समझेंगे हम निपूते ही रहे।”[५८] पुत्र के होते हुए अपने आपको निपूत मानना दुर्भाग्यग्रस्त माँ-बाप की नियति है । और यह अवस्था उत्तराधुनिक परिवार में आम रूप में देखी जाती है ।

४.३ आर्थिक समस्याओं से उत्पन्न विघटन:

समाज में कितनी भी समस्यायें हैं सबके मूल में अर्थ है । भूमण्डलीकृत समाज में अर्थ सब रिश्तों से ज़्यादा महत्वपूर्ण है । मानवीय रिश्तों का महत्व आज के अधुनातन समाज में कम होते जा रहा है । आज के उपभोक्तावादी दुनिया में रिश्ते भी वस्तु के रूप में परिणत हो रहे हैं । रिश्तों के मूल में आज धन की प्रमुखता है। प्यार, ममता, करुणा, सहयोग, आदर आदि गुण आज मानव हृदय से कोसों दूर खडे हैं । आज के सामाजिक जीवन की स्थिति यह है कि समाज में आये बदलाव के साथ हमारे सभी सामाजिक संबन्धों और पारिवारिक रिश्तों पर अर्थ का अतिक्रमण बढ़ रहा है। डॉ. पुष्पपाल सिंह के अनुसार "आत्मीय रिश्तों की पहचान और परख तथा उन संबन्धों के निर्वाह में अर्थ-प्रधान दृष्टि प्रमुख हो जाने से आज संबन्ध 'निभाये' नहीं 'ढोये' जाते हैं।"[५९] ममता कालिया ने अपनी कहानियों में अर्थ के ज़रिए सम्बन्धों में आये विघटन का उल्लेख किया है।

ममता कालिया की 'बीमारी' कहानी सामाजिक स्थितियों में मानवीय मूल्य के, संवेदना के, क्षरण की कहानी है। 'बीमारी' की रोगग्रस्त बहिन की अवस्था रिश्तों के तकरार से शुरु होती है। विख्यात आलोचक मधुरेश के अनुसार "बहन भाई के पारिवारिक रिश्ते भी औपचारिकता के व्यावसायिक अँधड़ में अपनी जड़ों से उखाड़ रहे हैं। बहिन की बीमारी में आए भाई ने भागदौड़ में खर्च हुए रुपयों और लाए गए फलों का हिसाब जोड़कर रख लिया है। अपनी बीमारी में लड़की एक ऐसी निर्मम और क्रूर दुनिया के बीच अपने को पाती है जहाँ दफ्तर के सहयोगियों से लेकर अपने रक्त सम्बन्धी भी उसकेलिए अपने नहीं रह जाते।"[६०] जाते वक्त भाई बहिन की बीमारी में हुए खर्च का 'चेक' स्वीकार लेता है। बिलकुल अपरिचित की भाँति। यहाँ एक बहिन की करुण कहानी है। एक ओर शारीरिक रूप से पीड़ित

बहिन के लिए भाई का स्वार्थ युक्त व्यवहार उसकी वेदना को और भी बढ़ाता है। बहिन का रक्षक बननेवाला भाई उसका भक्षक बन जाता है।

आज बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद, इलक्ट्रोनिक मीड़िया, सूचना प्रौद्योगिकी, मल्टी नैश्नल कंपनियों का उदय आदि के बीच पड़कर मानव जीवन में जो कोमल और श्रेष्ठ भाव हैं उसका लोप होता जा रहा है। डॉ. वसुदेव शर्मा के अनुसार "आज वैज्ञानिक तकनीकी विकास के युग में बढ़ती व्यक्ति चेतना के कारण व्यक्ति बौध्दिक होता गया है। शिक्षा ने भी उसमें घी का काम किया कि व्यक्ति ज्यों ज्यों शिक्षित होता गया त्यों त्यों वह आत्मकेन्द्रित तथा सीमित होता गया। करुणा, अहिंसा, दया, संवेदना, सहानुभूति, त्याग, भलाई व सच्चाई के प्रति उदास होता गया। यही कारण है आज हमारे जीवन मूल्यों के प्रति आस्था हिल गई है।"[६१]

आज परिवार और व्यक्ति के बीच सम्बन्ध बहुत ही औपचारिक हो गये हैं । एक प्रकार की आयातित सभ्यता हमारे यहाँ भी प्रकट हो रही है। ममता कालिया की 'उड़ान' कहानी आधुनिक परिवेश का उत्तम दस्तावेज़ है। इसमें माता-पिता और पुत्र के सम्बन्धों के टूटन और शिथिलता की दुःखपूर्ण स्थिति परिलक्षित है। इसका नायक व्यवहारिक दृष्टिकोण रखनेवाला है। आज व्यक्ति 'कैरियरिज़्म' को महत्व देता है। यह उत्तराधुनिक युग की पहचान है। ऐसे लोग कैरियर को सम्बन्धों से ज़्यादा महत्व देते हैं। इसकी 'साकी' भी अपनी कैरियर पर चिपकर रहता है। अर्थ और उन्नति ही उसका परम लक्ष्य बन जाता है। लेकिन माता-पिता की अवस्था से वह निश्चिन्त है, दुःखी नहीं है। फिर भी माँ कहती हैं "साकू जो तेरी इच्छा हो कर, हम तो तेरे भले की ही सोचते हैं। यहीं महीने में पन्द्रह दिन दौरे पर रहता है। घर में रहता है तो कंप्यूटर में जुटा रहता है। कान फोण पर, आँखें मोनिटर पर, कभी आराम से रहने की नहीं सोचता तू।"[६२] लेकिन बेटा इसपर ध्यान न देकर नये मशहूर मल्टी नैश्नल कंपनियों में तरक्की के साथ, नौकरी प्राप्त करने को व्याकुल है। इसकी ताबड़ तोड़ प्रयत्न के बीच आत्मीय

जनों से संपर्क घट जाता है। अर्थ और पद के सामने आत्मीयता का महत्व ऐसे लोग भूल जाते हैं। यह केवल साकी की स्थिति नहीं है बल्कि पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगे आम भारतीयों की अवस्था है।

'रिश्तों की बुनियाद' कहानी में भी अर्थ की समस्या व्यंजित है । भाई और भाभी में अर्थ के प्रति स्वार्थ मोह देख सकते हैं। बहिन के विवाह केलिए रखा गया सोना भी वे हटप लेते हैं। बहिन को घर में नौकरानी की तरह रखते है। यहाँ भाई बहिन का रिश्ता कितना धूमिल हो गया है, यह कहानी इस ओर संकेत करती है । संबन्ध अर्थ के तरासू में तोलने लग गये हैं ।

'आज़ादी' कहानी की दादी उसके पति के कंजूस स्वभाव से दुःखी है। बीमार से पीड़ित होने पर भी अच्छे डॉक्टर को दिखाने केलिए हिचकता है क्योंकि समर्थ डॉक्टर को अच्छी रकम देनी है । दादी गुस्से से कहती है "तुम हमारी दूसरी टाँग भी तोड़ दो, न रहेगा बाँस न बजेगी बासुरी।"[६३] धन के प्रति अतिरिक्त मोह रखनेवाला पति आँख मूँदकर मानवीयता का तिरस्कार करता है। पत्नी की बीमारी की चिकित्सा से भी महत्व अपने धन को मानता है।

'गुस्से' कहानी में बीमा की रकम भले मन से अपने दोनों बेटों को देने की खबर सुनकर पत्नी पति पर अपना आक्रोश प्रकट करती है। अपने भविष्य के प्रति सोचे बिना बच्चों को रुपये देने पर पत्नी विरोध प्रकट करती है। इससे रुष्ट होकर पति घर छोड जाता है। पैसे के नाम पर उनके दाम्पत्य के अन्तिम चरण पर बिखराव आ पड़ता है।

उपर्युक्त कहानियों के अलावा 'शहर शहर की बत्तियाँ', 'राजू', 'बिटिया', 'फर्क नहीं', 'श्यामा', 'चोट्टिन', 'शॉल' आदि कहानियों में आर्थिक दबाव से पीड़ीत पात्रों

का चित्रण हुआ है। इस प्रकार ममता कालिया अर्थ या सम्पत्ति द्वारा मानव जीवन में बिखराव की स्थिति की ओर इशारा करती है। अर्थ के कारण मानव जीवन में अप्रियता, झगड़ा, मानसिक संघर्ष, दर्द, सम्बन्धों में कमज़ोरिपन आदि आ पड़ते हैं। मानव का मूल्यबोध अर्थ के सामने गायब हो रहा है, विवेक नष्ट हो रहे हैं, इसलिए अर्थ के प्रति अनन्य आसक्ति मानव मूल्यों में क्षरण का कारण बनती है।

४.४ धार्मिक एवं राजनैतिक समस्यायें

आज धर्म और राजनीति का क्षेत्र सबसे ज़्यादा विकृत और अर्थ केन्द्रित है। समाज की सारी समस्यायें इन दोनों क्षेत्रों से जुडी हुई है। धर्म और राजनीति की आड़ में अनेक तरह के भ्रष्टाचार एवं अत्याचार फैल रहे हैं। दोनों का आधार स्वार्थ है। राजनैतिक क्षेत्र में दलबदलू राजनीति है। राजनीति के नाम पर हत्या, हड़ताल, पिक्कट्टिंग, बन्द जैसे अत्याचारपूर्ण प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं। इन दोनों क्षेत्रों में अपनी स्वार्थ पूर्ति एवं अपने जेब संवारने का काम करनेवाले राजनैतिक नेताओं और धर्मचार्यों की कमी नहीं है। आज समाज में श्रेष्ठ मानवमूल्य होता तो ऐसी विकृत बातें संभव नहीं। आजकल मनुष्य का स्तर कीटाणु से भी गिर गया है। मानवीय मूल्यों का यह क्षरण एक ज्वलंत समस्या है। अधिकांश मानव आज स्वार्थ लाभ की मोहजाल में फँसकर जीवन बिताना श्रेयस्कर मानते हैं। ममता कालिया ने आज की राजनैतिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में उत्पन्न समस्याओं को बहुत ही कम कहानियों द्वारा उकेरा है।

ममता कालिया की 'उपलब्धि' कहानी में मुहर्रम के ठीक तीस दिन बाद आनेवाले चेहल्लूम का वर्णन करते हुए इस में साम्प्रदायिक दंगा फसाद का उल्लेख किया गया है। कभी-कभी मुहर्रम और होली एक साथ आ पड़ते हैं। इस विशेष मौके का फायदा उठाकर

धार्मिक क्षेत्र में लोग जानबूझकर समस्यायें खडे करते हैं। आज समाज विकास की ओर बढ़ रहा है लेकिन मनुष्य मन स्वार्थ से पूरित है। कुछ लोग इस प्रकार के त्योहारों की पवित्रता, ऐक्य एवं अनुष्ठानों में बाधा डालने का प्रयत्न करते हैं। और छोटी-छोटी समस्याओं को विकराल रूप देकर दँगा-फसाद उत्पन्न करते हैं । इस कहानी में भी ऐसी ही एक स्थिति है। एक बार जुलूस में चेतन-प्राची के एकमात्र पुत्र बबलू के हाथ से पानी नीचे गिरने पर खलबली मच जाती है। कुछ लोग कहने लगते हैं किसी ने ऊपर से पेशाब किया है। और इस स्थिति को लेकर वहाँ कोलाहल मच जाता है। यहाँ समस्या तो छोटी सी है। बच्चे का हाथ का पानी गिरने पर उस पर साम्प्रदायिकता का जामा चढ़ाकर धार्मिक परिवेश दिया जाता है। भारत में बहुत सारी समस्यायें इस तरह की छोटी-छोटी स्थितियों को लेकर ही उत्पन्न होती है।

'लड़के' कहानी में भी धार्मिक, राजनैतिक समस्याओं का उल्लेख किया गया है। इस में कॉलेज में पढ़नेवाले बेचैन एवं कुण्ठित लड़के खास ढ़ंग से कुछ करना चाहते हैं। हड़ताल करने की चिन्ता उनमें जाग उठती है। शिक्षा क्षेत्र में भिन्न तरीके से सोचनेवाले दिग्भ्रमित लड़कों का चित्रण लेखिका खूब करती है। नयी पीढ़ी के लड़कों को सही दिशा निर्देश दे तो वह बहुत कुछ कर सकते है। उनके अन्दर नये ढ़ंग से बहुत करने की चिन्ता हैं। पुरानेपन या रूढ़ियों से उन्हें नफरत हैं । वे ऐसा कुछ करना चाहते हैं जिसमें देश का कल्याण और समाज का कल्याण निहित है। विख्यात आलोचक मधुरेश कहते हैं "लड़के उम्र के जिस दौर में है, वे तगडे बकरों सा उछालना चाहते थे। समूची युवा पीढ़ी की ऊर्जा का कोई माकून उपयोग उनके सामने नहीं है। नेता, शिक्षा, बेरोज़गारी और अतंतः कहीं न ले जानेवाली उनकी अर्थहीन पढ़ाई इन्हीं सबके बीच कहीं उनका वर्तमान कैद है और उसी हिसाब से भविष्य भी। इसी बेमसरफ और बेसूद पढ़ाई की बोरियत से बचने केलिए, विकल्प के रूप में यकायक उन्हें हड़ताल का ख्याल आता है।"[६४] तात्पर्य है कि लड़के परंपरागत पढ़ाई से दिग्भ्रमित है। लड़के

अपने विद्यार्थी जीवन से उक्ताकर नया कुछ करना चाहते हैं। वे राजनैतिक समस्याओं का पर्दाफाश करते हैं। हड़ताल करने के पहले नारियल तोड़ने केलिए वे गंगा की घाटी में चले जाते हैं । वहाँ वे देखते हैं कि सरकारी कर्मचारी अपने कर्मों से विमुख होकर सरकारी वाहनों में परिवार सहित गंगा स्नान करने, पिकनीक मनाने उपस्थित है। लड़कों केलिए नया विषय मिल जाता है। वे सरकारी क्षेत्र में होनेवाले अन्यायों, कुकर्मों का पर्दाफाश कर यथार्थ को समाज के सामने उभारने का प्रयत्न करते हैं। यहाँ नयी पीढ़ी के लड़के समाज में अनदेखे उन समस्याओं का खुला तस्वीर प्रकट करते हैं।

'मुखौटा' कहानी में आज के युग में मुखौटा धारण कर जीवन को चैन एवं आकर्षक बनाने का प्रयत्न करनेवाले एक युवक का चित्रण हुआ है। आज समाज में धोखा देना एक आम बात है। इस कहानी में एक सवर्ण जाति का लड़का एम.बी.ए. में दाखिला पाने केलिए अपनी वास्तविक अवस्था को छिपाकर ओ.बी.सी.के ज़रिए सीट हासिल करने की कोशिश करता है। आज समाज में ऐसी प्रवृत्तियाँ स्वाभाविक रूप में देखी जाती है। जिसकी लाठी उसी की भैंसवाली स्थिति आज समाज में व्याप्त है, वह भी आज की इक्कीसवीं सदी में। ब्राह्मण परिवार का बेटा श्रवणकुमार अब खानदान को भी छोड़कर मूल्यों एवं धार्मिक विश्वासों को ठुकराकर राजनैतिक नेताओं का हाथ पकड़कर, रिश्वत् देकर सरकारी अवसरों का लाभ उठाने केलिए सवर्ण से अवर्ण बन जाता है। इसमें अपने स्वार्थ लाभ केलिए काम करनेवाले नेता गण भी शामिल है। इनके ज़रिए समाज में हमेशा ऐसी मूल्यहीनता धार्मिक संकट आदि उभरकर बढ़ जाते हैं। अपने अस्तित्व को भी भूलकर इसका नायक केवल डिग्री, नौकरी , पद, प्रतिष्ठा सब कुछ हासिल कर लेते हैं । इस प्रकार ममता कालिया धर्म एवं

राजनीति से जुडी कुछ समस्याओं के द्वारा समाज में व्याप्त मूल्यच्युति की ओर इशारा करती हैं ।

निष्कर्ष

ममता कालिया एक संवेदनशील लेखिका है। माँ, पत्नी, प्राचार्या आदि के साथ साथ समाज की समस्याओं को पढ़ने और परखनेवाली एक सशक्त लेखिका भी है। इसलिए उन्होंने अपनी कहानियों में समाज में व्याप्त कई तरह की चिरन्तन समस्याओं को प्रस्तुत किया है। उनकी कहानियों में सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक आदि समस्याओं का उल्लेख हुआ है। आधुनिक काल में नैतिक मूल्य का पतन अत्यन्त खौफनाक स्थिति में पहुँच चुका है। हर क्षेत्र में नैतिक मूल्यों पर दरारें आ पड़ती हैं। ममता कालिया ने 'अपत्नी', 'वे', 'साथ', 'पिछले दिनों का अन्धेरा', 'लगभग प्रेमिका', 'बडे दिन की पूर्व साँझ', 'मन्दिरा' आदि कहानियों में नैतिक मूल्यों में आये पतन का चित्रण किया हैं । वैवाहिक जीवन में प्यार का अभाव, विरक्ति, सन्देह आदि से उत्पन्न समस्याओं का उल्लेख 'बातचीत बेकार', 'एक जीनियस की प्रेम कथा', 'राएवली', 'मनहूसाबी', 'मन्दिरा', 'पीठ', 'इरादा' जैसी कहानियों में हुआ है । शैक्षणिक एवं साहित्य जगत् की समस्याओं की ओर भी ममता कालिया ने अपनी दृष्टि डाली है। आधुनिक युग विभिन्न प्रकार के अत्याचारों और भ्रष्टाचारों से जकड़ा हुआ है । मूल्य के अभाव में ऐसी अनेक समस्यायें समाज में व्याप्त है। 'जॉच अभी ज़ारी है', 'इक्कीसवीं सदी', 'श्यामा', 'निर्मोही', 'चोट्टिन' आदि कहानियों में इसका जीवन्त चित्रण मिलता है। पारिवारिक समस्याओं में स्त्री की समस्यायें, दहेज से उत्पन्न समस्यायें, स्त्री के अलग दृष्टिकोण से उत्पन्न समस्यायें आदि की ओर लेखिका ने इशारा किया है। 'बीमारी', 'उड़ान', 'रिश्तों की बुनियाद', 'आज़ादी', 'गुस्से' जैसी

कहानियों में आर्थिक समस्या से उत्पन्न विघटन का चित्रण है। 'उपलब्धि', 'लड़के', 'मुखौटा' आदि कहानियों में धार्मिक एवं राजनैतिक मूल्यच्युति का जीवन्त तस्वीर है। ममता कालिया की कहानियों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उनकी कहानियों में आधुनिक युग के बदलते परिवेश का यथार्थ रूप देख सकते हैं। इसमें मूल्यों के क्षरण से उत्पन्न समस्यायें काफ़ी मात्रा में हुई है। मूल्य पतन के कारण जीवन के सभी क्षेत्रों में अनेक तरह की समस्यायें उत्पन्न होते हैं। मूल्य सही रास्ता दिखानेवाला एक तत्व है। मूल्यों के अभाव में मानव जीवन में अनेक छोटी मोटी समस्यायें उभरकर आती हैं। ऐसे मूल्य विहीन समाज को दूर फेंकना मानव का कर्तव्य है। हर एक मानव इस पर दृढ़ रहें तो समाज में चैन स्थापित होता है।

सन्दर्भ संकेत

१. डॉ. विजय द्विवेदी – साठोत्तरी हिन्दी कहानी – पृ. २९

२. वर्तमान साहित्य, जुलाई २०११ – पृ. ७०

३. डॉ. राहुल भारद्वाज - नवें दशक की हिन्दी कहानी में मूल्य विघटन – पृ. ९६

४. दोआबा – दिसं. २००७ – पृ. ५७

५. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ खण्ड - १ – पृ. ५१

६. वही, पृ. ७०

७. वही, पृ. ६९

८. डॉ. फैमिदा बिजापुरे – ममता कालिया व्यक्तित्व एवं कृतित्व – पृ. ७२

९. डॉ. ज्ञान अस्थाना – हिन्दी कथा साहित्य - समकालीन सन्दर्भ – पृ. ५१

१०. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ खण्ड - १ – पृ. १६०

११. डॉ. विजया वारद – साठोत्तरी हिन्दी कहानी और महिला लेखिकाएँ – पृ. १४१-१४२

१२. समीक्षा - अकतूबर-नवंबर – १९८४ - पृ. २२।

१३. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ खण्ड - १ – पृ. ३४२

१४. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ खण्ड - २, पृ. ४५८

१५. वही, पृ. ४५८

१६. डॉ. सानप शाम – ममता कालिया की कहानियों में नारी चोतना — पृ. १५६
१७. ममता कालिया — ममता कालिया की कहानियाँ खण्ड - २ – पृ. ४५८
१८. वही, पृ. २७८
१९. वही, पृ. २७८
२०. वही, पृ. १२०-१२१
२१. वही, पृ. २५८
२२. वही, पृ. २१२
२३. वही, पृ. ८४
२४. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ — खण्ड - १, पृ. १२२
२५. वही, पृ. ३०१
२६. प्रेमचन्द — कुछ विचार — पृ. २०
२७. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ — खण्ड - २, पृ. ११
२८. डॉ. फैमिदा बिजापुरे – ममता कालिया: व्यक्तित्व एवं कृतित्व — पृ. १८२
२९. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ — खण्ड - २, पृ. १४
३०. वही - पृ. १४
३१. दोआबा-दिसंबर २००७- पृ. ६७
३२. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ — खण्ड - १, पृ. ३१३
३३. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ — खण्ड - २, पृ. २५८
३४. वही – पृ. २५८
३५. महादेवी वर्मा — अतीत के चलचित्र – पृ. २९
३६. हँस — जुलाई — १९९४ — पृ. ४०
३७. ममता कालिया — पच्चीस साल की लड़की – पृ. १०
३८. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ — खण्ड - २, पृ. १९
३९. वही - पृ. २२
४०. वही - पृ. २३-२४
४१. वही - पृ. १६३
४२. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ — खण्ड - १, पृ. ३८१
४३. वही - पृ. ३८२-८३

४४. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ – खण्ड - २, पृ. ३०९
४५. वही - पृ. ३१०
४६. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ – खण्ड - १, पृ. २१२
४७. वही - पृ. २११
४८. वही - पृ. ३३८
४९. वही - पृ. ३३९
५०. वही - पृ. ३४०
५१. वही - पृ. ९५-९६
५२. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ – खण्ड - २, पृ. ९६
५३. वही - पृ. ४३५
५४. कमलेश्वर – नई कहानी की भूमिका – पृ. १५८
५५. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ – खण्ड - १, पृ. १५३
५६. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ – खण्ड - २, पृ. ३०५
५७. वही - पृ. ३०८
५८. वही - पृ. ३०८
५९. डॉ. पुष्पपाल सिंह – समकालीन कहानी युगबोध का सन्दर्भ – पृ. १२५
६०. दोआबा - दिसंबर २००७ – पृ. ५८
६१. डॉ. वासुदेव शर्मा – साठोत्तरी हिन्दी कहानी मूल्यों की तलाश – पृ. १२४
६२. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ – खण्ड - २, पृ. ४४३
६३. ममता कालिया – ममता कालिया की कहानियाँ – खण्ड - १, पृ. १९१
६४. दोआबा – दिसं. २००७ - ५४

उपसंहार

निस्सन्देह यह कह सकते हैं कि स्त्री-लेखन के दूसरे चरण की लेखिकाओं में ममता कालिया का स्थान वाकिफ श्रेष्ठ एवं ख्यातिप्राप्त है । वे यथार्थधर्मी लेखिका हैं । उनकी कहानियाँ व्यापक जीवन से गहरा सरोकार रखती है । यानी वे केवल घर-परिवार के घेरे में सीमित नहीं हैं बल्कि समाज और मानव जीवन के भिन्न-भिन्न आयामों का संस्पर्श भी करती हैं । इसलिए कि समकालीन सामाजिक यथार्थ को सहज और विश्वसनीय शिल्प में प्रस्तुत करने वाली बहुचर्चित समकालीन लेखिकाओं में ममता कालिया को एक उच्चतम स्थान प्राप्त है । उन्होंने अपनी कहानियों द्वारा मध्यवर्गीय भारतीय स्त्री के संघर्ष, उसकी छटपटाहट को ही नहीं बल्कि सामाजिक विसंगति, बनते-बिगड़ते परिवर्तित मूल्य तथा उभरती समस्याओं की सशक्त अभिव्यक्ति भी की है ।

आज के युग में स्त्री लेखन का विशेष महत्व है । स्त्री लेखन सामाजिक चेतना का वाहक बन गया है । हिन्दी कथा साहित्य की विकास यात्रा में लेखिकाओं का योगदान विशेष उल्लेखनीय है । पूर्ववर्ती साहित्य की अपेक्षा आज़ादी के बाद देश की सभी परिस्थितियों में आमूलचूल परिवर्तन दृष्टिगत होता है । आज लेखिकाओं ने समाज की बदलती परिस्थितियों को अपने लेखन का विषय बनाया है । उत्तराधुनिक युग की बदलती परिस्थितियों के कारण समाज में कई नयी तरह की समस्यायें प्रत्यक्ष हो गयी हैं । जिसकी ओर लेखिकाओं ने अपनी पैनी दृष्टि डाली है । मूल्य परिवर्तन और उभरते नये मूल्य उत्तराधुनिक समाज में नयी अवस्थाओं को जन्म देनेवाले हैं । इन नये मूल्यों का

यथार्थ कभी-कभी इन्सान को 'हॉंट' करने लगता है । जीवन के सभी क्षेत्रों के मूल्यों में बड़ी तीव्रता से परिवर्तन आया है । भारतीय परंपरा में पाश्चात्य परंपरा का अतिप्रसरण सब कहीं खूब व्यक्त होने लगा है । अर्थात् अपने परंपरागत मूल्य भावना के स्थान पर एक अलग मूल्य भावना की स्थापना हो चुकी है । पारिवारिक, सामाजिक, दांपत्य, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक जैसे सभी क्षेत्रों में मानव मानव के बीच मानवीयता का जो सशक्त, उत्तम भाव विद्यमान था, वह आज के विशेष औपनिवेशिक, भूमण्डलीकृत, अपसंस्कृति से युक्त समाज में लुप्त हो गया है । इसका परिणाम यह हुआ कि दया, त्याग, ममता, निस्वार्थ स्नेह, विश्वास जैसे महान परंपरा संपन्न मूल्य खोते जा रहे हैं । इसके स्थान पर स्वार्थ, अर्थ लाभेच्छा, पदमोह, अविश्वास, अत्याचार, भ्रष्टाचार आदि ही समाज में व्याप्त हो रहे हैं । जब मानव और मानव के बीच की दूरी बढ़ जाती है तब मूल्य भी परिवर्तित होते हैं । इसी कारण समाज के मूल्य बनते बिगड़ते हैं । उतराधुनिक युग नये मूल्यों का युग है । जहाँ अर्थ को सबसे ज़्यादा महत्व दिया जाता है । साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों के श्रेष्ठ मूल्य रिसते जा रहे हैं । साहित्यिक क्षेत्र में हो रहे इस मूल्य परिवर्तन को रचनाकारों ने पूरी तल्खी के साथ उकेरा हैं । ममता कालिया का साहित्य इसका जीवन्त मिसाल है ।

ममता कालिया की कहानियाँ खण्ड १ और खण्ड २ में कुल मिलाकर ११७ कहानियाँ हैं । इनमें से लगभग सौ से अधिक कहानियों का आलोचनात्मक अध्ययन 'ममता कालिया की कहानियों में मूल्य परिवर्तन' नामक इस शोध प्रबन्ध में किया है । साहित्य में मूल्यों की आस्था होती है । मानवीय मूल्य जीवन की सफलता के लिए अनिवार्य है । समाज, व्यक्ति और मूल्य परस्पर बन्धित है । इसलिए समाज से निरपेक्ष

होकर मूल्यों को समझना नामुमकिन है । मानवीय जीवन की सारी शक्ति एवं क्षमता मूल्य ही है । लेकिन इन मूल्यों में भी परिवर्तन बिल्कुल स्वाभाविक है । परिवर्तन के साथ नये मूल्यों की स्थापना होती है । नये मूल्य यदि नकारात्मक हों तो समस्यायें उत्पन्न होती हैं ।

ममता कालिया ने परिवर्तित मूल्यों का चित्रण अत्यन्त सूक्ष्मता से अपनी कहानियों में किया है । उनकी कहानियाँ अधिकांश रुप में मध्यवर्ग स्त्रियों से जुड़ी हुई हैं । साथ ही साथ समाज के विभिन्न स्तर के लोगों को भी उन्होंने अपनी कहानियों के पात्र बनाये हैं । समाज, व्यक्ति और परिवार का परस्पर बन्धित रुप और विखड़ित रुप उनकी कहानियों के विषय बने हैं । दरअसल समाज की नींव परिवार में निहित है । परिवार से अलग होकर व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है । व्यक्ति का सच्चा व्यक्तित्व मूल्य पर केन्द्रित है । लेकिन आज के उत्तराधुनिक भूमण्डलीकृत और उपभोक्तावादी युग में व्यक्ति स्वकेन्द्रित होता जा रहा है । इसलिए पारिवारिक एवं सामाजिक ज़िन्दगी अत्यन्त दुष्कर हो रही है । समाज के इन बदलते हुए माहौल को ममता कालिया ने अपनी कहानियों के लिए चुना है ।

मूल्य परिवर्तन की दिशाओं में मानव जीवन में प्रेमसम्बन्ध का महत्वपूर्ण स्थान है । ममता कालिया ने प्रेम के परिवर्तित विभिन्न स्वरुप को प्रस्तुत किया है । छात्र जीवन में प्रेम एक साधारण बात है । 'छुटकारा' कहानी द्वारा आधुनिक छात्र जीवन में प्रेमी-प्रेमिका के परिवर्तित नये मूल्य को उन्होंने व्यक्त किया है । 'प्यार के बाद', 'साथ', 'बेतरतीब' आदि कहानियों में आधुनिक स्वतंत्र प्रेम के परिवर्तित स्वरुप को व्यक्त किया है । 'लड़के', 'वे', 'अपने शहर की बत्तियाँ', 'आहार' आदि कहानियों द्वारा नयी पीढ़ी के युवजनों की परिवर्तित मानसिक दशा का उल्लेख किया गया है । 'लड़के' कहानी में

छात्र वर्तमान शैक्षिक क्षेत्र में कुछ परिवर्तन लाना चाहते हैं । इसमें अफसर लोग और राजनैतिक नेताओं के भ्रष्टाचार को भी छात्रों ने पर्दाफाश किया है । स्वाभिमान एवं आत्मविश्वास के नये आयाम से संबन्धित कहानियाँ हैं 'अलमारी', 'लकी', 'पर्याय नहीं', 'सफर में', 'वह मिली थी बस में', 'बांगडू', 'नमक', 'सवारी और सवारी', 'खिड़की' आदि । 'लकी' कहानी में ज्योतिष शास्त्र के पीछे पड़कर जीवन व्यतीत करनेवाला युवक वास्तविकता को समझकर जीवन को व्यावहारिक नज़रिये से देखता है । 'पर्याय नहीं' में डॉक्टरों के उत्तरदायित्व, मानवीयता और मूल्यभावना के महत्व को उजागर करने का प्रयास किया है । 'सफर में' कहानी मातृस्नेह की स्मृतियों को स्पष्ट कर दिया है । संसार में माँ का स्थान सबसे ऊँचा है । आज के विघटित समाज में रिसते हुए मूल्यों को संरक्षित करने का प्रयास इसमें है । 'वह मिली थी बस में' कहानी में भिन्न मानसिकता रखनेवाली नौकरी पेशा और अशिक्षित आम स्त्री के व्यक्तित्व में उभर आयी परिवर्तित सोच का उल्लेख है । जिद्दी स्वभाववाली रोगग्रस्त वृद्ध माँ के मन में बेटे के भविष्य के प्रति सोचकर आयी नयी मानसिकता का चित्रण 'नमक' कहानी की विशेषता है । समस्याओं को देखकर आत्मविश्वास और साहस के साथ पुलिस के सामने आवाज़ उठानेवाली एक कॉलेज छात्रा के सशक्त व्यक्तित्व का खुला चित्रण 'सवारी और सवारी' में अभिव्यक्त किया है । आज का शैक्षणिक क्षेत्र होड़ से भरा हुआ है । रेलयात्रा में परिचित कंचन नामक लडकी के प्रति व्यावहारिक सोच प्रकट कर ज्ञानरुपी प्रकाश फैलाने का प्रयत्न करनेवाला युव शोध छात्र का चित्रण 'खिड़की' कहानी में परिवर्तित मूल्य की ओर लेखिका ने इशारा किया है । रिसते हुए सम्बन्धें का परिवर्तित रूप 'उत्तर अनुराग', 'उपलब्धि', 'निर्मोही' आदि कहानियों में प्रस्तुत किया है । 'समय' कहानी में वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में पुरानी पीढ़ी और आधुनिक पीढ़ी के लोगों के सोच विचार की

भिन्नता की ओर संकेत किया है ।

ममता कालिया ने अपनी कहानियों में मूल्य को बनाये रखने की कोशिश की है । उन्होंने परिवार को महत्वपूर्ण स्थान दिया है । आज के अणु परिवार संकल्प को तोड़कर संयुक्त परिवार के सदस्यों के बीच एकता एवं मूल्य स्थापित करने का प्रयत्न अपनी कहानियों के द्वारा उन्होंने किया है। 'इक्कीसवीं सदी', 'खानपान', 'बोलनेवाली औरत', 'इरादा', 'बाथरूम' आदि कहानियों में संयुक्त परिवार के सदस्यों के बीच आये परिवर्तित मूल्य का चित्रण है । इक्कीसवीं सदी का समाज पाश्चात्य मूल्यों से प्रभावित है । फिर भी ममता कालिया ने पारिवारिक माहौल में पीढ़ियों में आये परिवर्तित मूल्य को 'सेवा', 'कवि मोहन', 'एक दिन अचानक', 'जाँच अभी ज़ारी है', 'बच्चा', 'उड़ान' आदि के पात्रों द्वारा विस्तार से प्रस्तुत किया है । मूल्य परिवर्तन की प्रक्रिया मानव के रिश्तों में सबसे अधिक दृष्टिगत होता है । संवेदना में परिवर्तन का सबसे पहला और गहरा प्रभाव संबन्धों पर होता है । कोमा पर पड़े माँ की सेवा शुश्रूषा करने में आधुनिक पीढ़ी के सन्तानों के पास समय का अभाव है । इसलिए 'सेवा' कहानी में पत्नी के प्रति पति नरोत्तम सहाय ने अपना सारा समय व्यतीत कर मूल्य का नया रूप दिखाया है । 'एक दिन अचानक' में बडे बेटे की बातों का तिरस्कार कर रोगग्रस्त छोटे बेटे के प्रति अपना संपूर्ण समर्पण भाव एवं परंपरागत मूल्य को बनाये रखने का प्रयत्न करनेवाला वृद्ध माता-पिता उत्तराधुनिक युग में परिवर्तित सोच का उत्तम मिसाल है । आज के युग में बच्चा स्वतंत्र विचरण करना पसन्द करता है । लेकिन 'बच्चा' कहानी का बच्चा व्यावहारिक ज्ञान से संपन्न है । जीवन के प्रति एक अलग दृष्टिकोण उसमें है । इसमें सोलह साल के लड़के का गंभीर सोच विचार एवं जीवन के प्रति दूरदर्शिता का चित्रण है।

आज के सामाजिक, आर्थिक दबावों ने युवा पीढ़ी के अपने पुरानी पीढ़ी के प्रति आचरण, व्यवहार एवं संवेदनशील दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन उत्पन्न कर दिया है । आदर, करुणा, स्नेह, समर्पण, उत्तर दायित्व के स्थान पर आज युवा पीढ़ी अपने माता-पिता के प्रति औपचारिक और व्यावहारिक तौर पर बर्ताव करते रहते हैं । 'उड़ान' कहानी इसका उत्तम दृष्टान्त है । नयी पीढ़ी के लड़कियों के नये मिसाल का चित्रण 'तोहमत', 'मुन्नी', 'नई दुनिया', 'आपकी छोटी लड़की', 'रिश्तों की बुनियाद', 'पीली लड़की' आदि में उपलब्ध है । ममता कालिया ने इन कहानियों के माध्यम से आधुनिक समाज की स्वतंत्रचेता लड़कियों के वैचारिक खुलेपन एवं साहसी व्यक्तित्व को दिखाने का सफल प्रयास किया है । 'वे तीन और वह', 'दो ज़रूरी चेहरे', 'एक अकेला दुःख', 'कौए और कोलकत्ता' आदि कहानियों में खून के रिश्तों में होनेवाले परिवर्तन की ओर लेखिका ने इशारा किया है ।

परिवार की धुरी है माता-पिता और सन्तान । ममता कालिया की अधिकांश कहानियों में माता-पिता और सन्तानों के बीच के बनते-बिगड़ते परिवर्तित मूल्य का उल्लेख मिलता है । 'राजू' कहानी का राजू कठिनाईयों के बीच भी एक समझदार लड़का है । राजू का व्यक्तित्व आधुनिक युग के बच्चों के लिए उत्तम उदाहरण है । मातृत्व स्त्री जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है । इसके बिना स्त्री अपूर्ण है । इसी आदर्श मातृत्व की झलक 'अर्द्धांगिनी', 'जितना तुम्हारा हूँ', 'आज़ादी', 'बिटिया', 'निवेदन', 'माँ' आदि कहानियों में प्राप्त होती है । जहाँ नारी अपना सबकुछ न्योछावर करने को तैयार है वह केवल अपने बच्चों के लिए है । 'ऐसा ही था वह', 'सिकन्दर' आदि कहानियों में बेटे के लिए नये जीवन मूल्य को सुरक्षित रखनेवाले आदर्शवान पिता का चित्रण है । स्त्री ममता कालिया की कहानियों का केन्द्रबिन्दु है । पारिवारिक तकलीफों के बीच दबने

पर भी अपनी मूल्य भावना को तोड़ना वे कभी नहीं सोचतीं । 'दर्पण', 'मेला', 'बोलनेवाली औरत', 'तासीर', 'श्यामा', 'राएवाली', 'मनोविज्ञान' आदि कहानियों में पारिवारिक माहौल में स्त्री के संवेदनात्मक मूल्यों का बखूबी चित्रण हुआ है । इनकी स्त्रियों ने एक हद तक भारतीय परंपरा एवं संस्कृति की महानता को सुरक्षित रखकर जीवन बिताया है।

मानव जीवन की एक अनिवार्य पक्ष है दांपत्य जीवन की सफलता । दांपत्य जीवन की विविध पहलुओं की वास्तविकता को प्रस्तुत करने में ममता कालिया सक्षम है । परस्पर वफादारी और विश्वसनीयता ही वह मूल्य है जो दांपत्यरुपी पवित्र इमारत का मूलाधार है । पाश्चात्य सभ्यता के बीच पत्नी का व्यतिरेकी दृष्टिकोण को उजागर करनेवाली कहानियाँ हैं 'बड़े दिन की पूर्व साँझ', 'एक अदद औरत', 'अपत्नी' आदि । इनकी स्त्रियों ने आधुनिक माहौल से अपने को बचाकर रखने का प्रयत्न किया है । इसके लिए उन्होंने कभी कभी दोहरा व्यक्तित्व को स्वीकार किया है । सफल दांपत्य जीवन का नींव दम्पति का समझौतापरक दृष्टिकोण है । 'काली साड़ी', 'मन्दिरा', 'अर्द्धांगिनी', 'मुहब्बत से खिलाइए', 'रजत जयंती', 'तस्कीं को हम न रोयें', 'रोशनी की मार' आदि कहानियों के पात्र समझौते के लिए तैयार है । दांपत्य जीवन की सुगमता के लिए समझौते की अनिवार्यता ज़रूरी है। 'अट्ठावनवाँ साल', 'लगभग प्रेमिका', 'लैला मजनूँ', 'गुस्सा', 'दांपत्य' आदि कहानियों के ज़रिए पति-पत्नी के विचारों में आये परिवर्तित दृष्टिकोण का पर्दाफाश किया गया है । पुरुष के प्रति और वैवाहिक जीवन के प्रति अलग सोच रखनेवाली अविवाहित नौकरीपेशा स्त्रियों में जागृत नये परिवर्तित मूल्य बोध का उल्लेख 'ज़िन्दगी सात घंटे बाद की', 'सी.नं. छह', 'फर्क नहीं', 'प्रतिप्रश्न' जैसी कहानियों द्वारा प्रस्तुत किया है । पारिवारिक जीवन की उलझनों को देखकर

अविवाहित स्त्रियाँ अपनी स्वतंत्र जीवन को धन्य मानती है । ममता कालिया की बहुतेरी कहानियों में इस तरह सोचनेवाले पात्र मिलते हैं ।

आज के युग में सब अपने लिए आर्थिक सुरक्षा चाहते हैं । ममता कालिया ने 'मुखौटा', 'उत्तर अनुराग', 'प्रिया पाक्षिक', 'पहली', 'दल्ली', 'सिकन्दर' आदि कहानियों में धन की महत्ता एवं उसके सदुपयोग की ओर इशारा किया है । आज के वैश्वीकृत, विज्ञापनबाजी एवं उपभोक्तृ संस्कृति में मानव को जीने केलिए आर्थिक संपन्नता का होना अत्यंत अनिवार्य है । नहीं तो समाज की गतिविधियों के साथ जीना मानव के लिए नरकतुल्य है ।

भारतीय संस्कृति में नैतिकता का स्थान ऊँचा है । परंपरागत नैतिक मूल्य को संरक्षित करना मानव का दायित्व है । जीवन की सार्थकता के लिए नैतिक मूल्य की ज़रूरत है । मूल्य परिवर्तन की इस ज़माने में भी ममता कालिया ने नैतिक मूल्य पर अटल रखनेवाले पात्रों का चित्रण किया है । 'बीमारी', 'अपत्नी', 'मेला', 'किताबों में कैद आदमी' आदि कहानियाँ इसके उत्तम दृष्टान्त है । धर्म और संस्कृति परस्पर मिले-जुले रहते हैं । इनका संबन्ध मानव मूल्यों से होता है । आज के उत्तराधुनिक युग में भी धर्म और संस्कृति के मूल्यों पर टिके रहनेवाले मानव विद्यमान है । ममता कालिया ने कुछ कहानियों में इसका जिक्र किया है । 'परदेश', 'खिड़की', 'मनोविज्ञान', 'पर्याय नहीं', 'बाल-बाल बचनेवाले', 'बांगडू', 'बाथरूम' आदि ।

ममता कालिया शिक्षा और साहित्य को महत्व देनेवाली है । वे स्वयं शिक्षक एवं साहित्यकार भी हैं । आधुनिक युग में इन क्षेत्रों में आये परिवर्तित मूल्य को आँकने में वे सक्षम हुई हैं । 'उसका यौवन', 'किताबों में कैद आदमी', 'उत्तर

अनुराग', 'लकी', 'चोट्टिन', 'कवि मोहन', 'सीमा', 'नई दुनिया' आदि कहानियों में लेखिका ने आधुनिक युग में शिक्षा और साहित्य में परिवर्तित मूल्यों का चित्रण किया है । आज का युग राजनीति से इतना कलुषित होने पर भी ममता कालिया ने राजनीति से सम्बन्धित बहुत कम कहानियों का चित्रण किया है । राजनैतिक कुप्रभाव से बचने का संकेत 'नायक', 'सुलेमान' जैसी कहानियों में दिया गया है । लेखिका ने श्रमिक लोगों की महनीय व्यक्तित्व को अपनी कहानियों में उजागर किया है । श्रमिक भी अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व के प्रति सचेत है । उनमें भी परिवेश के गति के अनुसार परिवर्तित सोच एवं मूल्यबोध है । 'अनुभव', 'चोट्टिन', 'शॉल', 'रोशनी की मार' जैसी कहानियों में श्रमिकों का मूल्य अवबोध का संकेत दिया गया है ।

ममता कालिया एक संवेदनशील लेखिका है । भारत के विभिन्न शहरों में बचपन गुज़ारने के कारण उन्होंने समाज की हर एक पहलू को अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से देखा हैं, समझा हैं । लेखिका ने अपनी सृजनशक्ति के द्वारा अपने जीवनानुभवों को कहानी का रूप दिया है । जिस कारण उनकी कहानियों में एक तरह की जीवन्तता है । समाज में रहते हुए समाज के लोगों की समस्त समस्याओं की ओर भी उनका ध्यान आकृष्ट हुआ है । उन्होंने अपनी कहानियों में उन समस्याओं को समग्र रूप से उद्घाटित भी किया है।

ममता कालिया ने प्रमुख रूप से सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक समस्याओं के ज़रिए कहानियों में व्याप्त समस्याओं का उल्लेख किया है । सामाजिक समस्याओं के अंतर्गत उन्होंने नैतिक मूल्यों पर आयी दरारें, वैवाहिक समस्याओं के विभिन्न पक्ष, शैक्षणिक समस्यायें, साहित्यिक समस्यायें, भ्रष्टाचार एवं अत्याचार से उत्पन्न समस्याओं को बारीकी से चित्रित किया हैं ।

पारिवारिक समस्याओं का चित्रण करते वक्त ममता कालिया ने स्त्रियों की समस्यायें, दहेज से उत्पन्न समस्यायें, स्वतंत्रचेता स्त्री का आत्मबोध और उससे उत्पन्न समस्यायें, आधुनिक युग में वृद्धजनों की उपेक्षा और उससे उत्पन्न समस्यायें, बच्चों की संक्रान्त मानसिकता से उत्पन्न समस्यायें आदि का प्रस्तुतीकरण अत्यंत सफलता के साथ किया है ।

आर्थिक समस्याओं का उल्लेख भी ममता कालिया ने खूब किया है । आजकल अर्थ मानव के लिए सबसे प्रिय है । अर्थ के प्रति हर दिन समाज में अनेक छोटी-मोटी समस्यायें घटित होती है । अर्थ के प्रति मानवीय रिश्तों का महत्व आज के युग में कम हो गया है । सम्बन्धों में तनाव, मानसिक संघर्ष आदि का उदय अर्थ के प्रति अनन्य आसक्ति के कारण है । 'उड़ान', 'बीमारी', 'रिश्तों की बुनियाद' आदि इन समस्याओं से सम्बन्धित कहानियाँ हैं । धार्मिक एवं राजनैतिक समस्याओं के अन्तर्गत ममता कालिया ने सांप्रदायिक दंगा फसाद, गंगास्नान का पाखण्ड, राजनैतिक क्षेत्र के भ्रष्टाचार आदि को चित्रित किया है । इस प्रकार ममता कालिया ने विभिन्न तल पर मूल्यच्युति से उत्पन्न समस्याओं का उल्लेख किया है । मूल्य का अभाव जीवन की सार्थकता के लिए हानिकारक है । इसलिए मूल्य विहीनता से समाज को सुरक्षित रखने का दायित्व साहित्यकार में निहित है ।

ममता कालिया की कहानियों में मूल्य परिवर्तन पर अध्ययन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि समय, संदर्भ एवं समाज की आवश्यकता के अनुसार मूल्य में परिवर्तन होता है । यदि मूल्य सकारात्मक हों तो उसे स्वीकारना पड़ता है । तभी इन्सान की प्रगति होता है, समाज का विकास होता है । अंत में यह कहना

चाहती हूँ कि एक सुस्थिर, समन्वयात्मक, शांतिपूर्ण, सुव्यवस्थित, संपन्न, समृद्ध, सुचारु मानव जीवन के लिए मूल्य अत्यंत महत्वपूर्ण है । अर्थात् एक संतुलित जीवन के लिए महान मानव मूल्य अनिवार्य है ।

समूचे शोधात्मक अध्ययन के आधार पर मूल्य से जुड़े कई सवाल हमारे अंदर कौंधकर उभर आये हैं । उसमें इन सवालों का जवाब भी निहित है ।

१. मूल्यों का शाश्वत होना क्या अनिवार्य है ?
२. मूल्य परिवर्तन समाज के लिए कहाँ तक स्वीकार्य है ?
३. नये मूल्यों से समाज क्या विकास को प्राप्त कर सकता है ?
४. समाज को गतिशील करने में मूल्यों का क्या योगदान हैं ?
५. परिवर्तित नये मूल्य नयी पीढ़ी पर क्या प्रभाव डालते हैं ?

- समय के अनुसार मूल्यों में परिवर्तन होना स्वाभाविक है । कुछ मूल्य ऐसे होते हैं जो परिवर्तित होने के लिए विवश होते हैं। और उस परिवर्तन से ही समाज का विकास होता है । कुछ मूल्य ऐसे होते हैं जिनका शाश्वत होना समय की माँग होती है । हमारे परंपरागत संस्कार जैसे प्रेम, सहिष्णुता, समर्पण, ममता, आदर आदि । ये ऐसे मूल्य हैं जो हमारी संस्कृति के महत्व को बनाये रखते हैं । अतः यह सकारात्मक है । और विकास के अनुसार समाज में नये मूल्यों की स्थापना की जा सकती है लेकिन ध्यान रखना होता है कि उसे हमारी सांस्कृतिक धरोहर का नुक्सान न हो ।

- समाज में व्यक्ति की मानसिकता के अनुसार उसके क्रिया-कलाप बनते-बिगड़ते रहते हैं । नयी मानसिकता को लेकर नव मानव नये मूल्यों से चिपकर रहना चाहता है । लेकिन देखना यह है कि ये नये मूल्य कहाँ तक मानव जीवन के लिए व्यावहारिक है ।

- परिस्थितियों के अनुसार परिवेश परिवर्तित होता है । और नये

परिवेश में परिवर्तित नये मूल्य स्थायित्व के लिए कोशिश करते हैं । अगर यह मूल्य सकारात्मक हों तो समाज के लिए, मानव के लिए कल्याणकारी हो सकते हैं ।

♦ समाज की गतिशीलता में मूल्यों का स्थान महत्वपूर्ण है । श्रेष्ठ मूल्य जैसे शांति, चैन, आदर्श, विवेक, प्यार आदि शाश्वत रहे तो समाज की गतिशीलता में विकास हो सकता है । अन्यथा इन मूल्यों में तकरार होने पर समाज का विकास स्थगित हो जाता है ।

♦ नयी पीढ़ी के अधिकांश लोग परंपरागत सोच-विचार को तोड़कर कुछ नवीनता लाना चाहते हैं । पाश्चात्य विचारधारा को अपनाने का प्रयत्न भी करते हैं। ये पीढ़ी परंपरागत मूल्यों को दकियानूस मानकर उसकी अवहेलना करते हैं । जबकि ये परंपरागत श्रेष्ठ मूल्य भारतीयता की पहचान है और यही पहचान विश्व में भारतवर्ष को एक नयी 'Identity' प्रदान करते हैं ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ

१. ममता कालिया - खंड १		ममता कालिया वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
२. ममता कालिया - खंड २		प्र.सं. २००५ & २००६

सहायक संदर्भ ग्रंथ सूची

१. अतीत के चलचित्र	:	**महादेवी वर्मा** भारती भण्डार, इलाहाबाद सं. १९७०
२. अस्तित्ववाद और नई कहानी	:	**डॉ. लालचन्द गुप्त** शोध प्रबन्ध प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. १९७५
३. आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि	:	**डॉ. रामदरश मिश्र** अभिनव प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. १९७५
४. आठवें दशक की हिन्दी कहानियों में जीवन मूल्य	:	**डॉ. रमेश देशमुख** विजय प्रकाशन, कानपुर प्र.सं. १९७४
५. आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य	:	**डॉ. हुकुमचन्द राजपाल** भारतीय संस्कृत भवन, जालधर शहर प्र.सं. १९७०
६. आधुनिक परिवेश और नवलेखन	:	**डॉ. शिवप्रसाद सिंह** संजय बुक सेन्टर, वारणासी प्र.सं. १९९०

७. आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द: **डॉ. बच्चन सिंह**
वाणी प्रकाशन,
नई दिल्ली
प्र.सं. २००४

८. आधुनिकता और उपनिवेश : **कृष्ण मोहन**
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. २००६

९. आपका बंटी : **मन्नू भण्डारी**
अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली
सं. १९८२

१०. आप न बदलेंगे : **ममता कालिया**
लोकभारती प्रकाशन,
इलाहाबाद
प्र.सं. १९८९

११. उत्तर आधुनिकतावाद की ओर : **कृष्णदत्त पालीवाल**
आर्य प्रकाशन मण्डल,
दिल्ली
प्र.सं. २००५

१२. उत्तर आधुनिकता और मनोहरश्याम जोशी का साहित्य विमर्श : **डॉ. मीना खरात**
समता प्रकाशन, कानपुर
प्र.सं. २००८

१३. उत्तर यथार्थवाद : **सुधीश पचौरी**
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. २००४

१४. उसका यौवन : **ममता कालिया**
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. १९८३

१५. उपनिवेश में स्त्री : **प्रभा खेतान**
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. २००३

१६. एक पत्नी के नोट्स : **ममता कालिया**
किताबघर, नई दिल्ली
प्र.सं. १९९७

१७. औरत : कल, आज और कल : **आशारानी व्होरा**
शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली
प्र.सं. २००५

१८. अंधेरे का ताला ७ : **ममता कालिया**
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. २००९

१९. कथा साहित्य के सौ बरस : **(सं.) विभूतिनारायण राव**
शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. २००१

२०. कहानी का समाजशास्त्र : **डॉ. मधु सन्धु**
निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली
प्र.सं. २००५

२१. कहानी स्वरूप और संवेदना : **श्री. राजेन्द्र यादव**
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. १९६८

२२. कितने शहरों में कितनी बार : **ममता कालिया**
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. २०१०

२३. कुछ सोचा : कुछ समझा : **डॉ. महीप सिंह**
भारत पुस्तक भण्डार, दिल्ली
प्र.सं. २००४

२४. कुछ विचार : **प्रेमचंद**
सरस्वती प्रेस, नई दिल्ली
प्र.सं. १९८५

२५. गोदान : **प्रेमचन्द**
अनुराग प्रकाशन, वाराणसी
सं. २००१

२६. चूकते नहीं सवाल : **मृदुला गर्ग**
सामयिक प्रकाश्न, नई दिल्ली
प्र.सं. २००२

२७. छठे दशक की कहानी में जीवन मूल्य : **डॉ. अरुणा गुप्ता**
इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. १९९०

२८. छुटकारा : **ममता कालिया**
लोकभारती प्रकाशन,
इलाहाबाद
प्र.सं. १९७०

२९. तीन लघु उपन्यास : **ममता कालिया**
किताबघर प्रकाशन,
नई दिल्ली
प्र.सं. २००७

३०. दुक्खम सुक्खम : **ममता कालिया**
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. २००९

३१. **दौड़** : **ममता कालिया**
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. २०००

३२. **नई कहानी की भूमिका** : **कमलेश्वर**
अक्षर प्रकाशन,
दिल्ली
प्र.सं. १९६६

३३. **नयी कहानी पुनर्विचार** : **मधुरेश**
नेशनल पब्लिशिंग हऊस,
नई दिल्ली
प्र.सं. १९९८

३४. **नयी सदी की पहचान : श्रेष्ठ महिला कथाकार** : **ममता कालिया**
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद
प्र.सं. २००२

३५. **नये आयामों को तलाशती नारी** : **दिनेश नन्दिनी डालमिया और रश्मि मलहोत्रा**
नवचेतन प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. २००३

३६. **नरक दर नरक** : **ममता कालिया**
किताबघर प्रकाशन,
नई दिल्ली
प्र.सं. २००७

३७. **नवम् दशक की कहानियों में कामकाजी : नारी की भूमिका** **डॉ. चौधरी वेदवती उर्फ सौ लाडके वी.पी.**
अन्नपूर्ण प्रकाशन, कानपुर
प्र.सं. २००३

३८. नवें दशक की कहानी में मूल्य विघटन	:	**डॉ. राहुल भारद्वाज** जवाहर पुस्तकालय, मथुरा प्र.सं. १९९९
३९. नारी शोषण समस्याएँ एवं समाधान	:	**डॉ. राजकुमार** अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली प्र.सं. २००३
४०. नैतिक मूल्यों की प्रासंगिकता	:	**डॉ. सुरेशसिंह नेगी** आदित्य प्रकाशन, मध्यप्रदेश प्र.सं. २०००
४१. नैतिकता के नये सवाल	:	**सं. राजकिशोर** वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. २००५
४२. पच्चीस साल की लड़की	:	**ममता कालिया** रेमाधव पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली प्र.सं. २००६
४३. परंपरा सर्जन और उपन्यास	:	**विनोद तिवारी** लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्र.सं. २००४
४४. प्रतिदिन	:	**ममता कालिया** राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. १९८३
४५. प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास : एक नैतिक मूल्य	:	**शशी गुप्ता** नमन प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. १९९९

४६. बाज़ार के बीच; बाज़ार के ख़िलाफ भूमण्डलीकरण और स्त्री के प्रश्न	:	**प्रभा खेतान** वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. २००४
४७. बीसवीं सदी का रामकाव्य और मूल्यबोध	:	**सुरेश चन्द** अनंग प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. २००२
४८. बेघर	:	**ममता कालिया** राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. १९७१
४९. बोलनेवाली औरत	:	**ममता कालिया** वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. १९९८
५०. भारतीय नारी : अस्मिता और अधिकार	:	**आशारानी व्होरा** नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली प्र.सं. १९८६
५१. भारतीय नारी अस्मिता की पहचान	:	**डॉ. उमा शुक्ल** लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्र.सं. १९९४
५२. मन खंजन किनके	:	**डॉ. रमेश कुन्तल मेघ** वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. १९९६
५३. ममता कालिया के कथा साहित्य में नारी चेतना	:	**डॉ. सानप शाम** विकास प्रकाशन, कानपुर प्र.सं. २०१०

५४. ममता कालिया : व्यक्तित्व एवं कृतित्व : डॉ. फेमिदा बिजापुरे
विनय प्रकाशन,
कानपुर
प्र.सं. २००४

५५. महिला उपन्यासकार - पारिवारिक जीवन के बदलते संदर्भ : डॉ. कल्पना किरण पटोले
विद्या प्रकाशन, कानपुर
प्र.सं. २०१०

५६. महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ : डॉ. शील प्रभा वर्मा
विद्या विहार, कानपुर
प्र.सं. १९८७

५७. महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी दृष्टि : डॉ. अमर ज्योति
अन्नपूर्ण प्रकाशन, कानपुर
प्र.सं. १९९४

५८. महिला कथाकारों की रचनाओं में प्रेम का स्वरुप विकास : सरिता कुमार
राधाकृष्ण प्रकाशन,
नई दिल्ली
प्र.सं. १९८३

५९. महिला कहानीकार प्रतिनिधि कहानियाँ : डॉ. पुष्पपाल सिंह
हिमाचल पुस्तक भण्डार,
नई दिल्ली
प्र.सं. १९९९

६०. मानव मूल्य और साहित्य : डॉ. धर्मवीर भारती
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
सं. १९६०

६१. मालती जोशी का कथा साहित्य : डॉ. सुभाष तलेकर
अतुल प्रकाशन, कानपुर
प्र.सं. १९९८

६२. मूल्य मीमांसा	:	**गोविन्द चन्द्र पाण्डेय** राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर प्र.सं. १९७५
६३. वर्तमान हिन्दी महिला कथा लेखन और दांपत्य जीवन	:	**डॉ. साधना अग्रवाल** वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. १९९५
६४. संत साहित्य में मानव मूल्य	:	**डॉ. देवमणी उर्फ मीनमिश्र** साहित्य भवन, इलाहाबाद प्र.सं. १९८९
६५. समकालीन कहानी : सोच और समझ	:	**डॉ. पुष्पपाल सिंह** आत्मराम एण्ड सन्स, दिल्ली प्र.सं. १९८६
६६. समकालीन कहानी : युगबोध का संदर्भ	:	**डॉ. पुष्पपाल सिंह** नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली प्र.सं. १९८६
६७. समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि	:	**डॉ. धनंजय** अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद प्र.सं. १९७०
६८. समकालीन हिन्दी उपन्यास	:	**(सं.) डॉ. एम. षणमुखन** हिन्दी विभाग, कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्चिन प्र.सं. २००३
६९. समकालीन हिन्दी कथा साहित्य	:	**(सं.) डॉ. टी.जी. प्रभाकर प्रेमी** हिंदी विभाग, बेंगलूर विश्वविद्यालय प्र.सं. २००२

७०. समकालीन हिन्दी कथा लेखिकाएँ : डॉ. रामकली सराफ
अनुराग प्रकाशन,
प्र.सं. १९७७

७१. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचनाकर्म : कृष्णदत्त पालीवाल
लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. २००४

७२. साठोत्तरी कहानी में मानवीय मूल्य : विनीता अरोरा
नमन प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. १९९९

७३. साठोत्तरी महिला कहानीकार : डॉ. मंजु शर्मा
राधा पब्लिकेशन्स,
नई दिल्ली
प्र.सं. १९९२

७४. साठोत्तरी लेखिकाओं की कहानियों में परिवार : डॉ. भारती शेल्के
विद्या प्रकाशन, कानपुर
प्र.सं. २००६

७५. साठोत्तरी हिन्दी कहानी : डॉ. विजय द्विवेदी
विद्या प्रकाशन, कानपुर
प्र.सं. १९८४

७६. साठोत्तरी हिन्दी कहानी मूल्यों की तलाश : डॉ. वासुदेव शर्मा
सहयोग प्रकाशन,
नई दिल्ली
प्र.सं. १९९०

७७. साठोत्तरी हिन्दी कहानी और महिला लेखिकाएँ: डॉ. विजया वारद
विकास प्रकाशन, कानपुर
प्र.सं. १९९३

७८. साठोत्तरी हिन्दी कहानी में पात्र और चरित्र चित्रण	:	**डॉ. रामप्रसाद** जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्र.सं. १९९५
८९. साठोत्तरी हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी	:	**डॉ. सौ मंगल कप्पिक्केरे** विकास प्रकाशन, कानपुर प्र.सं. २००२
८०. साहित्य के नये दायित्व	:	**रामस्वरूप चतुर्वेदी** लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्र.सं. १९९१
८१. साहित्य : मूल्य और प्रयोग	:	**डॉ. वैजनाथ सिंहल** संजय प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. १९८५
८२. सूर की सांस्कृतिक चेतना और उनका युगबोध	:	**संतराम वैश्य** क्लासिक पब्लिशिंग कंपनी, प्र.सं. १९९२
८३. सौन्दर्य : मूल्य और मूल्यांकन	:	**डॉ. रमेश कुन्तलमेघ** नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली प्र.सं. २००८
८४. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन	:	**डॉ. देवराज** प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश प्र.सं. १९५७

८५. स्त्री अस्मिता साहित्य और विचारधारा	:	**जगदीश चतुर्वेदी** आनन्द प्रकाशन, कोलकोत्ता प्र.सं. २००४
८६. स्त्री उपेक्षिता	:	**प्रभा खेतान** हिन्दी पॉक्ट बुक्स, नई दिल्ली प्र.सं. १९९८
८७. स्त्री के लिए जगह	:	**सं. राजकिशोर** वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. १९९९
८८. स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ	:	**रेखा कस्तवार** राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. २००६
८९. स्त्री पुरुष कुछ पुनर्विचार	:	**राजकिशोर** वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. २००६
९०. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी आँचलिक कहानी	:	**निरुपमा भट्ट** राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली प्र.सं. १९९२
९१. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में मूल्य परिवर्तन	:	**डॉ. टेस्सी जॉर्ज** जवाहर पुस्तकालय, मथुरा सं. २००६
९२. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में नारी के विविध रूप	:	**डॉ. गणेश दास** उदय प्रकाशन, कानपुर प्र.सं. १९९२

९३. हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य : डॉ. मोहिनी शर्मा
साहित्य नगर, जयपुर
प्र.सं. १९८६

९४. हिन्दी कथा साहित्य समकालीन संदर्भ : डॉ. ज्ञान अस्थाना
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
प्र. सं. १९८१

९५. हिन्दी कथा साहित्य में रूढ़िमुक्त स्त्री : डॉ. सुधा. बी
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
प्र. सं. २०१०

९६. हिन्दी कहानी अस्मिता की तलाश : मधुरेश
आधार प्रकाशन
प्र. सं. १९९७

९७. हिन्दी कहानी सातवाँ दशक : प्रह्लाद अग्रवाल
मैकमिल्लन, दिल्ली
प्र. सं. १९७५

९८. हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियाँ - तात्विक विवेचन : डॉ.जयन्ती प्रसाद नौटियाल
आर्यप्रकाशन मण्डल, दिल्ली
प्र. सं. २००७

९९. हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना : उषा यादव
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. १९९८

१००. हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में मूल्य संक्रमण : डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. १९९७

१०१. हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी : डॉ. रेणु गुप्ता
अभिरुचि प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. १९९७

१०२. हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी के बदलते स्वरूप : **डॉ. सुधा बालकृष्णन**
संजय बुक सेन्टर,
वारणासी
प्र.सं. १९९७

१०३. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास : **डॉ. बच्चन सिंह**
राधाकृष्ण प्रकाशन,
नई दिल्ली
प्र.सं. १९९६

पत्र-पत्रिकाएँ

१. अक्षर पर्व : जनवरी २०१०
२. आजकल : मई २००८
३. आलोचना : अक्तूबर-दिसंबर २००४
४. कथादेश : जनवरी २००१
५. दर्पण : २०१०
६. दस्तावेज ८९ : अक्तूबर - दिसंबर २०००
७. दोआबा : दिसंबर २००७
८. मधुमति : फरवरी २००७
९. वर्तमान साहित्य : जुलाई २०११
१०. वागर्थ : जनवरी १९९७, जून १९९७ :
११. समीक्षा : अक्तूबर - दिसंबर १९८४
१२. साहित्य अमृत : फरवरी २००२
१३. साहित्य मण्डल पत्रिका: जुलाई १९९२
१४. साक्षात्कार : मार्च २०००
१५. हंस : जुलाई १९९४
१६. श्रीमिलिन्द : दिसंबर २००९

कोश ग्रन्थ

नालान्दा विशाल शब्द सागर : **श्रीनवलजी,**
आदेश बुक डिपो, दिल्ली
प्र. सं. १९८८

Mamta Kalia

A-73, Lajpat Nagar-I
New Delhi-110024

16.5.12.

प्रिय लिसम्मा जॉन,

यह जान कर बहुत सुख मिला कि आपने सुधाजी के निर्देशन में कितनी योजनाबद्ध प्रणाली से अपना शोधकार्य पूरा किया। इसका संक्षिप्त प्रारूप पढ़ कर आभास होता है कि यह अनुसंधान कितना कष्टसाध्य रहा होगा।

आप जीवन और कैरियर में निरन्तर प्रगति करें तथा अकादमिक जगत की ऊँचाइयों को स्पर्श करें।

मेरी शुभकामनायें स्वीकार करें।

आपकी
ममता कालिया

Editor : Hindi—A Quarterly of language, discourse and writing
Mahatma Gandhi Antar-rashtriya Hindi Vishwavidyalay, Wardha.
E-mail : editor.hindi@gmail.com; Mob. : 09212741322

ममता कालिया

जन्म - मेरा जन्म 1940 में 2 नवम्बर को मथुरा - वृन्दावन में हुआ। मथुरा में हमारा घर था किन्तु वृंदावन में कैनेडियन मिशन अस्पताल था जहाँ सिजेरियन ऑपरेशन की सुविधा थी। उस ज़माने में पेट चाक कर बच्चा पैदा होना बहुत बड़ी घटना मानी जाती थी। मैं अपने परिवार की दूसरी व अंतिम संतान थी। मुझसे बड़ी बहन प्रतिभा थी। उसके जन्म पर मेरे दादी बाबा माता पिता सब खुश हुए थे किन्तु मेरे जन्म पर दुखी। वे एक लड़की के बाद लड़का चाहते थे। इसीलिये मुझे बचपन में मुन्नी की जगह मुन्ना पुकारा जाता था।

मेरे जन्म का विवरण या परिचय मेरी कहानी 'जनम' में मिलेगा। यह मेरे संग्रह 'बोलने वाली औरत' में सम्मिलित है जो वाणी प्रकाशन से छपा है।

मेरे पिता का नाम - स्व. श्री विद्याभूषण अग्रवाल। माता - स्व. श्रीमती इन्दु अग्रवाल - गृहणी परिचय 'मेरी रचना प्रक्रिया' से मिल जायेगा।

परिवेश - परिवेश का कुछ परिचय । पिता हिन्दी, अंग्रेजी साहित्य के विद्वान थे। उनके पास किताबों का अद्भुत भंडार था। बचपन से हमारे खेल खिलौने किताब - कागज़ ही थे। पिता कई नौकरियों के बाद आकाशवाणी की सेवा में आ गये। उनके बार बार तबादलों के कारण बहुत से नगरों की कला, संस्कृति और भाषा से परिचित होने का मौका मिला।

शिक्षा - नर्सरी कक्षा में दिल्ली से शुरु होकर दिल्ली पर ही ख़त्म हुई। 1963 में दिल्ली विश्वविद्यालय से एम. ए. इंगलिश लिटरेचर किया। यूनिवर्सिटी में V स्थान था। बीच के वर्षों में नागपुर, पुणे, बम्बई, इन्दौर में भी पढ़ी।

प्रेरणास्रोत — एक समय ऐसा था कि जिसको भी मैं पढ़ती वही मेरा नायक बन जाता। इस तरह शेक्सपियर, ऑस्कर वाइल्ड, ओ. हेनरी के साथ साथ टैगोर, प्रेमचंद, गोर्की, टॉलस्टॉय सब मेरे आराध्य हो लिए। [illegible] साल की उम्र तक मैंने विश्व-साहित्य काफ़ी खंगाल डाला था। सन् 1961 में मैंने दिल्ली वि. वि. में एम. ए. इंग्लिश में प्रवेश लिया। वहाँ अमेरिकन और यूरोपीय साहित्य में मौजूद एब्सर्ड लेखन का बोलबाला था। एब्सर्ड लेखन की रचनाएं [illegible] ध्यान खींचती थीं। उस दौर में सार्त्र, कामू, काफ़्का, इलियट, आयनेस्को, बैकेट, लोर्का सब पढ़े। उनसे प्रेरणा लेकर अकवितायें भी लिखीं। लेकिन वे प्रभाव स्थायी सिद्ध नहीं हुए, [illegible] हैं। ज़िन्दगी में इसी [illegible], आदत और [illegible] [illegible] सम्पर्क, [illegible]

की परम लोकप्रिय छवि और कहानी में होते पल पल परिवर्तन ने मेरा सरल कहानी-लेखन की तरफ कर दिया। रवीन्द्र कालिया से चंडीगढ़ सेमिनार में हुई मुलाकात ने प्रेरणा को प्रक्रिया का रूप दिया। पाठ्य पुस्तकों से अलग प्रकार की दुनिया थी हिन्दी की। राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, उषा प्रियम्वदा की रचनायें, नामवर सिंह के व्याख्यान और परिसंवाद एक अद्भुत, आकर्षक, अतिरेकपूर्ण वातावरण निर्मित करते थे।

सबसे बढ़ कर मेरे पापा, जिनकी हिन्दी अंग्रेजी साहित्य की खास अध्ययन थी, जिनके साथ चर्चा कर के पढ़ने का आनंद ही कुछ और था, मेरे सबसे बड़े प्रेरणा स्रोत रहे।

व्यवसाय और नौकरी - व्यवसाय नहीं अव्यवसाय कहें।

जीवन भर लिखना पढ़ना और पढ़ाना चलता रहा पहले दिल्ली विश्वविद्यालय के दौलतराम कॉलेज में जुलाई 1963 से अक्टू. 1965 तक नौकरी की। दिसम्बर 1965 विवाह के बाद, दिल्ली विश्वविद्यालय के कॉलेज

नौकरी की। इसके दिनों की सेवानिवृत्ति के बाद

इलाहाबाद में 1973 से महिला सेवासदन डिग्री कॉलेज

की प्राचार्य रही। पुन इसी पद कार्य किया अब सिविल [illegible]

से मानवीय माया परिवार की निदेशक हूँ।

पारिवारिक परिचय — बहुत ही सरल सामान्य में और मेरा

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] की पुस्तक 'सूरज के [illegible]'

देखें।

दो बेटे हैं। बड़े का नाम अनिरुद्ध है।

बम्बई में वह एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी में [illegible]

सेल्स मैनेजर हैं। छोटा — प्रसिद्ध इलाहाबाद में

सॉफ्टवेयर [illegible] विशेषज्ञ है।

जीवन में कोई नहीं [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] की [illegible]।

इन दोनों [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

के जीवन का [illegible] [illegible] [illegible]

हम नहीं चाहते थे कि वे भी हमारी तरह

[illegible] करें। ~~बहुत [illegible] [illegible]~~

[illegible] [illegible]

1) निर्मोही और मुखौटा के बाद ये कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं :-

1) थियेटर रोड के कौवे - पेंगुइन बुक्स, पंचशील पार्क, नई दिल्ली

2) पच्चीस साल की लड़की - रेमाधव प्रकाशन, कविनगर, गाज़ियाबाद

3) काके दी हट्टी - वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

4) खुश किस्मत - लोकभारती प्रकाशन, सिविललाइंस, दरबारी बिल्डिंग, इलाहाबाद-1

इनमें कुछ कहानियाँ पुरानी तथा कुछ नयी हैं।

2) निर्मोही , मुखौटा -

3) दूसरा देवदास एक प्रेमकहानी है, बारीक strokes में लिखी हुई। इसमें वातावरण महत्वपूर्ण है। कोशिश यह की गई है कि हरिद्वार जैसे तीर्थस्थान में चाहे लाख पूजापाठ चलता हो, युवा लोग प्रेम के धागे से ज़्यादा बँधते हैं, धर्म से नहीं।

चिरकुमारी - एक सनकी होती हुई spinster की कहानी है। उसके तर्क ठीक हैं पर तेवर गलत। जो स्त्रियाँ 30 या 35 वर्ष के बाद विवाह नहीं करतीं, प्रायः अपने आचरण में rigid हो जाती हैं। एक सत्य घटना पर आधारित है यह।

निर्मोही लोककथा शैली में लिखी कहानी है। राजा पौरुषहीन है पर पत्नी को कब्जे में रखना चाहता है। पीपल पूजने से

बच्चे पैदा नहीं हो सकते यह बात रानी अच्छी तरह जानती है। वह ननद से शिकायत भी करती है कि तुम्हारे भैया तो पलंग पर जाते ही सो जाते हैं। ऐसे में मालिन के लड़के से उसका आसक्त होना स्वाभाविक है। प्रेम सम्बन्ध प्रतीकात्मक तरीके से बताया है। कहानी में कोई भी बात बहुत loudly नहीं कहना अच्छा होता है। इसे हर उम्र का पाठक पढ़ सकता है। अंत में रानी और उसका पति, बच्चा मार जाते हैं। इसमें समानान्तर रूप से एक दृष्टिकोण कहानी सुनने वालों का भी उभर कर आता है। लड़कियाँ दादी से अलग सोचती हैं कि निर्मोही मानी (प्यार विहीन) के साथ रहने से अच्छा था उसे छोड़ना।

4) ऊपर की कहानी 'निर्मोही' मूल्य-परिवर्तन की ही कहानी है। इसी तरह 'रोशनी की मार', मुखौटा, लड़के, सेवा, बोलने वाली औरत, उमस, तथा अन्य बहुत सी कहानी में दृष्टिकोणों के टकराव से नये जीवन मूल्य सामने आते हैं।

5) आप पढ़ कर स्वयं पता लगायें। वैसे सेमिनार कहानी में नारीवादियों में मूल्य-विघटन और चालू फैशन की विद्रूप

है। लड़के अदालती का यह वाक्य बताता है कैसे सरकारी तंत्र में लोग भ्रष्ट हैं। वे गंगास्नान करने के लिये आते समय भी भ्रष्टाचार नहीं छोड़ पाते - सरकारी वाहन और वाहक दोनों का दुरुपयोग करते हैं - और पद पर रहते हुए अनेक प्रकार के भ्रष्टाचार - दूसरी तरफ लड़के अपने मध्यवर्गीय परिवारों के अभाव झेलते हुए दिशाहीन अध्ययन कर रहे हैं लेकिन उनके दिमाग चैतन्य हैं। उन्हें ये सब विरोधाभास दिखते हैं। हर जगह समाज में लोग शिकार करते हैं। मार्क्सवादी सिद्धान्त - ~~हा~~ haves will always oppress the have-nots,

6) बहुत पत्रिकाओं में समीक्षायें आईं। कुल एक संकलन।

7) ममता कालिया की कहानियाँ खण्ड तीन इकट्ठी: तैयार हो रहा है।

8) दौड़ के अलावा — बीमारी, जितना तुम्हारा हूँ, लड़के, वसंत-सिर्फ एक तारीख, काली साड़ी, उसका यौवन, राजू, दर्पण, जाँच अभी जारी है, शॉल, सेवा, तासीर, मुखौटा, सुलेमान, दल्ली सिकन्दर, बोहनी, काके दी हट्टी।

9) जीवन अपने हर रूप और रंग में मुझे लिखने के लिये प्रेरित करता है। मैं कल्पना प्रधान रचनाओं को waste of time मानती हूँ।

10) कहानी में पसन्द बताना कठिन काम है। इतना कह सकती हूँ ये रचना मैंने बहुत श्रम कर, डूब कर लिखी। जब जो लिखा वो अपने दिल दिमाग की आग से पका कर, रचा कर लिखा। अच्छा बुरा जैसा भी लिखा, ईमानदारी से लिखा। अपनी अच्छी कहानी तो अभी लिखी जानी है। फिर भी मौजूदा लिखी कहानियों में से 'सेवा, रोशनी की मार, मुखौटा, आपकी छोटी लड़की' मुझे कुछ ठीक लगती है।

लिखना इधर अब मेरा हाथ पकड़ पाया। इधर मेरी एक पुस्तक राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-2 से आई है 'कितने शहरों में कितनी बार' वह मँगाकर पढ़ लो तो मेरे जीवन के बारे में सब कुछ पता चल जायेगा। अन्य थीसिस से हट कर तुम्हारा शोध हो जायेगा।

सुधाजी से मेरा नमस्कार कहना। न्यू यॉर्क की दिलचस्प यादें उनके साथ जुड़ी हैं। तंकमणिअम्माजी अब कहाँ पर हैं। उनका फोन नं. हो तो भिजवाना।

प्यार के साथ

ममता कालिया

15/5/10